प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला में कार्त्तिकेय

(डी० फिल्० को उपाधि के लिए प्रस्तुत)

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
प्रो० वी० डी० मिश्र
प्रोफेसर प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं
पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

अनुसंधानकर्त्ता
कपिल देव मिश्र

प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
१९९२

प्राक्कथन

भारतीय जीवन दर्शन में धर्म का विशिष्ट महत्व रहा है । वास्तव में धर्म के स्वरूप को समझे बिना भारतीय संस्कृति के स्वरूप और उसके दृष्टि कोणों को समझना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव भी है । महाभारत में उचित ही कहा गया है -

नमोधर्माय महते धर्मो धारयति प्रजा: ।
यत स्यात् धारण संयुक्त स धर्म इत्युदा हृत: ।। (उद्योगपर्व, 138•8)

अर्थात 'उस धर्म को प्रणाम है जो समस्त लोक को धारण करता है इस धारण शक्ति के कारण ही उसे धर्म की संज्ञा दी गई है ।' उक्त अंश धर्म की व्याख्या करने में समर्थ है । भारत प्राचीन काल से ही विभिन्न धार्मिक समुदायों एवं मतों की क्रीड़ा स्थली रहा है । भारतीय धर्मों में शैव धर्म का प्रारम्भ से ही विशिष्ट महत्व रहा है । शैव धर्म का प्रारम्भ सैंधव काल से ही था, तब से प्रारम्भ होकर विभिन्न परिवर्तनों एवं प्रभावों के साथ शिव पूजा सामान्य जनमानस में निरन्तर विद्यमान रही । शिव पूजा के साथ-साथ कालान्तर में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण देवता कार्त्तिकेय की भी पूजा का विकास हुआ जिसे शिव का पुत्र स्वीकार किया गया है । प्राचीन भारत के राज्यों एवं गणतन्त्रों को अस्तित्व में बनाये रखने के लिए युद्ध की एक महत्वपूर्ण भूमिका थी । युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए राजा प्राय: युद्ध-देवता की पूजा करता था । कार्त्तिकेय को युद्ध - देवता के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त थी । इसका कारण देवताओं का असुरों से हुए अनेक युद्धों में विजयश्री प्राप्त कराने में कार्त्तिकेय का महत्वपूर्ण योगदान था । अतएव कार्त्तिकेय का इस रूप में प्रतिष्ठित होने के कारणों तथा विभिन्न कालों

में उनके स्वरूपों में हुए परिवर्तनों का एक शोध विषय के रूप में अध्ययन अपेक्षित है क्योंकि वर्तमान में कार्त्तिकेय के महत्व से जनसामान्य अधिक सीमा तक लगभग अनभिज्ञ हैं ।

दृष्ट जगत की समस्त गतिविधियों के प्रति विशेष अभिरूचि की नैसर्गिक परिणति इस जिज्ञासा में होती है जिस धार्मिक समाज में हम रहते हैं उसके धर्म का आदर्श और व्यावहारिक स्वरूप क्या है, उसमें किन-किन मान्यताओं का अनुपालन आवश्यक है ? प्रमुख रूप से किन-किन देवी-देवताओं को किस - किस क्षेत्र के प्रतिनिधि के रूप में महत्व प्रदान किया जाता है और उससे पूर्व देवी-देवताओं का क्या महत्व था और क्षेत्र विशेष की अधिकारिता तथा महत्व में क्या-क्या विकासात्मक परिवर्तन हुए इत्यादि । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में कार्त्तिकेय से सम्बन्धित भारतीय इतिहास के विभिन्न आयामों को अछूता न छोड़ते हुए विभिन्न ऐतिहासिक ग्रन्थों {साहित्यिक साक्ष्यों} तथा अनेक स्थलों से उत्खनन में प्राप्त सामग्रियों {पुरातात्त्विक साक्ष्यों} का समन्वय करते हुए कार्त्तिकेय के युद्ध के देवता के रूप में प्रतिष्ठान को पूर्णतया सत्यता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है ।

मैं, प्रातः स्मरणीय परमपूज्य गुरूवर्य प्रो० विद्याधर जी मिश्र {प्रोफेसर प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद} का चिर ऋणी हूँ जिन्होंने न केवल मुझे इस शोध विषय का सुझाव दिया, अपितु अध्ययन-अध्यापन की व्यस्तता से परिपूर्ण दिनचर्या के होते हुए भी इस शोध कार्य के लिये अपने विद्वतापूर्ण निर्देशन की सहर्ष स्वीकृति प्रदान की । वस्तुतः यह स्वीकृति मेरे लिये विद्याप्रदायिनी सरस्वती का साक्षात् अनुग्रह ही था जिसके परिणाम स्वरूप यह शोध-प्रबन्ध

अस्तित्व ग्रहण कर सका । इस श्रमसाध्य शोध कार्य में मुझे प्रतिपल उनका सुस्पष्ट निर्देशन, स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन एवं अध्ययन सम्बन्धी महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त हुआ है । उनके इस अनुग्रह के लिए आभार व्यक्त करना शब्दों की सीमा से परे है । आभार प्रदर्शन की औपचारिकता दिखाकर मैं उऋण नहीं होना चाहता । क्या गुरू ऋण से भी कभी उऋण हुआ जा सकता है? आपकी प्रेरणा से किया हुआ समस्त कार्य आपकी ही प्रेरणा, परिश्रम तथा सहृदयता का परिणाम है । मैं जो कुछ भी हूं तथा कर सका हूं वह आपकी ही प्रेरणा से । अत: समस्त कार्य एवं सफलता का फल और अपनी समस्त श्रद्धा तथा हार्दिक कृतज्ञता पूजनीय गुरू जी के श्रीचरणों में समर्पित करता हूं ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण कराने में परमपूज्य गुरू डा० जय नारायण जी पाण्डेय (रीडर, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग) ने जिस तरह की सहायता की है, उसे शब्दों में मैं व्यक्त नहीं कर सकता । वस्तुत: आपकी सहायता के बिना यह शोध कार्य पूर्ण ही नहीं हो सकता था । अत्यन्त व्यस्तता के होते हुए आपने न केवल प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का परीक्षण कर तथा उपयोगी सुझाव प्रस्तुत कर इसका परिष्कार एवं परिमार्जन किया बल्कि शोध - विषयक सभी व्यवधानों का वैदुष्यपूर्ण ढंग से समय-समय पर निराकरण भी किया । निष्कामभाव से छात्र के सर्वांगीण विकास को चाहने वाले आप जैसे गुरू के अनुग्रह से ही प्रस्तुत शोध पूर्ण हो सका है । आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन धृष्टता मात्र होगी । इसके अतिरिक्त मैं विभाग (प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के अन्य गुरूजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं जिन्होंने अपने विद्वतापूर्ण सुझावों से समय-समय पर सहायता की है ।

ज्ञान का इतिहास रूपी गंभीर समुद्र कहाँ और कहाँ मेरी छोटी मन्द बुद्धि । मैं तो केवल श्रद्धा को सहायक के रूप में लेकर उस समुद्र में गोते लगाने लगा था । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में यदि कहीं विचारों की गम्भीरता मिले तो उसका निमित्त सर्वज्ञानमयी भगवती श्रुति को ही समझना चाहिए । यदि इस शोध प्रबन्ध में विषय प्रतिपादन का कोई नवीनतम मार्ग अपनाया गया है तथा कहीं कुछ पाँडित्य का लेश भी दिखाई दे तो उसे मेरे गुरूओं की चरण सेवा का वरदान समझना चाहिए ।

अग्रज स्वरूप सर्वश्री सुरेन्द्र प्रताप सिंह, नरेन्द्र देव पाण्डेय, मानिक चन्द्र गुप्त, अवनीश चन्द्र मिश्र, डा० योगेश दूबे, डा० एस·के· श्रीवास्तव, अनिल शुक्ला तथा मित्रवर विनय प्रकाश सिंह, विनोद कुमार त्रिपाठी, अमरेन्द्र कुमार सिंह, अनवर अहमद, शिवेन्द्र सिंह, राजेश कुमार सिंह, उमेश श्री राकेश कुमार सिंह, शैलेन्द्र कुमार सिंह, रावेन्द्र सिंह बघेल, प्रमोद कुमार त्रिपाठी, रमाशंकर पाण्डेय तथा सुधाकर पाण्डेय के प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित करके एवं सहयोग द्वारा इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति में असाधारण भूमिका निभायी है । मित्रवर विनय प्रकाश जी का मैं विशेष ऋणी हूँ जिन्होंने जीवन के यथा - सम्भव प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग करने के साथ-साथ शैक्षिक क्षेत्र में विशेष रूप से यथोचित मार्गदर्शन किया ।

अपने पूज्यपाद पिताश्री रामइन्दर जी मिश्र व माताश्री एवं परम श्रद्धेय अग्रज श्री अरूण देव मिश्र, जिनके असीम स्नेह के कारण न केवल मैं अद्यावधि चिन्ता मुक्त हूँ प्रत्युत उनके पुण्य प्रभाव से यह शोध कार्य पूरा हो सका है, के प्रति मैं हार्दिक एवं आत्मिक नमन अभिव्यक्त करता हूँ जिसके बिना मैं स्वयं को

अनृण नहीं मान सकता । इसी के साथ अनुज चि० अनिल कुमार मिश्र को साधुवाद देता हूँ जिन्होंने साथ रह कर अनुजत्व का विधिवत् निर्वाह किया है । इसके अतिरिक्त प्रिय रविकुमार मिश्र, रामकृष्ण त्रिपाठी व विनय कुमार मिश्र को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने साथ रहकर हर तरह का सहयोग किया ।

शोध प्रबन्ध के टंकण का कार्यभार श्री उमा शंकर पाल जी ने बड़ी कुशलता एवं एकाग्रता से संभाला और अत्यल्प काल में ही उसे सम्पन्न भी कर दिया । इसके लिए उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन मेरा सहजसिद्ध कर्त्तव्य है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत त्रुटियों का यथासंभव परिमार्जन करने का प्रयास किया गया है किन्तु हिन्दी टंकण में यंत्र-जन्य कुछ त्रुटियाँ रह गई सम्भव हो सकती हैं । आशानुरूप विद्वज्जन इन पर बल न देकर भावाभिव्यक्ति एवं प्रस्तुतीकरण को महत्वपूर्ण समझते हुए क्षमा प्रदान करने का अनुग्रह करेंगे ।

इलाहाबाद
जुलाई, १९९२

विनयावनत
कपिल देव मिश्र
कपिल देव मिश्र
प्राचीन इतिहास संस्कृति
एवं पुरातत्व विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

अनृण नहीं मान सकता । इसी के साथ अनुज चि० अनिल कुमार मिश्र को साधुवाद देता हूँ जिन्होंने साथ रह कर अनुजत्व का विधिवत् निर्वाह किया है । इसके अतिरिक्त प्रिय रविकुमार मिश्र, रामकृष्ण त्रिपाठी व विनय कुमार मिश्र को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने साथ रहकर हर तरह का सहयोग किया ।

शोध प्रबन्ध के टंकण का कार्यभार श्री उमा शंकर पाल जी ने बड़ी कुशलता एवं एकाग्रता से संभाला और अत्यल्प काल में ही उसे सम्पन्न भी कर दिया । इसके लिए उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन मेरा सहजसिद्ध कर्त्तव्य है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत त्रुटियों का यथासंभव परिमार्जन करने का प्रयास किया गया है किन्तु हिन्दी टंकण में यंत्र-जन्य कुछ त्रुटियाँ रह गई सम्भव हो सकती हैं । आशानुरूप विद्वज्जन इन पर बल न देकर भावाभिव्यक्ति एवं प्रस्तुतीकरण को महत्वपूर्ण समझते हुए क्षमा प्रदान करने का अनुग्रह करेंगे ।

इलाहाबाद
जुलाई, १९९२

विनयावनत
कपिल देव मिश्र

कपिल देव मिश्र
प्राचीन इतिहास संस्कृति
एवं पुरातत्व विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

विषयसूची

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

संकेत - विवरण

ए0 बी0 ओ0 आर0 आई	: एनाल्स आँव द भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट
ए0 एस0 आई0 ए0 आर0	: आर्कियोलाजिकल सर्वे आँव इण्डिया § एन्यूल रिपोर्ट §
ए0 एस0 आर0 §कनिंघम§	: आर्कियोलाजिकल सर्वे आँव इण्डिया §कनिंघम रिपोर्ट§
ए0 एस0 एस0	: आनन्दआश्रम संस्कृत सीरीज
बी0 आई0	: बिब्लिओथिका इण्डिका
बी0 एम0 सी0	: द क्वाइन्स आँव द ग्रीक एण्ड सिथिक किंग्स आँव बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया इन द ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन
बी0 एम0 सी0 जी0 डी0/ सी0 सी0 जी0 डी0 बी0 एम0	: कैटलॉग आँव द क्वाइन्स आँव द गुप्ता डायनस्टीज एण्ड आँव शशांक, किंग आँव गौड़ § इन द ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन
बी0 ओ0 आर0 आई0	: भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना

सी0 ए0 आई0	:	क्वाइन्स आॅव एन्श्यन्ट इण्डिया
सी0 सी0 ए0 आई0	:	कैटलाॅग आॅव क्वाइन्स आॅव एन्श्यन्ट इण्डिया इन द ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन
सी0 सी0 आई0 एम0 सी0/ सी0 आइ0 एम0	:	कैटलाॅग आॅव द क्वाइन्स इन द इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता
जी0 जी0 सी0 बी0 एच0	:	कैटलाॅग आॅव द गुप्ता गोल्ड क्वाइन्स इन द बयाना होर्ड
सी0 जी0 डी0	:	क्वाइनएज आॅव द गुप्ता डायनस्टी
सी0 आई0 आई0	:	कार्पुस इन्शक्रिप्शनम इण्डिकरम
डी0 एच0 आई0	:	डेवलपमेन्ट आॅव हिन्दू आयकोनोग्राफी
ई0 आई0	:	इपिग्राफिया इण्डिका गसाइट डर इण्डिसेन लिटरेचर बाई विन्टरनित्ज
जे0 ओ0 एस0	:	गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज
एच0 बी0 आर0	:	हिस्ट्री आॅव बंगाल, वाॅल्यूम I

एच0 आई0 आई0 ए0	:	हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट
आई0 ए0	:	इण्डियन एण्टीक्वरी
आई0 एच0 क्यू0	:	इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली
जे0 ए0 एस0 बी0	:	जर्नल ऑव एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल
जे.बी.आर.एस.	:	जर्नल आव दि बिहार रिसर्च सोसायटी
जे0 बी0 बी. आर. ए. एस.	:	जर्नल ऑव द बाम्बे ब्रांच ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी
जे0 आई0 एम0	:	जर्नल ऑव इण्डियन म्यूजियम
जे0 आई0 एस0 ओ0 ए0	:	जर्नल ऑव द इण्डियन सोसाइटी ऑव ओरिएण्टल आर्ट
जे0 एन0 एस0 आई0	:	जर्नल ऑव द न्यूमिसमेटिक सोसाइटी ऑव इण्डिया
जे0 यू0 पी0 एच0 एस0	:	जर्नल ऑव द यू0 पी0 हिस्टारिकल सोसाइटी

एम० ए० एस० आई०	:	मीमोरीज आँव द आर्कियोलाजिकल सर्वे आँव इण्डिया
एन० एस० आई०	:	न्यूमिसमेटिक सोसाइटी आँव इण्डिया
एन० एस० पी०	:	निर्णय सागर प्रेस
पी० एम० सी०	:	कैटलाग आँव द क्वाइन्स इन द पंजाब म्यूजियम, लाहौर, I
पी० आई० एच० सी०	:	प्रोसीडिंग्स आँव द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस
एस० बी० आई०	:	सेक्रेड बुक्स आँव द ईस्ट
एस० आई० आई०	:	साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स
वी० आर० एस०	:	वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी

List of Illustrations

22. Karttikeya, Bhubaneswar, Orissa.

23. Karttikeya, Parasuramesvara Temple, Bhubaneswar, Orissa.

24. Karttikeya, Stuck in a later miniature shrine, Bhubaneswar, Orissa.

25. Karttikeya, Stuck in a later miniature shrine in the compound of the Lingaraja Temple Bhubaneswar, Orissa

26. Karttikeya, Puri, Orissa.

27. Karttikeya, Siddhesvara Temple Bhubaneswar, Orissa.

28. Karttikeya, Kapilesvara Temple, Bhubaneswar, Orissa.

29. Karttikeya, Indian Museum, Calcutta.

30. Karttikeya, SHAHKUND, BHAGALPUR BIHAR .

31. Karttikeya, Brahmasasa, National Museum, New Delhi.

32. Subrahmanya, Mahisamardini Shrine, Badami.

33. Subrahmanya with his consorts, Siva Temple, Tiruvorriyur.

34. Subrahmanya, SENAPATI, MADRAS Museum

35. Subrahmanya, Sanmukha Pattisvaram.

36. Subrahmanya, Sanmukha (Bronze), Nallur.

37. Subrahmanya, Halebid.

38. Subrahmanya, Tarakari, Aihole.

39. Subrahmanya, Ellora.

40. Devasena-Kalyanasundaramurtti, Tirupparankunram.

41. Somaskanda Mahabalipuram.

42. Somaskanda (bronze), Chola Period

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना - विषय का महत्व, उद्देश्य, स्रोत और कार्य पद्धति

'जनं विभ्रति बहुधा विवाचसं नाना धर्माणि पृथिवी यथौकसम्' {अर्थात्} मनुष्य अनेक प्रकार की भाषायें बोलता है, अनेकानेक धर्मों को मानता है। अथर्ववेद की इस आर्ष वाणी से यह स्पष्ट है कि जन की विविधता भारतीय जीवन का अभिभावी सत्य है।[1] भारतीय लोक संस्कृति में सबसे विचित्र एवं विविध अंग उसकी धार्मिक परम्परा की रही है। इस परम्परा का अपना इतिहास पाँच सहस्र वर्ष से भी अधिक पुरातन है। समन्वय प्रधान जीवन पद्धति का सर्वाधिक प्रभाव धर्म के क्षेत्र में दृष्टिगत होता है। आर्य, द्रविड़, निषाद और किरात इन अनेक संस्कृतियों के समन्वय से इस देश की महान धार्मिक परम्परा ने अपने वर्तमान कलेवर को निर्मित किया है।

प्राचीन भारत के प्रमुख धर्मों में शैव एवं वैष्णव धर्मों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सिन्धु घाटी सभ्यता की खोज के पूर्व तक भारतीय धर्म एवं संस्कृति के निर्माण में एक मात्र आर्य भाषा-भाषियों का योगदान माना जाता था, किन्तु सिन्धु घाटी सभ्यता की खोज के पश्चात् आर्येतर तत्वों का महत्व भी स्वीकार किया जाने लगा। सिन्धु घाटी सभ्यता में शिव के कई रूपों का अंकन मिलता है - पशुपति, योगेश्वर, कदाचित नटराज एवं लिंग के रूप में शिव की उपासना होती थी। सिन्धु घाटी सभ्यता से प्राप्त एक मुहर में पशुओं से घिरे हुए एक व्यक्ति का अंकन है जिसके सिर पर सींग है और जो पद्मासन मुद्रा में बैठा हुआ है। इसको सर जान मार्शल एवं अन्य विद्वानों ने शिव का प्राक्-रूप माना है। ऋग्वेद में रूद्र एक गौण देवता हैं। उत्तर वैदिक काल में रूद्र का समीकरण शिव, अग्नि आदि से किया गया है और उनके व्यक्तित्व का विकास एक प्रमुख देवता के रूप में दिखलाई पड़ता है। वैदिक परम्परा में यह उल्लेख मिलता है कि रूद्र के सहायक मरूद्गण थे। इन्हीं मरूद्गणों के नेता गणपति और स्कन्द आदि देवताओं को बतलाया

गया है । कालान्तर में जैसे-जैसे धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक मान्यताओं में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हुए वैसे-वैसे देवताओं के व्यक्तित्व का विकास होता गया । कार्त्तिकेय इसका अपवाद नहीं है ।

प्राचीन भारत के विभिन्न धर्मों और उनसे सम्बन्धित देवताओं के विषय में विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर अध्ययन किये गए हैं । प्रमुख देवताओं के अतिरिक्त गौण देवताओं की ओर भी कुछ लोगों का ध्यान गया है । शिव परिवार के गणेश एवं कार्त्तिकेय के विषय में विशेष रूप से अध्ययन किये गए हैं किन्तु ये अध्ययन मुख्य रूप से साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के संकलन तक प्राय: सीमित है । कार्त्तिकेय की उपासना के विकास में क्रियाशील सम्भ्रान्त एवं लघु परम्पराओं का निरूपण नहीं किया गया है । सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के विषय में भी सम्यक् ध्यान नहीं दिया गया है । कार्त्तिकेय का तादात्म्य स्कन्द, विशाख आदि के साथ कब और कैसे स्थापित हुआ, इस प्रश्न की समीक्षा इस शोध प्रबन्ध में करने का लक्ष्य है । इसी प्रकार इस प्रश्न की भी मीमांसा की गयी है कि एक स्वतन्त्र देवता के रूप में पूजित कार्त्तिकेय क्यों और कब शिव के पुत्र के रूप में प्रतिष्ठित हुए ।

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध का लक्ष्य 'प्राचीन भारतीय साहित्य और कला में कार्त्तिकेय' (प्रारम्भ से 1200 ईसवी तक) विषय पर एक ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करना है जिसका निम्नांकित अध्यायगत शीर्षकों के अन्तर्गत एक गवेषणापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

शोध प्रबन्ध का प्रथम अध्याय परिचयात्मक है । इस अध्याय में कार्त्तिकेय के विषय में अभी तक जो अनुसंधान कार्य हुए हैं, उनका संक्षिप में परिचय दिया गया है । अध्ययन सम्बन्धी सामग्री का भी निरूपण इसी अध्याय में किया गया है ।

आर0 जी0 भण्डारकर महोदय ने वैष्णव, शैव धर्मों के साथ-साथ अन्य लघु धार्मिक सम्प्रदायों का विवेचन करते हुए स्कन्द या कार्त्तिकेय के विषय में

संक्षिप में परिचयात्मक विवेचन किया है । पी0 के0 अग्रवाल ने 'स्कन्द कार्त्तिकेय ए स्टडी इन द ओरिजिन एण्ड डेवेलपमेन्ट' में गुप्तकाल तक कार्त्तिकेय सम्बन्धी साक्ष्यों का अध्ययन किया है । आर0 नवरत्नम् ने साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर 'कार्त्तिकेय द डिवाइन चाइल्ड' नामक ग्रन्थ लिखा है । ए0 के0 चटर्जी ने 'द कल्ट आँव स्कन्द-कार्त्तिकेय इन एन्शयन्ट इण्डिया' नामक ग्रन्थ में इस संदर्भ में उपलब्ध साक्ष्यों का संक्षिप्त संकलन किया है । किन्तु इन विद्वानों ने साक्ष्यों के विश्लेषण का प्रयास नहीं किया है । कार्त्तिकेय की उपासना की पृष्ठभूमि के रूप में सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों पर अभी तक किसी ने ध्यान नहीं दिया है । इस प्रकार कार्त्तिकेय के विषय में हमारे ज्ञान की रिक्तता की पूर्ति हेतु विस्तृत समीक्षात्मक अध्ययन की आवश्यकता है ।

कार्त्तिकेय के अध्ययन की सामग्री दो तरह की है - साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक । वैदिक साहित्य-विशेषकर उत्तर वैदिक संहिताओं, आरण्यक, उपनिषद, सूत्र साहित्य का उपयोग इसमें किया गया है । रामायण तथा महाभारत के साक्ष्यों की समीक्षा की गई है । पौराणिक साहित्य इस सम्बन्ध में अत्यन्त उपयोगी है । लौकिक संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित महाकाव्य, नाटक व गद्य काव्यों में छिट-पुट रूप से भी जो बिखरे हुए सन्दर्भ मिलते हैं, वे भी इस अध्ययन में उपयोगी हैं । दक्षिण भारत में भी मुरुगन एवं सुब्रमण्य के रूप में कार्त्तिकेय की उपासना होती थी । उत्तर एवं दक्षिण भारत की उपासना पद्धति में क्या अन्तर था और उसका कारण क्या था इसका भी अध्ययन किया गया है । पुरातात्त्विक साक्ष्यों में अभिलेखिक सामग्री के अतिरिक्त सिक्कों, मुहरों और मूर्तियों के रूप में साक्ष्य प्राप्त होते हैं । पुरातात्त्विक स्रोत से ज्ञात प्रमाण साहित्यिक साक्ष्यों से कहाँ तक मेल खाते हैं और कहाँ तक उनमें अन्तर है, इसके विश्लेषण का लक्ष्य है ।

द्वितीय अध्याय में कार्त्तिकेय से सम्बन्धित मिलने वाले वैदिक कालीन (पूर्व एवं उत्तर वैदिक कालीन) साक्ष्यों के संकलन एवं सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में विश्लेषण का प्रयास किया गया है । ऋग्वेद में कार्त्तिकेय का उल्लेख नहीं मिलता है । फिर भी कुछ ऐसी ऋचाएं हैं जो कुछ इस तरह की अवधारणा पर प्रकाश डालती हैं, जिससे कालान्तर में इस देवता का विकास एवं स्वरूप संगठित हुआ । ऋग्वेद में कार्त्तिकेय के लिए 'स्कन्द' शब्द का प्रयोग हुआ है । ब्राह्मण ग्रन्थ विशेषकर शतपथ ब्राह्मण में कार्त्तिकेय की उपासना के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी सन्दर्भ हैं । इस देवता का उल्लेख उपनिषद साहित्य एवं सूत्र साहित्य में अनेक बार हुआ है । मैत्रायणी संहिता एवं तैत्तिरीय आरण्यक जैसे ग्रन्थों में कार्त्तिकेय के लोकप्रिय नाम गायत्री मंत्रों में आये हैं । इन ग्रन्थों से स्पष्ट संकेतित होता है कि उत्तर वैदिक काल में भारतीयों के धार्मिक दृष्टिकोण में बृहद् परिवर्तन हो रहा था । वैदिक देवताओं के स्थान पर लौकिक देवताओं को महत्व मिलने लगा । अथर्ववेद के परिशिष्ट स्कन्दयज्ञ, जिसे धूर्त्तकल्प भी कहते हैं, कार्त्तिकेय के अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी है । लेखक स्वयं इस देवता का अनुयायी लगता है जिसके लिए 'स्कन्द' मात्र चालाकी एवं धूर्तता का देवता नहीं वरन् ये दयालु भी हैं । सूत्र साहित्य में कार्त्तिकेय ब्राह्मण पन्थ के प्रमुख देवता के रूप में उभरते हैं ।

तीसरे अध्याय में, महाकाव्यों (रामायण और महाभारत) एवं पुराणों में कार्त्तिकेय विषयक उपलब्ध सामग्री का विश्लेषण किया गया है । यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि वैदिक साहित्य एवं महाकाव्यों तथा पुराणों में कार्त्तिकेय सम्बन्धी अवधारणाओं में कोई अन्तर दिखलाई पड़ता है या नहीं । इस काल में कार्त्तिकेय एक लोकप्रिय देवता हैं और बहुसंख्यक श्लोकों की रचना इनके सम्बन्ध में हुई है । रामायण के बालकाण्ड

में, कम से कम दो अध्यायों में इस देवता के जन्म के विषय में विशेष रूप से उल्लेख मिलता है जबकि महाभारत के कम से कम पन्द्रह अध्यायों में इस देवता के जन्म एवं कार्यों से सम्बन्धित विस्तृत कथाओं का उल्लेख मिलता है । इसके अतिरिक्त महाकाव्यों में अनेक रोचक सन्दर्भ एवं विवेचन हैं । कम से कम एक पुराण (स्कन्द पुराण) इस देवता के सम्बन्ध में है । दूसरे पुराणों एवं उपपुराणों में भी कार्त्तिकेय विषयक प्रचुर सामग्री है । पौराणिक साहित्य में स्कन्द और विशाख के सम्बन्ध में जो कहानियाँ मिलती हैं उनमें एक के अनुसार स्कन्द पर इन्द्र ने बज्र से प्रहार किया था जिसके परिणाम स्वरूप विशाख की उत्पत्ति हुई । इस कहानी से यह ध्वनित होता है कि स्कन्द सम्भवतः आर्येतर देवता थे जो किसी समय इन्द्र के प्रतिद्वन्द्वी देव के रूप में लोक में प्रचलित हुए । इसी प्रकार के अन्य सन्दर्भों का भी सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से स्पष्टीकरण और मूल्यांकन किया गया है ।

चौथे अध्याय में लौकिक संस्कृत साहित्य में कार्त्तिकेय से सम्बन्धित साक्ष्यों का अनुशीलन किया गया है । जैन ग्रन्थ आचारांगसूत्र में इस देवता के सम्बन्ध में त्योहार मनाये जाने का उल्लेख मिलता है, जबकि संघ नियमों में उत्सव आदि का आयोजन वर्जित था । बौद्ध ग्रन्थ ललितविस्तर में यह उल्लेखित है कि स्कन्द (कार्त्तिकेय) की प्रतिमा बाल राजकुमार सिद्धार्थ को दर्शायी गई थी । दूसरी शताब्दी ई० पू० में पतंजलि ने अपने महाभाष्य में स्कन्द और विशाख का उल्लेख दो अलग-अलग देवताओं के रूप में किया है जो उनके अनुसार मौर्यकाल में विशेष लोकप्रिय थे । इसका कुछ संकेत चौथी -तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व की रचना कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है, जहाँ पर नगर के अन्दर निर्मित देवालयों में अन्य देवताओं के साथ-साथ अपराजित या अप्रतिहत के नाम से कार्त्तिकेय की उपासना का संकेत मिलता है । वराहमिहिर की बृहत्संहिता

में इस देवता की मूर्ति निर्माण के सम्बन्ध में प्रतिमा-शास्त्रीय सूचनाएं मिलती हैं । अमरसिंह ने अमरकोश में इसके नाम गिनाये हैं । शूद्रक ने मृच्छकटिक में इस देवता का उल्लेख चोर, ठग और हत्यारे के रूप में किया है जबकि महाकवि कालिदास ने अपने उत्कृष्ट ग्रन्थ 'कुमारसंभव' में इसे "युद्ध देवता के रूप में" अमर कर दिया है । सोमदेव के कथासरित्सागर एवं कल्हण की राजतरंगिणी आदि लौकिक संस्कृत ग्रन्थों में भी अस देवता के सम्बन्ध में रोचक एवं विस्तृत सामग्री प्राप्त होती है ।

पाँचवें अध्याय में, दक्षिण भारतीय साहित्य में वर्णित सामग्री का संकलन एवं समीक्षा की गई है । यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि उत्तर भारत और दक्षिण भारत में कार्त्तिकेय की उपासना में कोई समानता या अन्तर है या नहीं । दक्षिण भारत में कार्तिकेय मुरुगन और सुब्रह्मण्य के नाम से लोकप्रिय हुए । दूसरे हिन्दू देवताओं की अपेक्षा दक्षिण में सम्भवत: इनके सर्वाधिक अनुयायी हैं । तोलकप्पियम, तिरूमुरुगरूप्पदाई, कण्डपुराणम् प्रभृति ग्रन्थों, आगम ग्रन्थों - जैसे - कुमार तन्त्र, परिपादल, शिल्पादिकारम् जीवकचिन्तामणि आदि दक्षिण भारत के कुछ ग्रन्थ हैं जिनमें कार्त्तिकेय के प्रचुर सन्दर्भ हैं । इस तरह जिन ग्रन्थों का आंग्ल-अनुवाद उपलब्ध हो सकता था, से भी दक्षिण भारत में इसकी पूजा की समग्र तस्वीर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

गुप्तोत्तर काल में राजनीतिक एकता एक बार पुन: छिन्न-भिन्न हो गई । देश विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियों के अधिकार में चला गया । सत्ता संघर्ष के लिए परस्पर होड़ दिखलाई पड़ती है । गुप्त और गुप्तोत्तर काल में शैव और वैष्णव धर्म विशेष रूप से उत्तर एवं दक्षिण भारत में लोकप्रिय हुए । ऐसा प्रतीत होता है कि कार्त्तिकेय को शिव-परिवार के सदस्य के रूप में स्मरण किया

गया लेकिन उनका स्वतन्त्र अस्तित्व उत्तर भारत में धीरे-धीरे समाप्त होता गया । उनके व्यक्तित्व का कुछ पक्ष स्वयं शिव में समाहित हो गया और कुछ शिव के अन्य गण भैरव में मिल गया ।

छठवाँ अध्याय पुरातात्त्विक साक्ष्यों से सम्बन्धित है । इसके अन्तर्गत अभिलेखीय साक्ष्यों और मुद्राओं एवं मुहरों में बिखरी कार्त्तिकेय विषयक सामग्री का संकलन तथा मीमांसा की गई है । इसी सन्दर्भ में विभिन्न क्षेत्रों से मिलने वाली कार्त्तिकेय सम्बन्धी मूर्तियों का अध्ययन किया गया है और यह समझने का प्रयास किया गया है कि कार्त्तिकेय सम्बन्धी अवधारणाएँ बदलती रही या एक जैसी ही रही । इस सन्दर्भ में पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आलोक में विश्लेषण का प्रयास किया गया है ।

अभिलेख कार्त्तिकेय की पूजा के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं । इनमें बहुत से न केवल धार्मिक पद्धति की विशेषताओं, जिससे विषय गहन रूप से सम्बन्धित है, की सूचना देते हैं, वरन् मन्दिरों के निर्माण तथा इस देवता की मूर्ति-रचना के विषय में भी प्रचुर जानकारी देते हैं । अभिलेखों से कार्त्तिकेय की मूर्ति के विशेष स्वरूपों के सम्बन्ध में सामान्य विवरण भी मिलता है । इस प्रकार उत्तर एवं दक्षिण भारत के अनेकानेक अभिलेख प्राचीन भारत की कार्त्तिकेय की पूजा के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं ।

देश के विभिन्न भागों से प्राप्त कार्त्तिकेय की अनेक मूर्तियाँ इस देवता के अध्ययन की महत्वपूर्ण सामग्री है । प्राचीन काल से ही कला और धर्म में गहन सम्बद्धता पायी जाती रही है । मूर्तियाँ इस देवता के प्रत्यक्ष स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसकी पूजा प्राचीन भारत के विस्तृत क्षेत्र में होती थी । इस देवता की पूजा के उत्थान एवं विकास तथा इससे सम्बन्धित पौराणिक आख्यानों के सतत विकास का निरूपण पूजा स्थलों की मूर्तियों में मिलता है ।

ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में जहाँ एक ओर कार्त्तिकेय की पूजा के निमित्त मन्दिर और मूर्तियों का निर्माण हुआ वहीं दूसरी ओर स्वतन्त्र देवताओं के रूप में पूजित कुमार, स्कन्द, विशाख, महासेन तथा कार्त्तिकेय इन सब के बीच समन्वय और एकरूपता स्थापित करने की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है । कार्त्तिकेय के विषय में जानकारी का विशेष स्रोत मुद्राएँ एवं मुहरें हैं । उज्जयिनी एवं अयोध्या से कार्त्तिकेय देवता के सिक्के मिले हैं । इसी तरह भीटा, राजघाट से प्राप्त मुहरों पर इस देवता का नाम और चिन्ह (मयूर की आकृति) प्राप्त होता है । यौधेयों के सिक्कों पर स्कन्द-कार्त्तिकेय की मूर्तियों का अंकन मिलता है । कुषाण शासक हुविष्क के सिक्के में भी कुमार, स्कन्द और विशाख ये तीनों नाम मिलते हैं और स्कन्द तथा विशाख की आकृतियाँ बनी हुई मिलती हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि शक-क्षत्रपों पर सफलता प्राप्त करने के उपलक्ष में हुविष्क ने सिक्के जारी किये होंगे । गुप्त नरेश कुमारगुप्त I ने इस देवता को अपने सिक्कों में स्थान देकर कार्त्तिकेय के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है । कुमारगुप्त प्रथम के बाद के कतिपय शासकों के सिक्कों में इस देवता का अंकन दिखलाई पड़ता है । इस काल में युद्ध और सैनिक संघर्ष होते रहते थे । ऐसी स्थिति में कार्त्तिकेय की लोकप्रियता विशेष रूप से बढ़ी ।

पुरातात्त्विक साक्ष्य साहित्यिक साक्ष्यों की पुष्टि करने के साथ-साथ सर्वथा नवीन तथ्य भी प्रस्तुत करते हैं ।

सातवें एवं अन्तिम अध्याय में शोध के निष्कर्षों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है ।

सन्दर्भ - संकेत

1- अथर्ववेद 12•1•45

द्वितीय - अध्याय

वैदिक साहित्य और सूत्र साहित्य में कार्त्तिकेय

साहित्यिक साक्ष्यों में वैदिक वाङ्मय का अद्वितीय स्थान है । वैदिक साहित्य कार्त्तिकेय के प्रसंगों से अछूता नहीं है । किसी न किसी रूप में कार्त्तिकेय का उल्लेख वैदिक एवं सूत्र साहित्य में हुआ है । ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं के अनुसार इन्द्र [1] और अग्नि [2] निःसन्देह सबसे प्रतिष्ठित देवता हैं । यद्यपि कार्त्तिकेय का उल्लेख ऋक् संहिता में नहीं मिलता है तथापि ऋग्वेद में कुछ अर्थपूर्ण शब्द मिलते हैं जो कुछ अन्तराल के पश्चात् विकसित होकर इस देवता तथा इससे जुड़े धार्मिक विश्वास के रूप में बदल गए । ऋग्वेद में 'कुमार' शब्द का उल्लेख सत्तरह बार हुआ है[3] किन्तु इस शब्द का अधिकतर उपयोग सरल अर्थों में अवरोही क्रम में संतान, पुत्र या एक नवयुवक के रूप में किया गया है । जब इस शब्द का प्रयोग 'अग्नि' के साथ किया गया है तो यह कुछ विशेष महत्वपूर्ण हो गया । इस प्रसंग में यहाँ पर ऋग्वेद की ऋचाओं का विशेष सन्दर्भ लिया जा सकता है जिनमें 'कुमार' शब्द दो बार आया है ।[4] वैसे यह जानना कि यह शब्द अपने नाम का उचित अर्थ बता रहा है कि नहीं, सरल नहीं है । किन्तु उस प्रसंग जिसमें वह प्रयोग किया गया है, पर विचार करने पर यह अग्नि के लिए प्रतीत होता है । ऋचा 'कुमार' के वर्णन से शुरू होती है जिनकी प्रार्थना अग्नि के नाम से सातवें मन्त्र में की गई है । ऋग्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण इस मंत्र की टीका करते हुए कहते हैं कि क्योंकि 'सर्वानुक्रमणि' में यह सूक्त 'अग्नि' को समर्पित है, अग्नि को बाद में 'कुमार' कहा गया है ।[5] "कुमार का इस तरह से वर्णन किया गया है "अपनी माँ के द्वारा गुप्त रूप से (गुहा में) पोषण किया गया जो उसे उसके पिता को नहीं दिखाती है । बाहु (हाथ) के ऊपर लेटा हुआ (१), कुमार लोगों के द्वारा देखा जाता है । " यह वर्णन पहले के रूप में आगे भी चलता रहता है : 'जो गर्भ के भ्रूण की तरह

कई शरद ऋतुओं में बढ़ता है और जिसके सोने के दाँत हो तथा चमकीला दाँत हो, उनको अपने हथियार फेंकते हुए एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करते हुए दिखाया गया है, - इत्यादि ।"

ऋग्वेद के दसवें मंडल में भी 'कुमार' को अग्नि से संयुक्त किया गया है । उपमेय रूप से अग्नि की तुलना 'कुमार' से की गई है तथा दोनों ही माँ के गूढ़ {गुह्यम्} मन {चित्त} से जुड़ना चाहते हैं । अग्नि के लिए कुमार शब्द का प्रयोग और कुमार तथा अग्नि शब्द का एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग से, पौराणिक कथा के लिए कुछ आधार प्राप्त होता है, जिसके अनुसार परवर्तीकाल में कार्त्तिकेय {स्कन्द या कुमार} को अग्नि का पुत्र कहा गया । इससे सम्भवत: यह भी इंगित होता है कि कुमार की अग्नि के रूप में परिकल्पना पूर्व वैदिक काल में किसी न किसी रूप में विद्यमान थी । कुमार का अग्नि से संयुक्त किया जाना, कुमार की प्रचण्डता {अग्नि की तरह} का द्योतक है ।

कुमार अग्नि के रूप में ही नहीं बल्कि एक स्वतन्त्र देवता के रूप में, ऋग्वेद की एक ऋचाओं में दिखाई देते हैं ।[6] यहाँ पर, एक स्वतन्त्र देवता के रूप में यम से वे जुड़े पाये जाते हैं जो कि मृत्यु का {दैवीय} स्वामी है, जो कभी-कभी स्वयं अग्नि या उसकी अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था के साथ पहचाने जाते हैं ।[7] तैत्तिरीय ब्राह्मण[8] के अनुसार, जैसा कि पी0 के0 अग्रवाल[9] महोदय ने निर्दिष्ट किया है, यह ऋचा नचिकेतोपाख्यान को मुख्य आधार बनाता है जो कि कठोपनिषद का विषय है । उपनिषद में वजिश्रवा[10] का पुत्र नचिकेता कुमार[11] कहलाता है और इस प्रसंग में अग्नि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध ध्यातव्य है ।

इस प्रकार का विवेचन 'कुमार' के देवीय व्यक्तित्व को निर्दिष्ट करता है जो कि शुरू से अन्धकार की स्थिति में है, जैसा कि हम 'गुहा'[12] शब्द जो कि सामान्यत: मन्त्रों[13] में प्रयोग किया जाता है, पाते हैं ।

अग्नि की विशेषताएं, जैसा कि ऋग्वेद में पाया जाता है और कार्त्तिकेय (स्कन्द), जो परवर्तीकाल में पौराणिक कथाओं में वर्णित हुआ, की तुलना करना उचित होगा । पी० के० अग्रवाल[14] के अनुसार, ऋग्वेद में अग्नि की अनेक माताएं मानी गई हैं : दो[15] दस[16] और कई अनिश्चित संख्याओं[17] में । यदि वे अपनी सात बहनों की तरह संख्या में सात होती[18] और जैसा कि यजुर्वेद[19] में परम्परा के आधार पर अनुमान किया जा सकता है, जिसके अनुसार अग्नि के लिए सात गर्भ स्थान हैं, इनका स्कन्द की सात माताओं से साम्यता है, जैसे कृत्तिकाएं या ऋषि पत्नियां जिसमें से एक बाद में लुप्त थीं । यदि कृतिका या कार्त्तिकेय की पौराणिक कथा उसी पर निर्भर हो या यदि छ: (मुख) चेहरों वाले देवता जिनका अलग-अलग उद्गम हो, तब एक मां स्कन्द के उद्गम से तटस्थ हो चुकी थी, जहां केवल छ: सिर उत्पन्न करना था । यद्यपि यह ऋग्वेद[20] में अग्नि के सात मुख में असमानता का और स्कन्द के छ: मुख (महाकाव्य में) का (प्रमुख) उत्तम कारण बतलाती है । तब भी, स्कन्द का अपनी सात माताओं से रिश्ते का, कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न होने के कारण कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है ।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद[21] में गुहा शब्द जिसका अर्थ कन्दरा, गुफा, मांद होता है, बहुधा अग्नि के साथ प्रयोग किया गया है और यह शब्द गुह्य (छिपा हुआ) जैसा कि बाद में कार्त्तिकेय कथा से जुड़ गया ।

ऋग्वेद[22] में कुमार (कार्त्तिकेय) रूद्र के स्थान के साथ बतलाये गए हैं, जहां भविष्यदर्शी (मन्त्रद्रष्टा) कहते हैं कि वह वैसे ही रूद्र के सामने झुकते है, जैसे कुमार अपने पिता के सामने झुकते हैं ।

ऋग्वेद के मरूतों की कुछ विशेषताएं समान रूप से महाकाव्य एवं पौराणिक कथाओं के कार्त्तिकेय में पायी जाती है, उदाहरणार्थ - दिखलाई देने में चमकीला[23] लाल {गुलाबी} छवि या रूप वाला [24], बर्छी जैसे हाथ वाला।[25]

अर्वमुथन [26] के अनुसार, ऋग्वेद में अपाम-नपात और सोम, कार्त्तिकेय {स्कन्द} के विकास में सहायता करते हुए {अपना - अपना अंश देते हुए} प्रतीत होते हैं : "स्कन्द भ्रूण में स्वर्णिम कुएं में विकसित हुआ और उसे कृतिकाओं द्वारा स्तनपान कराया गया [27]।

अपाम - नपात जल की सन्तान हैं [28]। उन्होंने स्वयं अपने को भ्रूण की तरह जल में पैदा किया जिसमें वह नवजात शिशु थे। उन्हें तीन माताओं द्वारा स्तनपान कराया जाता है। वे जल में चमकते हैं। वे नौजवान और सुन्दर हैं [29]। सोम जल का भ्रूण है [30]। वे नवजात शिशु हैं। माँ के समान सात बहनों द्वारा पोषित हुए [31] वे जल में युवा {जवान} हुए [32]। वे पानी के गन्धर्व हैं [33]।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि एक तरफ कार्त्तिकेय {स्कन्द} और दूसरी तरफ अपाम - नपात, एवं सोम में कुछ चीजों में समानता है। किन्तु ऋग्वेद तथा महाकाव्यों एवं पुराणों के बीच किसी प्रकार की अटूट श्रृंखला न होने के कारण, कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

स्कन्द के विकास की प्रक्रिया के सम्बन्ध में हाप्किंस [34] ने ठीक ही टिप्पणी की है : स्कन्द एक समष्टि देवता हैं। पहले अग्नि कुमार है, सदैव युवा {जवान} रहने वाले हैं जिनके साथ पहले स्कन्द विधिवत पहचाने गए। दूसरी तरफ अग्नि का पुत्र होने के कारण स्कन्द तीव्रता {ज्वर} और दूसरे क्लेशों {दुखों} के द्वारा पहचाने गए। जो देवता, आग और दुःख का

प्रतिनिधित्व करते हैं, स्वत: क्लेशों §दु:खों§ के दल §सेना§ से जुड़े हुए हैं, जो शिव के चारों ओर दल बनाये हुए हैं और इसलिए वे "शिव के पुत्र" हुए ।

महाकाव्य और परवर्ती साहित्य में कार्त्तिकेय युद्ध के स्वामी §देवता§ माने गए हैं । युद्ध के स्वामी §देवता§ का यह विचार केवल भारत के लिए विशिष्ट नहीं है । ग्रीक पौराणिक कथा एरीस भी युद्ध के स्वामी §देवता§ माने गए । रोमन पौराणिक कथा में युद्ध के स्वामी मार्स माने गए । पूर्व वैदिक कालीन साहित्य में इन्द्र और अग्नि सेना के अग्रिम भाग के नेता की भूमिका अदा करते हुए पाए जाते हैं । ऋग्वेद में इन्द्र को कई बार 'पुरन्दर' §पुरों को नष्ट करने वाले§ कहा गया है और उनके पराक्रम को स्पष्टत: वर्णित किया गया है [35] । वह वज्र [36] का उपयोग करने वाले बतलाये गए हैं । इसी हथियार से उन्हें, वृत्र §सूखे का राक्षस, जो बादल में जल को रख लेता है जिसके रखने से सूखा पड़ता है§[37] को मारते हुए बताया गया है इसलिए इन्द्र को 'वृत्रहन्' §वृत्र को मारने वाला [38]§ की भी उपाधि दी गई । इसी प्रकार अग्नि भी ऋग्वेद और उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में, सेना के सेनापति §प्रमुख§ के रूप में दिखलाई पड़ते हैं । उन्होंने लड़ाइयाँ लड़ी [39] जिसमें उन्हें सेना का नेतृत्व करते हुए निर्दिष्ट किया गया है [40] । उन्हें सूखी झाड़ियों की तरह अपने शत्रुओं को नष्ट करते हुए वर्णित किया गया है [41] । वह छद्मी §कपटी§ को उसी तरह मारते हैं, जैसे पेड़ विद्युत आघात से नष्ट हो जाता है [42] । ऋग्वेद [43] के अनुसार, जब अग्नि मनुष्य को बचाते हैं और शक्ति देते हैं वह युद्ध में भरपूर भोजन प्राप्त §जीतता§ करता है तथा कभी पराजित नहीं होता है । वह 'सहस्रजित' [44] §हजारों पर विजय प्राप्त करने वाला§ है तथा दस्युओं एवं पापियों §दोनों संभवत:

आर्येतर को पराजित करने वाला कहे जाते हैं । 'पुरन्दर' की उपाधि जो बारम्बार इन्द्र के लिए प्रयोग की गई है, अग्नि देवता के लिए भी एक से अधिक बार प्रयोग की गयी है । उनकी 'वृत्रहन' की भी उपाधि मिलती है, इसलिए ऋग्वेद में युद्ध से अग्नि का सम्बन्ध बार-बार दिखाया गया है ।[45] मैक्डानेल के अनुसार युद्ध जैसा गुण अग्नि में इन्द्र से संबंधित होने के कारण है जो कि ॥इन्द्र॥ ऋग्वेद के युद्ध देवता हैं । वस्तुत: अग्नि देवता का युद्ध के देवता जैसा गुण, विशेषत: विद्युतघात के रूप में, उनके लिए अनुपयुक्त नहीं है ।[46]

अथर्ववेद में भी कई स्थानों पर अग्नि का युद्ध से सम्बन्ध स्थापित किया गया है ।[47] वे वस्तुत: कभी अकेले तो कभी दूसरे देवताओं के साथ मुख्य का कार्य करते हैं । युद्ध में सफलता के लिए उनकी स्तुति की जाती है,[48] और उन्हें शत्रु को पराजित करते हुए दिखलाया गया है ।[49] अत: इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि महाकाव्यों एवं अन्य ग्रन्थों में कार्त्तिकेय को अग्नि के पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है, उन्हें युद्ध देवता की उपाधि मिलनी ही चाहिए । यहाँ तक कि स्वयं अथर्ववेद में कुमार को 'अग्निभू:'[50] कहा गया है ।

कार्त्तिकेय ॥स्कन्द॥ को विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता से भी सम्बन्धित किया गया है । इस देवता की विशेषताओं की तुलना ऋग्वेद में वर्णित अग्नि की विशेषताओं से की जा सकती है, जहाँ पर अग्नि को 'विश्वविद्' ॥सब कुछ जानने वाला॥, विश्ववेद ॥सभी ज्ञान को प्राप्त किया हुआ॥, कवि ॥ज्ञानी॥, कविरत्न ॥ज्ञानी पुरूष के समान बुद्धि वाला॥, कहा गया है ।

अग्नि को भी नैगमेष ॥स्कन्द-कार्त्तिकेय का एक रूप, जिसका सूत्र साहित्य में बार-बार वर्णन किया गया है॥, के समान दान की स्वीकृति देते हुए कहा जाता है । इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि कार्त्तिकेय ॥स्कन्द॥ के कुछ

चारित्रिक गुण {विशेषताएं} वेदों में वर्णित अग्नि के गुणों पर आधारित हैं इसीलिए अन्य देवता की अपेक्षा वे ही 'स्कन्द के पूर्वज'[51] कहलाए ।

अथर्ववेद में कुछ भिन्न प्रकार का विचार व्यक्त किया गया है । इसके अनुसार कुमार को गन्धर्व के रूप में सजे-सँवरे बालों वाला, सुन्दर कान्ति वाला एक कुत्ता या एक बन्दर की तरह दिखलाई पड़ने वाला और सतत् नृत्य करने वाला बतलाया गया है । एक शक्तिशाली छवि का उपयोग उनके अनित्यता {अमरता} के साथ हस्तक्षेप को रोकने की दृष्टि से किया गया है ।[52]

वैदिक काल के पश्चात् ऐतिहासिक काल में युद्ध के नए देवता इन्द्र और अग्नि की तुलना में अधिक आश्चर्यजनक तथा विस्तृत प्राचीन मन्दिरों में जो दृष्टिगोचर होते हैं वे कार्त्तिकेय हैं जो कुमार, स्कन्द, सुब्रह्मण्य आदि नामों से जाने जाते हैं ।

अग्नि का रूप कुमार के विकास में, शतपथ ब्राह्मण एक सीढ़ी आगे है । सृष्टि के विकास की व्याख्या करते हुए शतपथ ब्राह्मण[53] उल्लेख करता है : आरम्भ में स्वयं प्रजापति अपने को उत्पन्न करने के इच्छुक थे आत्मसंयमित और विभिन्न नैसर्गिक {प्राकृतिक} घटनाओं जल, पृथ्वी इत्यादि उत्तरोत्तर क्रम में उत्पन्न किया और भूतपति की तरह उषस् में बीज डाला । एक वर्ष में कुमार पैदा हुआ, वह नाम के लिए चिल्लाये जिससे वह बुराइयों से दूर रहे । पहला नाम प्रजापति के द्वारा उन्हें 'रूद्' दिया गया क्योंकि वे रोये या चिल्लाये {रूद् धातु से रोना उस अवस्था {रूप} का नाम अग्नि पड़ा क्योंकि रूद्र, अग्नि है } । तब उन्हें अनेक नाम शर्व, पशुपति, उग्र , अशनि, भव, महादेव और ईशान दिये गऐ । ये अग्नि के आठ नाम हैं; कुमार नवां {नवम} नाम है । उस कुमार ने एक रूप से दूसरे रूप में प्रवेश किया । उसे केवल कुमार

के रूप में कोई नहीं देखता है बल्कि उन्हें अन्य रूपों में देखते हैं । वह उनको उज्ज्वल {चित्र} नाम से बुलाते हुए कहते हैं, "उसकी कला उज्ज्वल है ।" इसलिए शतपथ ब्राह्मण में कुमार को अग्नि या रूद्र का नवां रूप, जो सब जगह व्याप्त है और जो स्वयं हर रूप में पाया जाता है, बिना किसी रूप के कुमार है, अन्तर्यामी का पुत्र है । ऋग्वेद में यह नाम 'यम के रथ'[54] के साथ वर्णित है । बिना पहिए का रथ जिसमें एक डण्डा {ध्रुव} लगा हो, लेकिन जो हर दिशा के सम्मुख हो । सुकुमार सेन के अनुसार कुमार स्कन्द कुमार का मूल रूप था ।[55]

शतपथ ब्राह्मण के एक खण्ड {अनुच्छेद} में कुमार के आठ नाम बतलाये गए हैं जो कि अथर्ववेद में पृथक-पृथक देवता के रूप में उल्लिखित है ।[56] वाजसनेयी संहिता में वे कुछ दूसरे देवताओं की तरह या एक देवता के कई रूपों में वर्णित किये गये हैं ।[57] जबकि शतपथ में अग्नि देवता विभिन्न स्थानों पर विभिन्न नामों से जैसे पूर्वी लोगों में पूर्व बाहिकाल में भव; दूसरे क्षेत्रों में पशुपति, रूद्र आदि नाम से प्रसिद्ध थे ।

शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति ने कुमार को 'चित्र' उपाधि से विभूषित किया । यह उपाधि प्रथम बार ऋग्वेद में प्राप्त होती है जहां अग्नि को आश्चर्यजनक शिशु 'चित्र शिशु' कहा गया है ।[58] अनुमानतः अग्नि से सम्बन्धित ऋग्वेद में 'अदभुत' शब्द के ही कुछ हद तक समान अर्थ में शतपथ ब्राह्मण में इस शब्द का प्रयोग किया गया है ।[59] महाभारत में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कथा है जिसमें कहा गया है,[60] स्कन्द {जो अदभुत है} अग्नि का पुत्र है । यहां यह समझा जा सकता है कि किस प्रकार से अग्नि को कतिपय पूर्ववर्ती उपाधियां परवर्ती कालीन कार्त्तिकेय {स्कन्द} में स्थानान्तरित हो गई होगी । शतपथ

ब्राह्मण [61] में कहा गया है कि प्रजापति ने कुमार अग्नि को एक बकरी यज्ञ करने के लिए दिया । ब्राह्मण ग्रन्थों में वह बकरा या बकरी, अग्नि की पूजा सम्बन्धी कार्यों में समर्पित माना गया है ।[62] महाकाव्यों में बकरा (बकरी) स्कन्द से, इतना अधिक करीबी है कि वह नैगमेष की तरह बकरे के सिर वाला माना जाने लगा ।

शतपथ ब्राह्मण से यह स्पष्ट होता है कि तीन देवताओं अग्नि, कुमार और रुद्र जो अन्य लोक देवताओं के साथ संयोगात्मक प्रक्रिया में लगे थे, इस प्रकार संयुक्त हुए कि वे विशेष परिस्थितियों में पहचाने जाने लगे । शतपथ ब्राह्मण में तीन देवताओं की घनिष्ठता से तीन देवताओं के शासन का वर्णन मिलता है । इसमें कुमार को शिव-पुत्र बतलाया गया है । यहाँ यह भी बतलाना उचित होगा कि वैदिक काल में अग्नि और दूसरे देवता, जैसे इन्द्र, वरुण आदि को सर्वप्रमुख स्थान प्राप्त था । यद्यपि परवर्ती काल में भी इनकी महत्ता चलती रही किन्तु पहले की अपेक्षा इनकी उसमें कुछ कमी आ गई । अब वे ब्राह्मण के विभिन्न स्थानों के (दिकपालक) संरक्षक के अधीन हो गए । कार्त्तिकेय (कुमार)ने शिव, विष्णु आदि देवताओं के साथ केवल शक्ति और कीर्ति को ही नहीं प्राप्त किया वरन् अन्य देवताओं के मध्य अत्यन्त उच्च स्थान को प्राप्त किया ।

महाकाव्यों एवं पौराणिक ग्रन्थों में कार्त्तिकेय देवताओं की सेना के सेनापति के रूप में दिखलाई पड़ते हैं । ऋग्वेद [63] में अग्नि का भी कुछ सम्बन्ध सेना से था । काठक संहिता में अग्नि देवताओं के 'सेनानी' के रूप में वर्णित है; "यह अग्नि देवताओं की सेना के प्रमुख हैं ।"[64] यह कथन मैत्रायणी संहिता [65] से पुनः प्रमाणित होता है । शतपथ ब्राह्मण में भी

अग्नि (अग्नि देवता) को सेना (आनेकवता) लिये हुए दिखलाया गया है। राजसूय यज्ञ के रत्नहवि धार्मिक रीति में जहाँ मुख्य अधिपति के यहाँ यज्ञ होता है, रत्नियों में से एक मोटी रोटी आठ टुकड़ें में मिट्टी के बर्तन में चुने गए राजा को अग्नि के लिए चढ़ाना पड़ता था।[66] ये सभी सन्दर्भ यह स्पष्ट करते हैं कि अग्नि का यह रूप भी जो पराक्रमी पुरूषों से जुड़ा था[67] कार्त्तिकेय से जुड़ गया और अग्नि का पुत्र हो गया।

केवल अग्नि के साथ ही नहीं, बल्कि रूद्र के साथ भी सेना थी। वाजसनेयी संहिता के शतरूद्रीय में 'सेना के नायक की उपासना सोने की भुजा' से की गयी है।[68] यह कथन शतपथ ब्राह्मण से और अधिक स्पष्ट हो जाता है। इसमें कहा गया है कि रूद्र-अग्नि वास्तव में सोने की भुजावाले नेता और धर्मों के देवता हैं।[69] अथर्ववेद में रूद्र के साथ जोर से चिल्लाने वाले समुदाय लम्बे बालों वाले सैनिकों, जंगली बालों वाली जोर से चीखने वाली औरतों का वर्णन किया गया है।[70] यह स्पष्टतः रूद्र के समान स्वभाव वाले अनुचरों के विषय में है। इसलिए 'सेना' के सम्बन्ध में पौराणिक कथा भी कार्त्तिकेय से सम्बन्धित मिलती हैं।

उत्तर वैदिक काल में कार्त्तिकेय के व्यक्तित्व में बच्चों के सम्बन्ध में दुष्टता और परोपकार का विशिष्ट संगम है। गृह देवता के रूप में, वह शिशु-रक्षक और शिशु भक्षक (नष्ट करने वाला) दोनों है। ऋग्वेद में अग्नि को अपने विश्वसनीय भक्तों को सन्तान दान करते हुए[71] (सन्तान की कामना पूरी करते हुए) बतलाया गया है क्योंकि गर्भधारण करते हुए योग्य महिलाओं के गर्भाशय की रक्षा करने वाले[72] कहे जाते हैं। राक्षसों भूत पिशाचों[73] विशेषतः उन बुरी आत्माओं से जो औरतों पर[74] गर्भस्थ

शिशु तथा उनके उत्पन्न होने पर [75] उन पर हमला करते हैं, से रक्षा के लिए उनकी स्तुति की जाती हहै । वे जातवेद [76] कहलाते हैं जो पैदा (जात) हो जाते हैं उनकी सभी जानकारियाँ रखते हैं क्योंकि वे मानव के सभी पीढ़ियों के बारे में जानते हैं ।[77] इसके विपरीत रूद्र को भयानक कई रूपों तरीकों से अपने क्रोध को प्रदर्शित करते हुए [78] मनुष्यों को मारते हुए और सम्पत्ति को नष्ट करते हुए [79] दिखलाया गया है । इसलिए उनकी स्तुति बच्चों को रोग से क्षति न पहुँचाने [80] और उन्हें किसी प्रकार की चोट न पहुँचाने के लिए [81] की जाती है । अग्नि और रूद्र के स्वभाव का सम्मिश्रण होने के कारण कार्त्तिकेय में विपरीत लक्षण पाए जाते हैं ।

अग्नि और रूद्र के ऋग्वैदिक काल के विभिन्न लक्षणों को कुमार के विभिन्न नामों के लिए प्रयोग किया जाता है जो उत्तर वैदिक काल में कार्त्तिकेय के चरित्र को दर्शाता है । महाकाव्य काल के समय (लगभग चौथी शती ई0पू0) तक, कार्त्तिकेय को स्कन्द के नाम से जाना जाने लगा था ।

छान्दोग्य उपनिषद में, (जो पूर्व-बौद्ध काल का है) स्कन्द शब्द आया है [82] । यहाँ 'स्कन्द' वैदिक ऋषि सनत्कुमार का दूसरा नाम है । उन्होंने नारद को अज्ञानता से छुटकारा तथा ज्ञान (मुक्ति) प्राप्त करने की शिक्षा दी । नारद जो कि मन की शान्ति खो चुके थे, सनत्कुमार के पास पहुँचे और शान्ति प्राप्त करने का उपाय पूछा । सनत्कुमार ने उन्हें शिक्षा दी : " वह रास्ता जो ज्ञान या प्रकाश देता है, स्कन्द की ओर इंगित करता है ।[83]" इस प्रकार सनत्कुमार की पहचान स्कन्द से की गई ।[84] यह कथन भी प्रभावित करता है "लोग उन्हें स्कन्द कहते हैं ,

ये उन्हें स्कन्द कहते हैं ।[85] महाभारत में भी कार्त्तिकेय की पहचान सनत्कुमार से की गई है जो सबसे पहले पैदा होने वाले ब्रह्मा के पुत्र हैं ।[86] कार्त्तिकेय 'उपदेशक-देवता', दक्षिण भारत में भी जाने जाते हैं, जहाँ एक प्रकार के कार्त्तिकेय या सुब्रह्मण्य देसिक-सुब्रह्मण्य के नाम से प्रसिद्ध हैं । इस रूप में कहा जाता है कि उन्होंने पिता शिव को 'प्रणव' {वैदिक गान} सिखाया था ।[87]

मैत्रायणी संहिता, एक बाद की मूल संहिता में पौराणिक देवताओं और उनके 'गायत्री मन्त्रों' की चर्चा की गई है जिससे मूल 'शतरूद्रीय' शर्व {बाण का प्रबन्ध करने वाला} की स्तुति के साथ आरम्भ हुआ, {शर्व} रूद्र और शिव के नाम से निवेदन करता है । तब 'पुरूष महादेव', 'कुमार - कार्त्तिकेय' {स्कन्द}, 'चतुर्मुख-पदमासन' इत्यादि के गायत्री मन्त्रों से प्रारम्भ होता है । मैत्रायणी संहिता 'स्कन्द गायत्री में स्कन्द देवता के तीन नामों का उल्लेख मिलता है ।[88]

तत् कुमाराय विद्महे कार्त्तिकेय धिमहि,
तन्नो: स्कन्द: प्रचोदयात् ।

तैत्तिरीय आरण्यक के दसवें प्रपाठक के प्रथम अनुवाक में, पुरूष - महादेव-रूद्र, पुरूष - महासेन - षण्मुख {कुमार कार्त्तिकेय} के लिए गायत्री मन्त्रों और अन्य देवताओं, जैसे - दन्ति {गणेश} नन्दी, गरूड़, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह, आदित्य, दुर्गा और अग्नि, के लिए मन्त्रों के साथ वर्णन है । षण्मुख का गायत्री मन्त्र इस प्रकार है ।[89]

" तत् पुरूषाय विद्महे महासेनाय धिमहि,
तन्नो: षण्मुख: प्रचोदयात् । "

मैत्रायणी संहिता और तैत्तिरीय आरण्यक दोनों की सूचियों की तुलना से यह ज्ञात होता है कि दोनों में बहुत समानता है । इन देवताओं के विचार का मूर्त रूप उत्तर वैदिक काल के एक मूल ग्रन्थ तैत्तिरीय ब्राह्मण से सम्बन्धित महानारायण उपनिषद में विकसित होता है ।[90] इन उत्तर वैदिक काल के ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि इस काल में हिन्दुओं के धार्मिक दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन हुआ और पतंजलि के लौकिक देवता ने वैदिक देवता पर श्रेष्ठता प्राप्त कर ली ।[91]

इस सन्दर्भ में, अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'स्कन्द - यज्ञ की चर्चा की गई है जो अथर्ववेद [92] के 'परिशिष्ट' के अन्तर्गत है । ग्रन्थ को 'धूर्त कल्प' भी नाम दिया गया है । 'स्कन्द-यज्ञ' उस ग्रन्थ को इंगित करता है जिसमें स्कन्द देवता के यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रों §विधि का उल्लेख है । धूर्तकल्प का अक्षरश: अर्थ -"धूर्त शास्त्र विधि है, यह स्पष्ट नहीं है, किन्तु पदवी और ग्रन्थ की विषय सूची से शायद ही संशय हो कि 'धूर्त' की उपाधि 'स्कन्द' §कार्त्तिकेय§ के लिए ही प्रयोग की गई, जो कई बार 'भगवान देवो धूर्त:' कहलाए ।

'स्कन्द - यज्ञ' स्कन्द §कार्तिकेय§ की उपासना पर प्रकाश डालता है । उपासना का रूप, जैसा ग्रन्थों में वर्णित किया गया है, देवताओं की परम्परागत पूजा §उपासना§ से वस्तुत: भिन्न नहीं है । जैसा कि भगवद्गीता में कहा गया है - भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प,फल एवं जल चढ़ाना, देवता को प्रसन्न करने के लिए पर्याप्त था ।[93] इसी प्रकार यज्ञ करते हुए, देवता के पैर पर सुगन्धित जल, सुगन्धित फूल और पत्र चढ़ाये जाते थे । उनके पास एक दीपक §दिया§ भी जलाया जाता था ।[94] इस प्रकार यज्ञ में छ: भेंट होते थे जिसमें छ: श्लोकों का भी वर्णन होता था, एक श्लोक एक प्रसंग के लिए था ।

कुमार स्वामी [95] ने भी यक्ष की उपासना के साथ इन चीजों (वस्तुओं) की भेंट पर विचार किया है । तब 'हविष्य' जो दूध, दही, मिठाइयों, फलों, जड़ों आदि से बनी है, की भेंट उनके विभिन्न नामों से की जाती है और इसलिए उन के विभिन्न नामों का अत्यन्त आदर के साथ उच्चारण होता है । ये सभी भेंट उपासना (भक्ति)[96] के कारण चढ़ायी जाती थी । इससे कार्त्तिकेय('धूर्त') की उपासना के स्वदेशी प्रवृत्ति पर शायद ही सन्देह हो । भक्त सदैव विश्वास करता है कि उसकी भेंट स्वीकार कर ली गई है, देवता बहुत प्रसन्न होंगे और भौतिक सुख की इच्छा की पूर्ति होगी तथा शत्रु एवं नर--नारियों के बुरे कर्मों से रक्षा करेंगे ।

'धूर्त' के अतिरिक्त, स्कन्द-यज्ञ में स्कन्द के अनेक नाम दिये गए हैं । वे विशाख,पिनाकसेन, विनायकसेन, शल्कटंकत, कुमार, लोहितगात्र, षडानन या षडास्य, स्वच्छन्द, निर्मला, भातृस्त्रीकाम, अग्निपुत्र, कार्त्तिकेय या कृत्तिकापुत्र, ब्रह्मण्य और स्वामी इत्यादि हैं । एक स्थान पर विशाख स्कन्द के भ्राता का नाम है, जहाँ स्कन्द विशाख के साथ पहचाने जाते हैं । कुछ नाम जो स्कन्द को दिये गए हैं जैसे महिपति या पिनाकसेन, अन्यत्र कहीं नहीं पाए जाते हैं ।

स्कन्द - यज्ञ में, स्कन्द को सभी रूपों को(सर्वरूप) धारण करने वाले के रूप में वर्णित किया गया है । वह सदैव युवास्था (युवा-कुमार) में रहने वाले हैं, जैसे अभी पैदा हुए हों (सद्योजात) । उनके छः मुख, अठारह आँखें, सुनहरा रंग, लाल शरीर और एक चमक भरा प्रकाश है ।[97] उनका मयूर (मोर) से सम्बन्ध है [98] और वे कभी असफल न होने वाली शक्ति से सुसज्जित है तथा सदैव विजय - घण्ट एवं पताका से जुड़े हैं [99] स्कन्द माताओं से घिरे हैं ।[100] स्कन्द के इस वर्णन में महाकाव्यों एवं पुराणों

में वर्णित कथाओं का मूल उत्स खोजा जा सकता है जहाँ शिव, अग्नि और कृत्तिकाओं के साथ उनका निकट सम्बन्ध जोड़ा गया है । उनके माता-पिता [कुल] के विषय में शंका बढ़ जाती है: कुछ लोग अग्नि का पुत्र, कृत्तिकाओं का पुत्र, इन्द्र का पुत्र कहते हैं; कुछ लोग पशुपति का पुत्र, रूद्र का पुत्र कहते हैं " जो तू है, है तू, आदर तुझको है ।[101]

बारम्बार धूर्त उपाधि से विभूषित करने पर भी उन्हें वरदान देने वाले और मंगल करने वाले देवता के रूप में बताया गया है, इसलिए स्कन्द देवता की स्तुति की जाती है :"धन, अन्न, पशुगण और खुशी, वाणी तथा ज्ञान यहाँ तक कि दास एवं दासी, सामाजिक स्थिति, आभूषण, सुपारी का पेड़, इत्यादि उनके द्वारा प्राप्त होते हैं । वे जिनको भगवान का आशीर्वाद प्राप्त होता है पवित्र और आदरणीय धूर्त की पूजा करते हैं, उसे धन-दौलत, सन्तान और सम्मान मिलता है ।[102] इस ग्रन्थ को कब पूरा किया गया, निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है । किन्तु यह मानना उचित ही है कि इसका समय पहले के गृहसूत्रों के पूर्व की रचनाओं से दूर नहीं है । यह अपने प्रसंग और भाषा की दृष्टि से थोड़ा बाद का प्रतीत होता है ।[103]

जो भी हो, 'स्कन्द-यज्ञ' का लेखक निःसन्देह स्कन्द देवता का एक महान् और अनन्य भक्त है जिसके सम्मान में उसने यह कार्य किया । उसके अनुसार स्कन्द केवल चालाकी एवं धूर्तता का ही देवता नहीं था वरन् एक सत्यवादी और परोपकारी देवता भी था ।

सूत्र साहित्य के काल में कार्त्तिकेय मुख्य [प्रधान] देवता के रूप में दिखलाई देते हैं । यह उस नाम से स्पष्ट है जिस नाम को सूत्रकार ने रखा है । मैकडानैल के अनुसार सम्पूर्ण सूत्र-साहित्य की रचना 600 ई0 पू0 से

200 ई0 पू0 के बीच की गई थी ।[104] हिरण्यकेशिन गृह्य सूत्र में स्कन्द का वर्णन विष्णु, रूद्र और अन्य देवताओं के साथ किया गया है । जिस समय इसकी रचना की गई स्कन्द उससे कुछ पहले ही लोकप्रिय हो चुके थे ।[105] उनका सम्बन्ध विष्णु और रूद्र के साथ (ब्राह्मण धर्म के दो अति श्रेष्ठ देवता) पुन: स्थापित किया गया जो अपने भक्तों (अनुयायियों) के हृदय में बसे थे ।

बौधायन धर्मसूत्र में इस देवता के अनेक नाम सनत्कुमार, विशाख, षण्मुख, महासेन और सुब्रह्मण्य उल्लिखित हैं । यह रोचक तथ्य है कि दक्षिण भारत में 'सुब्रह्मण्य' अत्यन्त लोकप्रिय नाम है । यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि इन सभी देवताओं, जो इस ग्रन्थ में वर्णित हैं, की पूजा गृहस्वामियों द्वारा जल चढ़ाते (तर्पण) समय प्रतिदिन की जाती थी ।

"ओम् सनतकुमारं तर्पयामि: स्कन्दं तर्पयामि;
इन्द्रं तर्पयामि; षष्ठीं तर्पयामि;
षण्मुखं तर्पयामि; विशाखं तर्पयामि;
जयन्तं तर्पयामि; महासेनं तर्पयामि;
स्कन्दपार्सदभं तर्पयामि ।"

छान्दोग्य उपनिषद[106] और बौधायन धर्मसूत्र मे भी स्पष्ट है कि सनत्कुमार की पहचान स्कन्द से की गयी है । इसके अतिरिक्त, तैत्तिरीय आरण्यक में षण्मुख और महासेन दोनों का उल्लेख किया गया है।[107] इस बात में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है कि बौधायन धर्मसूत्र की रचना के समय, स्कन्द एक लोकप्रिय देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे । मैक्डॉनैल के अनुसार बौधायन धर्मसूत्र की रचना आपस्तम्ब धर्मसूत्र के पहले ही हो गयी थी । बूलर ने इसे लगभग 400 ई0 पू0 का माना है[108]। मैक्डानैल पुन: कहते हैं कि इस रचना की भाषा निश्चयेन सूत्रों से पुरानी है । इस प्रकार इस ग्रन्थ

के साक्ष्य से स्पष्ट होता है कि इस देवता की पूजा 400 ई0 पू0 के पहले से ही की जाती थी ।

पुनश्च, श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा गया है कि रूद्र हिरण्यगर्भ हैं जिसका जन्म या प्रत्यक्षीकरण अपने हृदय में अवश्य दिखना चाहिए ।[109] इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि शुरू में रूद्र ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया ।[110] अत: एक विरोधाभास उत्पन्न होजाता है कि रूद्र स्वयं 'हिरण्यगर्भ' भी हैं और हिरण्यगर्भ के पिताभी हैं । स्कन्दोपाख्यान स्कन्द को हिरण्यगर्भ के रूप में पिरिचित कराता है और यदि स्कन्द, अग्नि तथा रूद्र के अनुरूप हैं । यदि वे अग्नि और रूद्र के पुत्र हैं, इस विरोधाभास से यही अर्थ लगाया जा सकता है कि अग्नि का वर्णन प्रजापति के रूप में किया गया है जो सभी जीवों में स्वयंभू, स्वयं उत्पन्न होने वाले पिता जो अपने को पुत्र भी मानता है, अन्तर्यामी है ।[111]

इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि ऋग्वेद के एक 'रिक्त' में नैगमेष नाम आया है, जो पुत्र एषणा की पूर्ति करने वाले देवता समझे जाते हैं ।[112] विन्टरनित्ज[113] के अनुसार यह नेगमेष और कोई नहीं बल्कि 'नैगमेय' है जो स्कन्द कार्तिकेय का एक रूप है, जो महाकाव्यों एवं पुराणों में वर्णित है । यह नाम गृह्यसूत्रों में भी आता है और वहाँ भी पुत्र की इच्छा पूर्ति करने वाले, देवता के रूप में परिचित कराया गया है ।[114]

पारस्कर गृह्यसूत्र में इस देवता के प्रतिकारी रूप को उल्लिखित किया गया है, जहाँ कुमार (स्कन्द) एक पिशाच के रूप में निर्दिष्ट किये गऐ हैं, जो बच्चों को सताते हैं ।[115] देवता के इस रूप का संकेत महाकाव्य और पौराणिक साहित्य में भी किया गया है ।

इस प्रकार सूत्र साहित्य से यह संकेतित होता है कि इस तरह के साहित्य के रचना काल के समय में भी इस देवता के कुछ महत्वपूर्ण चारित्रिक गुण ज्ञात थे । 'स्कन्द-यज्ञ' (जैसा कि पूर्व उल्लिखित है) सूत्र साहित्य के समय का ही है, देवता 'धूर्त' (कपटी) रूप को वर्णित करता है, एक अनोखा स्वभाव परवर्ती साहित्य में भी मिलता है । वह बच्चों का शत्रु और मित्र दोनों माना जाता है । नैगमेष के रूप में वह बाँझ औरत को पुत्र का वरदान देता है और कुमार के रूप में वह नवजात शिशु को कष्ट देता है । उसका सनत्कुमार से सम्बन्ध (जैसा कि छान्दोग्य उपनिषद में उल्लिखित है) तपस्या और विद्वता से दिखलाया गया है, एक विशेष गुण जो परवर्ती साहित्य में कई बार वर्णित है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जिस समय वैदिक वाङ्मय का अन्तिम भाग लिखा जा रहा था, उस समय तक स्कन्द-कार्त्तिकेय एक लोकप्रिय देवता हो गए थे । स्कन्द-कार्त्तिकेय के व्यक्तित्व के विकास में उत्तर वैदिक काल की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है ।

सन्दर्भ - संकेत

1- ऋग्वेद की लगभग 250 ऋचाएँ इन्द्र की प्रशंसा में समर्पित है अर्थात् ऋग्वेद की कुल ऋचाओं का लगभग 1/4 है ।

2- महत्ता की दृष्टि से इन्द्र के बाद अग्नि दूसरे स्थान पर हैं । इनसे सम्बन्धित ऋग्वेद में लगभग 200 ऋचाएँ हैं । {मैक्डानिल, ए0 ए0, वैदिक मैथालॉजी, पृ0 88}

3- ऋग्वेद, 2•33•12 ; 4•15•7 ; 8•9•10 ; 5•2•1•2; 5•78•9; 6•75•17; 8•30•1 ; 8•31•8; 8•69•14; 10•34•7; 10•135•3•4•5; इत्यादि । यहाँ पर वही ऋचाएँ उल्लिखित है जो प्रस्तुत सन्दर्भ से कमोबेश रूप में सम्बन्धित है ।

4- ऋग्वेद, 5•2•..

5- सायण, 5•2•1 में सूक्तस्य आग्नेयत्वात् कुमार इत्यग्नि रूच्यते; 5•2•6 में तम कुमारनि अग्निय वा

6- ऋग्वेद, 10•135

7- ऋग्वेद, 1•66•8; 1•164•64, मैक्डानिल, ए0ए0, वैदिक मैथालॉजी, पृ0 173 और टिप्पणी 32 में, पृ0 14•

8- तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3•11•8•

9-अग्रवाल वी0 के0, स्कन्द-कार्त्तिकेय, पृ0 2

10- कठोपनिषद, 1•1•1•

11 - वही

12 - ऋग्वेद, 5•2•1; 10•79•3•

13 - अग्रवाल, पी० के०, स्कन्द-कार्त्तिकेय, पृ० 2

14 - वही, पृ० 4

15 - ऋग्वेद, 1•31•2•

16 - ऋग्वेद, 1•72•2; मैक्डानैल, वैदिक मैथालाजी, पृ० 91

17 - ऋग्वेद, 10•1•2; 10•1•7; 3•31•2 इत्यादि ।

18 - इसका अर्थ सात बहने भी होगा जो कि अग्नि की नहीं बल्कि आपस में एक दूसरे की बहनें हैं । 'रूद्र' के सम्बन्ध में हम देखते हैं कि पहले के प्रसंग अम्बिका को उसकी बहन बतलाते हैं जो बाद में उसकी पत्नी हो गई । अग्नि के सम्बन्ध में बहनें माताओं के समान हो सकती हैं ।

19 - वाजसनेयी संहिता, 17•19•

20 - सप्तसिरसनम्, ऋग्वेद, 3•5•5; अथर्ववेद, 4•39•10 में भी सप्तस्याम् ।

21 - अग्नि का जन्म गुफा में हुआ (1•67•4) वे गुफा में बैठते हैं (1•63•2) । वे गुफा में छिपे रहते हैं (1•65•1) । वे एक गुफा से दूसरी गुफा में जाते हैं (1•67•3) ।

22- ऋग्वेद, 2•33•12

23 - मैक्डानैल, वैदिक मैथालाजी, पृ० 78

24 - वही, पृ० 78•

25 - वही, पृ० 79

26 - अर्वमुथन, टी० जी०, गणेश, पृ० 22 (जर्नल आॅफ ओरिएण्टल रिसर्च, भाग

27 - महाभारत, III, 224, 13-14•

28- ऋग्वेद, 1•136•5; 39•1

29- ऋग्वेद, 2•35•4; 5•11•13•

30- ऋग्वेद, 9•97•4•

31- ऋग्वेद, 9•61•4•

32- ऋग्वेद, 5•45•9; 9•9•5

33- ऋग्वेद, 10•13•5

34- हाप्किन्स, ई0 डब्ल्यू, इपिक मैथालाजी, पृ0 229

35- मैक्डानेल, ए0ए0, वैदिक मैथालाजी, पृ0 60

36- ऋग्वेद, 4•22•2•

37- मजूमदार आर0सी0 (सं0) वैदिक एज, पृ0 37

38- ब्लूमफील्ड, रिलिजन आफ द वेद, पृ0 178

39- ऋग्वेद, 8•43•21

40- ऋग्वेद, 8•73•8•

41- ऋग्वेद, 4•4•4•

42- ऋग्वेद, 6•8•5••

43- ऋग्वेद, 1•27•7•

44- ऋग्वेद, 1•59•5•

45- मैक्डानेल, ए0 ए0, वैदिक मैथालाजी, पृ0 98

46- वही

47- अथर्ववेद, 6•97•1; 16•9•1; 3•1•2; 3•1•6; 8•3•1; 8•8•3; 8•8•24• इत्यादि

48- बुलेटिन आफ द दक्कन कालेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट, IX, पृ0 210•

49- अथर्ववेद, 6•67•2•

50- वही

51- चटर्जी, ए० के०, द कल्ट आफ स्कन्द-कार्त्तिकेय, पृ० 2.

52- अथर्ववेद, 4.31.11

53- शतपथ ब्राह्मण, एगलिंग के अनुवाद III पृ० 157-161 ; अग्रवाल, पी०के०, स्कन्द-कार्त्तिकेय, पृ० 6.

54- ऋग्वेद, 10.1.35 :

55- 'इण्डो-इरानिका, भाग IV, संख्या 1, पृ० 27

56- भण्डारकर, वैष्णवविज्म, शैविज्म-इत्यादि पृ० 148-9, कीथ, रिलिजन एण्ड फिलासफी आफ द वेदान्त एण्ड उपनिषदस, पृ० 148

57- वाजसनेयी संहिता, 39.8, मैकडानैल, वैदिक मैथालाजी, पृ० 75

58- ऋग्वेद, 10.1.2.

59- ऋग्वेद, 5.10.12; 6.15.2.

60- महाभारत {आरण्यक पर्व} III 213.2, III 212.5. मार्कण्डेय पुराण 94.7.

61- शतपथ ब्राह्मण, 6.2.1.5.

62- अथर्ववेद, 9.5.13; मैत्रायणी संहिता, 4.3.3; शतपथ ब्राह्मण, 6.4.4.15; गोपथ ब्राह्मण 2.3.19; तैत्तिरीय संहिता, 4.32; तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.7.3.1. 'अज' अग्नि से समीकरणीय है; अथर्ववेद, 9.5.7.

63- ऋग्वेद, 7.63.1; 10.84.2.

64- काठक संहिता, 36.8.

65- मैत्रायणी संहिता, 1.10.14.

66- शतपथ ब्राह्मण, 5.3.1.1; मैत्रायणी संहिता, 3.13.14.

67- ऋग्वेद, 10•80•1•7•

68- वाजसनेही संहिता, 16•17

69- शतपथ ब्राह्मण, 9•1•1•18

70- अथर्ववेद, 11•2•11

71- ऋग्वेद, 3•1•23, 1•64•4

72- ऋग्वेद, 3•3•10; 10•51•3•

73- ऋग्वेद, 10•87•1; अथर्ववेद, 5•29•

74- ऋग्वेद, 8•6; {ग्रिफिथ का अनुवाद}, भाग 1, पृ0 403

75- ऋग्वेद, 10•162•

76- मैकडानैल, वैदिक मैथालाजी, पृ0 97

77- ऋग्वेद, 1•70, 1•3; 6•15•13

78- मैकडानैल, वैदिक मैथालाजी, पृ0 75 और 76

79- ऋग्वेद, 1•114• 7-8; 2•33•1•

80- ऋग्वेद, 7•46•2•

81- ऋग्वेद, 1•114•8; 6•287; 6•46•4; वाजसनेयी संहिता, 16•16; अथर्ववेद 11•2-59;

82- छान्दोग्य उपनिषद, 7•26•2;

83- तत्रैव

84- काणे, पी0वी0, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, जिल्द V, पृ0 581

85- छान्दोग्य उपनिषद, 7•26•2•

86- महाभारत XII, 37•12•

87- ठाकुर, यू0, सम एस्पेक्टस ऑफ एन्सिअन्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ0 245•

88- मैत्रायणी संहिता, 2•9•1• 11-12•

89- तैत्तिरीय आरण्यक, 10·15

90- तैत्तिरीय ब्राह्मण, IV, 1-18

91- बनर्जी, जे० एन०, डेवलपमेन्ट आॅफ हिन्दू आइकानोग्राफी पृ० 575 - 78

92- गुडविन, चारलेस जे०, जे ए ओ एस, प्रोसीड मई 1890, V-XIII, अथर्ववेद परिशिष्ट, XX.

93- भगवद्गीता, IX. 26:
"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन: ।।

94- स्कन्द-यज्ञ, III, 2 - 3 :
'इम आप इति - गन्धोदक पदयम् ।'

95- कुमार स्वामी, ए० के०, यक्ष पृ० 24-27 और 28

96- तत्रैव, पृ० 27 - 28

97- स्कन्द-यज्ञ, II 8·

98- वही II · 3·

99- वही, II· 5·

100- वही, II· 6·

101- वही, 4·

102- तत्रैव· 2-3

103- सूत्र साहित्य का संकलन 600 ई० पू० से 200 ई० पू० के बीच किया गया, मैक्डानैल, ए०ए० , ए हिस्ट्री आॅफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० 206·

104- तत्रैव, पृ० 206·

105- हिरण्यकेशिन गृह्यसूत्र, 2,8,12

106- छान्दोग्य उपनिषद्, 7·26·2

107- तैत्तिरीय आरण्यक, 10•15

108- मैक्डानेल, ए०ए०, ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 218-19•

109- श्वेताश्वतर उपनिषद् IV, 12: 'हिरण्य गर्भं पश्यत जायमानम ।"

110- वही, III 4,• हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।

111- नवरत्नम, आर0, कार्त्तिकेय - द डिवाइन चाइल्ड, पृ0 87

112- यह खिल ऋग्वेद के बाद पाया जाता है, X.184 (मैक्समुलर, भाग IV, पृ0 540)

113- जे आर0 ए0एस0 1895, पृ0 149 - 55

114- आपस्तम्ब गृह्यसूत्र I•12; मानव गृह्यसूत्र II 18; आश्वलायन गृह्यसूत्र, I•14•3; सांख्य, I•22•7

115- सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, XIX, I•16•24

अध्याय - तीन

महाकाव्यों एवं पुराणों में कार्त्तिकेय

(क) महाकाव्यों में कार्त्तिकेय

(ख) पुराणों में कार्त्तिकेय

महाकाव्यों एवं पुराणों में कार्त्तिकेय के जन्म एवं उपलब्धियों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन मिलता है । ऋग्वेद में कार्त्तिकेय के व्यक्तित्व में देवत्व का आरोपण नहीं दृष्टिगोचर होता है । उत्तर वैदिक कालीन ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वप्रथम वे एक देवता के रूप में दिखलाई देते हैं । महाकाव्यों एवं पुराणों में कार्त्तिकेय के व्यक्तित्व और कृत्तित्व में पूर्ण विकास परिलक्षित होता है । कार्त्तिकेय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के पूर्ण विकास में तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का विशेष योगदान रहा है ।

§क§ महाकाव्यों में कार्त्तिकेय

कार्त्तिकेय के जन्म एवं चरित्र से सम्बद्ध कथानक महाभारत में तीन स्थानों पर मिलते हैं -

1. आरण्यकपर्व [1]
2. शल्यपर्व [2]
3. अनुशासनपर्व [3]

रामायण के बालकाण्ड में दो अध्याय [4] इस देवता के जन्म से सम्बन्धित हैं । इसके अतिरिक्त महाकाव्यों में कार्त्तिकेय से सम्बन्धित अन्य रोचक सन्दर्भ भी हैं । स्कन्द-कार्त्तिकेय के उद्भव की जटिल समस्या महाभारत के प्रणेता वेद व्यास के सम्मुख भी थी जिसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार से किया है :

> कुछ उसे पितामह के पुत्र के रूप में व्याख्यायित करते हैं ;
>
> सनत्कुमार, ब्रह्मा से जो सबसे पहले पैदा हुए,
> कुछ कहते हैं कि वे महेश्वर के पुत्र हैं,
> कुछ कहते हैं कि वे अग्नि §विभावसु§ के पुत्र हैं ,
>
> कुछ कहते हैं कि वे उमा के पुत्र हैं ;
>
> कुछ कहते हैं कि वे कृत्तिकाओं के पुत्र हैं ;
>
> कुछ कहते हैं कि वे गंगा के पुत्र हैं । [5]

कार्त्तिकेय से सम्बन्धित कथानक, जो कि महाभारत में है, को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : 1• जिसमें कार्त्तिकेय को अग्नि का पुत्र बतलाया गया है,[6] 2• जिसमें उनका वर्णन रूद्र के पुत्र के रूप में किया गया है ।[7]

महाभारत के आरण्यक पर्व में कार्त्तिकेय के जन्म से सम्बन्धित कथा इस प्रकार मिलती है ।[8] प्राचीन काल में देवताओं और असुरों में एक दूसरे का विनाश करने के लिये युद्ध छिड़ा । देवतागण अन्ततः असुरों से पराजित हुए । देवताओं के राजा इन्द्र, असुरों के प्रबल आक्रमण से दु:खी होकर मानस पर्वत पर वह विचार करने लगे कि असुरों की दुष्टता से छुटकारा पाने के लिए एक नायक की तलाश कैसे की जाए । जब वह विचारमग्न थे, उसी समय उन्होंने एक महिला की दर्दनाक चीख सुनी । उन्होंने देखा कि राक्षस केशिन् उस महिला का हाथ पकड़े हुए था । कठिन संघष के बाद, इन्द्र उस महिला को राक्षस के हाथ से मुक्त कराने में सफल हुए । उस महिला ने बताया कि वह प्रजापति की पुत्री थी और उसका नाम देवसेना था । उसकी बहिन दैत्यसेना का अपहरण केशिन् ने कर लिया था । अपने पिता प्रजापति की आज्ञा के अनुसार दोनों बहिनें मानस पर्वत पर, स्वतंत्र रूप से मनोरंजन करने के लिए आती थीं । केशिन् उन्हें देखकर प्राय: उन्हें पकड़ने की चेष्टा करता था । दैत्यसेना, पहले ही उसके द्वारा पकड़ कर ले जायी गई थी । चूँकि देवसेना इन्द्र के द्वारा बचाई गई थी, इसलिए उसने इन्द्र से निवेदन किया हे देव ! हमें अजेय पति का वरण करने का अवसर प्रदान कीजिए । ' इन्द्र के द्वारा, यह पूछे जाने पर कि वह किस तरह का गुण अपने पति में चाहती है, उसने उत्तर दिया; जो प्रसिद्ध और शक्तिशाली हो तथा ब्रह्मा के प्रति समर्पित हो, जो सभी दिव्य शक्तियों असुरों, यक्षों, किन्नरों, उरगों, राक्षसों तथा बुरे अवचारों से युक्त दैत्यों जीतने में समर्थ हो एवं सम्पूर्ण संसार को अपने वश में करलें, ऐसा मेरा पति हो । उसकी ऐसी बातों को सुनकर इन्द्र विचारमग्न हो गए कि ऐसा कोई व्यक्ति नही है जो उसका पति हो सके । उस विशेष क्षण में, उसने उदयपर्वत पर सूर्य को उदय होते और कुछ क्षण में, नए चन्द्र-दिवस पर महान् सोम {चन्द्रमा} को

सूर्य के अन्दर समाहित होते हुए, देवताओं और असुरों को पर्वत पर चढ़ते हुए, प्रात: का सान्द्र-प्रकाश रक्त वर्ण में हल्का रंगा हुआ, समुद्र का रक्त वर्ण, भृगु अंगिरस एवं अन्य के द्वारा विभिन्न स्रोतों के साथ भेंट किये गए विभिन्न आहुतियों को अग्नि के द्वारा ले जाते हुए, सूर्य के वलय में प्रवेश करते हुए, चौबीस पर्वों से सूर्य को आभूषित करते हुए और इस प्रकार घिरे हुए सूर्य के अन्दर भयंकर सोम उपस्थित था। इसलिए इन्द्र ने विचार किया कि यदि सोम या अग्नि एक पुत्र पैदा करें तो वही उस महिला का पति हो सकता था तथा असुरों का विनाश कर सकता था। इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की। ब्रह्मा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

तब, देवसेना के साथ इन्द्र उस स्थान पर गए, जहाँ वशिष्ठ के नेतृत्व में सात दैवी ऋषियों ने यज्ञ पूरी की तथा देवताओं को आहुति दी। अग्नि, जो ऋषियों के द्वारा स्रोत रूप में प्रार्थित था, सौरमण्डल से निकला और 'आहवनीय' अग्नि ने देवताओं के लिए आहुति ले जाने का सामान्य कार्य किया। परन्तु जैसे ही वह यज्ञ के स्थान से बाहर आया, उसने ऋषियों की पत्नियों के सुन्दर और अर्द्धनग्न शरीर को देखा, जो उस समय स्नान कर रहीं थीं। अग्नि, उनके प्रति उत्कंठा से रुक गया। जब ऋषियों की पत्नियों ने परस्पर-संबन्ध का कोई संकेत नहीं दिया तो वह (अग्नि) निराश होकर, एक जंगल में चला गया। दक्ष की पुत्री स्वाहा जो कि पहले से ही अग्नि से प्रेम करती थी, ने उस कामी उत्कण्ठा को जान लिया जिसने उसे (अग्नि को) पहले ही काबू में कर लिया था। इसलिए, उसने दैवी ऋषियों की पत्नियों का वेश बदल कर स्वयं के द्वारा ही उसे प्रसन्न करने का निश्चय किया। प्रथमत: शिवा के रूप में, जो अंगिरा की पत्नी थी, स्वाहा ने अग्नि से कहा, "अग्नि तुम्हें मुझसे प्रेम करना चाहिए, मैं, तुम्हारे प्रेम के कारण परेशानी में हूँ।

मैं अंगिरा ऋषि की पत्नी हूँ। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम मुझे मृत देखोगे।" अग्नि ने प्रसन्नता से उसे अपनी बाहों में भर लिया और उसे अत्यन्त प्रसन्न कर दिया। अग्नि से एकाकार होने के बाद, पहचानी न जा सके, इसलिए स्वाहा ने पंखयुक्त जीव (गरूड़ी) के रूप में वेश बदल लिया, अगम्य श्वेता पर्वत के उच्चस्थ भाग पर गई, जहाँ उसने सुनहरे स्थान (कुण्ड) में बीज को रख दिया जो कि नरकूट (शरस्तम्भ) से घिरा था। इस प्रकार, स्वाहा ने, सातों में एक अरून्धती को छोड़कर जो वशिष्ठ की पत्नी थी और जिसके आत्मसंयम और अपने पति की आज्ञाकारिता के कारण, उसके वेश को बदलने का साहस नहीं किया, अन्य ऋषियों की पत्नियों के रूप में वेष बदलते हुए अग्नि के साहचर्य का आनन्दोपभोग किया। आसक्त स्वाहा के द्वारा 'प्रतिपदा' (दक्ष का प्रथम दिन) के दिन से, अग्नि का बीज छः बार कुण्ड में रखा गया। इस प्रकार, सुनहरे कुण्ड में, स्वाहा के द्वारा इकट्ठे किये गए, अग्नि के शुक्राणुओं ने एक बच्चे को जन्म दिया। प्रथम दिन वह स्कन्द के नाम से बुलाया गया। दूसरे एवं तीसरे दिन, वह बच्चा कुमार के रूप में बढ़ गया जिसके छः सिर, बारह कान, बारह आँख और बारह भुजाएँ थीं। चौथे दिन, जब वह पूर्ण शरीर के रूप में हो गया तो उसे 'गुहा' कहा गया। छठें दिन (षष्ठी), असुरों के विरूद्ध एक भयानक युद्ध में विजय प्राप्त करके उच्चतम गौरव को प्राप्त किया। अग्नि ने एक बकरे का सिर पैदा किया (जो कि नैगमेय हुआ) जो अपने बच्चे स्कन्द के साथ ऐसे खेलें जैसे कि खिलौने से उसका मनोरंजन कर रहे हों। यह उल्लेखनीय है कि यह कहानी अग्नि को सूर्य के वलय से प्रकट हुआ बतलाती है। इस प्रकार एक का दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करती है और कार्त्तिकेय को भी, सौर मण्डल का एक देवता बतलाती है।[9] यह भी उल्लेखनीय है कि इस कथा में शिव का, इस दैवी बच्चे के जन्म के लिए कोई योगदान नहीं है। यद्यपि जब उसे देवताओं के समक्ष दर्शनार्थ लाया गया

तो उसे 'रूद्र-पत्र' कह कर सम्बोधित किया गया, रूद्र, अग्नि को ही एक उपाधि (विशेषण) है ।[10] जब कि इसी महाकाव्य में, कार्त्तिकेय को शिव तथा पार्वती की सन्तति कहा गया है जिनकी क्रमश: अग्नि और स्वाहा के रूप में कल्पना कर ली गई है ।[11] कार्त्तिकेय के पितृत्व का स्थानान्तरण अग्नि से शिव में करना कठिन नहीं प्रतीत होता है । रूद्र, जो कि अग्नि का विशेषण है, शिव का भी विशेषण है ।

कार्त्तिकेय के जन्म की एक अन्य कथा महाभारत के शल्यपर्व में मिलती है जिस में उनको रूद्र (शिव) का पुत्र बताया गया है:[12] बलराम ने अपनी तीर्थ यात्रा के दौरान सोमतीर्थ सहित अनेकों पवित्र स्थानों का भ्रमण किया । कार्त्तिकेय की उपस्थिति और देव सेना के प्रमुख के रूप में उनकी उपस्थिति से सोमतीर्थ पवित्र हो गया था । कार्त्तिकेय के विषय में और उनके देव सेना के प्रमुख के रूप में पवित्रीकृत संस्कार के सम्बन्ध में, जनमेजय ने वैशम्पायन से पूँछा । जनमेजय के प्रश्न के उत्तर में वैशम्पायन ने बतलाया कि शिव का जीवित वीर्य (उमा की उपस्थिति में उत्तेजक अवस्था में) प्रज्जवलित आग (अग्नि) में गिर पड़ा और एक भ्रूण के रूप में विकसित हुआ । अग्नि, जो कि सभी वस्तुओं का उपभोग कर सकता था, उस अविनाशी वीर्य को सहन न कर सका । वह भ्रूण इतना तेजस्वी था कि अग्नि उसे अपने पास नहीं रख सका । ब्रह्मा के आदेशानुसार अग्नि ने उस भ्रूण को गंगा नदी में रख दिया । गंगा भी उसे सहन न कर सकी और इसलिए उसने भी उसे हिमालय के घने सरकंडों में रख दिया । वह भ्रूण वहाँ एक दीप्तिमान् बच्चे के रूप में विकसित हुआ । शक्तिशाली बच्चे ने शीघ्र ही अपनी ऊर्जा से तीन लोकों को व्याकुल कर दिया । उसके बाद उस दैवी बच्चे को छ: कृत्तिकाओं ने देखा जिन्होंने उसका मातृवत पालन-पोषण करने वालों की तरह, उसे अपने स्तन का दूध पिलाया । बच्चे ने बहते हुए मातृवत दूध को पिया, छ:

माह बीतने के बाद उसे कार्त्तिकेय के नाम से पुकारा गया । इसके बाद जन्म इत्यादि का संस्कारिक समारोह, देवताओं के गुरू बृहस्पति द्वारा किया गया । स्कन्द ने तब शिव और उमा को अपने अनुयायियों के मध्य बैठे देखा जो कि अद्भुत प्रारब्ध वाले थे । उसने भी अपने को रूद्र (शिव), उमा, गंगा और अग्नि की संतुष्टि के लिए चार रूपों स्कन्द, शाख, विशाख और नैगमेय में विभाजित कर लिया ।

महाभारत के अनुशासन पर्व[13] में कार्त्तिकेय के जन्म का कारण, यद्यपि शल्यपर्व से भिन्न खाता है, लेकिन अपेक्षाकृत अधिक रूचिकर है । रूद्र (शिव) का विवाह रूद्राणी (उमा) से हुआ था और जबकि, उनके विवाह के बाद, उनका एकीकरण समागम (पूर्णता) के बिन्दु तक (पहुँचा) था । देवतागण, इस डर से कि रूद्र की सन्तति सम्पूर्ण विश्व का नाश कर देगी, रूद्र के पास पहुँचे और उनके जैविक बीज (वीर्य) को रोकने की प्रार्थना की (जहाँ से उन्हें 'उध्र्वरेता' कहा जाने लगा) । देवताओं की इच्छा और अनुरोध के कारण, रूद्र ने अपने शुक्र (वीर्य) के स्खलन को रोक दिया । लेकिन देवी क्रोध से भर गईं और देवताओं को सन्तानहीन रहने का शाप दे दिया । अग्नि, जो कि वहाँ उपस्थित नहीं था, शाप के प्रभाव से बच गया । रूद्र के तरल शुक्र का एक छोटा भाग पृथ्वी पर गिर गया और अग्नि द्वारा आश्रय दिया गया । इसके बाद, अग्नि स्वयं निर्वासन में चला गया और कुछ समय तक गुप्त रहा । इसी बीच देवगण कुख्यात और शक्तिशाली असुर तारक के द्वारा सताए जा रहे थे तथा सभी उससे भयभीत हो गए । इसलिए वे मदद के लिए ब्रह्मा के पास पहुँचे जिन्होंने उन्हें अग्नि के पास जाने और एक ऐसा पुत्र पैदा करने के लिए निवेदन करने को कहा, जो तारक असुर का नाश करने योग्य हो, क्योंकि वह (अग्नि) देवी के शाप से ग्रसित नहीं था । देवताओं ने अग्नि को खोजा

और अन्तत: अग्नि को पाया । अग्नि ने देवताओं की इच्छा के प्रत्युत्तर स्वरूप उस ददीप्यमान भ्रूण को (जिसमें रुद्र का जैविक बीज विकसित हुआ था) पालन-पोषण और देख भाल के लिए गंगा नदी को सौंप दिया । यहाँ तक कि गंगा भी उसे सहन न कर सकी । इसलिए उसने भी उसे मेरू पर्वत के घने नरकट के जंगल में गिरा दिया । इस प्रकार नरकट के जंगल में जमा किया गया भ्रूण एक सुन्दर रूप में आया । छ: कृत्तिकाओं ने, जिन्होंने उसे देखा, उठाकर अपने पुत्र की तरह पालन-पोषण किया ।

महाभारत के उसी पर्व में, एक अन्य स्थान पर कार्त्तिकेय के जन्म के विषय में अपेक्षाकृत अधिक वास्तविक कारण दिया गया है ।[14] अग्नि कृत्तिकाओं के साथ एकाकार हुआ और कामेच्छा से सन्तुष्ट हो गया । तब अग्नि की ऊर्जा को छ: भागों में विभाजित किया गया और प्रत्येक कृत्तिका को एक - एक भाग दिया गया । उनमें से सभी ने एक ही साथ गर्भ की उत्पत्ति की और छहों भाग एक रूप में एकीकृत हुए । पृथ्वी ने तब उस बच्चे को सोने के ढेर से प्राप्त किया । कृत्तिकाओं के द्वारा पालन किया गया, वह 'श्रवण' के रूप में विकसित हुआ ।

कार्त्तिकेय के जन्म का महाभारत की कथाओं से मिलता-जुलता कारण रामायण[15] के बाल काण्ड में मिलता है । उमा से विवाह के बाद, शिव दाम्पत्य सुख में लीन हो गए । रति क्रीडा करते हुए हजारों वर्ष बीत गए । देवताओं ने, इसी बीच, महादेव से पैदा होने वाली सन्तति के भयानक लक्षणों से युक्त, मनोगत दृश्य से सावधान होते हुए, उनसे कुछ कठोरता बरतने की प्रार्थना की । शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली; लेकिन उनसे पूछा कि उस बीज (वीर्य) का क्या होगा जिसे उन्होंने पहले ही छोड़ दिया है (स्खलित कर दिया है) । वायु के साथ अग्नि को उस वीर्य में प्रवेश करने को कहा गया । तदनुसार,

अग्नि ने उसमें प्रवेश किया । परिणामस्वरूप एक सफेद पर्वत पैदा किया, जहाँ से कार्त्तिकेय पैदा हुए । कृतज्ञता के साथ देवताओं ने शिव और उनकी पत्नी उमा की पूजा की; किन्तु स्वयं को, कुपित की हुई देवी के क्रोध से न बचा सके । उसने देवताओं को शाप दिया कि उनकी पत्नियाँ नि:संतान हो जायें, क्योंकि उसके मातृत्व-सुख को अस्वीकृत कर दिया गया था ।

रामायण में, एक अन्य स्थान पर कार्त्तिकेय का जन्म कुछ भिन्न तरह से वर्णित है । जब शिव कठोरता बरत रहे थे, दूसरे देवता ब्रह्मा के पास गए और एक नायक प्रदान करने को कहा । ब्रह्मा ने उन्हें उत्तर दिया कि उनके शाप के परिणाम स्वरूप देवताओं की पत्नियों के कोई सन्तान नहीं होगी और इस प्रकार उन्होंने उनको सलाह दिया कि अग्नि एक पुत्र को जन्म दे सकता है और गंगा देवताओं की नायक हो सकती हैं । देवताओं की इच्छा के अनुरूप अग्नि ने गंगा के साथ पत्नीवत् व्यवहार किया तथा कार्त्तिकेय को जन्म दिया (तथाकथित् क्योंकि वह कृत्तिकाओं के द्वारा पोषित हुआ) । इस प्रकार, रामायण में कार्त्तिकेय को गंगा के द्वारा पैदा किया हुआ अग्नि का पुत्र कहा गया है । इस सम्बन्ध में डा० आर० जी० भण्डारकर [16] का कहना है - भ्रूण गंगा के द्वारा हिमवत पर्वत पर फेंक दिया गया था और कृत्तिका का तारा समूह बनाते हुए, छ: तारों द्वारा उसका पालन पोषण किया गया था और इस प्रकार कार्तिकेय को कृत्तिकाओं का पुत्र कहा गया ।

इसी प्रकार महाभारत में कार्त्तिकेय के माता-पिता के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मिलते हैं । वह ब्रह्मदेव का पुत्र सनत्कुमार है; वह महेश्वर और उमा का पुत्र है ; वह अग्नि का पुत्र है ; '' वह कृत्तिकाओं का पुत्र है और वह गंगा का पुत्र है ।[17] ये पंक्तियाँ 'स्कन्द -यज्ञ' में अभिव्यक्त किये गए विचार की तरह ही अधिकांश रूप में हैं ।[18] ब्रह्मा ने कार्त्तिकेय के

पितृत्व का आरोपण स्पष्ट रूप से छान्दोग्य उपनिषद में पाए जाने वाले सनत्कुमार की समरूपता के कारण है ।[19]

कार्त्तिकेय के जन्म की जो कथा रामायण के बालकाण्ड [20] में उपलब्ध है वह महाभारत के शल्यपर्व [21] एवं अनुशासन पर्व [22] की कथा से काफी मिलती -जुलती है । आरण्यक पर्व [23] में कार्त्तिकेय के जन्म की कथा स्वयं में अपना अलग महत्व रखती है । प्रथम तीन वृत्तान्तों (पाठों में) कार्त्तिकेय से सम्बन्धित कथाओं में कार्त्तिकेय को शिव, उमा, अग्नि, कृत्तिका और गंगा का पुत्र बतलाया गया है । इस प्रकार इन तीनों वृत्तान्तों (पाठों) में लेखक, कार्त्तिकेय के माता-पिता के प्रश्न को लेकर अनिश्चिय की स्थिति पाता है , किन्तु आरण्यक पर्व में इस प्रकार की समस्या नहीं दृष्टिगोचर होती है । आन्तरिक साक्ष्य आरण्यक पर्व की कथा को अधिक प्रामाणिक सिद्ध करते हैं जो कि तीनों वृत्तान्तों की अपेक्षा पहले की प्रतीत होती हैं । आरण्यक पर्व में कार्त्तिकेय के अनेक ऐसे नाम आये हैं जो उसे अग्नि का पुत्र सिद्ध करते हैं जैसे - पावकी [24] पावकात्मज [25] और वहिनन्दन [26] । आरण्यक पर्व में कार्त्तिकेय के जन्म की कथा के प्रमाण में आने से पहले एक महत्वपूर्ण कथन भी है, वह भी उसे अग्नि का पुत्र बतलाता है : "मार्कण्डेय ने कहा -' भो कुरू वंश की पापहीन सन्तान! मैंने अग्नि की जाति की विभिन्न शाखाओं का तुमसे वर्णन किया है, अब बुद्धिमान कार्त्तिकेय के जन्म की कथा सुनो । मैं ब्रह्मऋषियों की पत्नियों से उत्पन्न आश्चर्यजनक एवं आध्यात्मिक शक्ति से युक्त अदभुत कार्त्तिकेय की कथा कहूँगा [27] । काल प्रवाह के साथ-साथ कार्त्तिकेय के जन्म की कथाओं से सम्बन्धित अनेक परम्परायें विकसित हुई ।

महाभारत के आरण्यक पर्व में इन्द्र और स्कन्द की प्रतिद्वन्द्विता की एक महत्वपूर्ण उपकथा मिलती है जिसमें इन्द्र स्कन्द द्वारा बुरी तरह पराजित

होता है । स्कन्द के भयानक पराक्रम का भय दिखाते हुए देवताओं ने इन्द्र को उसे मार डालने की सलाह दी ताकि वह इन्द्र की संप्रभुता पर अन्याय पूर्वक अधिकार न कर सके ‖देवताओं ने इन्द्र को सलाह दी कि "यदि तुम उसका सर्वनाश नहीं करते हो तो वह हम लोगों सहित तुम पर अधिकार करते हुए तीनों लोकों को जीत लेगा और स्वर्ग का शक्तिशाली स्वामी हो जायेगा ‖" इन्द्र ने स्कन्द के ऊपर बज्र से प्रहार किया किन्तु उसने ‖बज्र ने‖ उसे ‖स्कन्द को‖ मार डालने के बजाय उसके पराक्रम में कई गुना वृद्धि कर दी और स्कन्द के दाहिनी तरफ से विशाख नामक एक भयानक व्यक्ति पैदा कर दिया ।[28] इन्द्र बुरी तरह पराजित हुआ । उसने अपने को समर्पित कर दिया ।[29] इस प्रकार अपमानित इन्द्र ने स्कन्द की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लिया । ऋषियों और स्वयं इन्द्र ने स्कन्द से देवताओं का संप्रभु होने की प्रार्थना की । किन्तु अत्यधिक विनम्र होने के कारण स्कन्द ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । उसने इन्द्र के आधिपत्य के अधीन देवताओं की सेना का सेनानायक बनना स्वीकार कर लिया । उसका देवसेना के साथ विवाह कर दिया गया ।[30]

इस प्रकार आरण्यकपर्व में साक्ष्य पूर्वक कही गयी कथा स्कन्द ‖कार्त्तिकेय‖ की शक्ति और मानक स्तर को प्रमाणित करता है ।

देवताओं की सेना के सेनापति होने पर कार्त्तिकेय का अभिषेक उत्सव के रूप में मनाया गया । इस उत्सव में शिव, उमा, गंगा और ब्रह्मा ने भाग लिया । इस पवित्रीकरण संस्कार को मानते हुए बृहस्पति ने अग्नि में आहुति की । पवित्र स्थानों से सुनहरे कलशों में लाया गया पवित्र जल कार्त्तिकेय के मस्तक पर छिड़का गया और ब्रह्मा ने उसे देवताओं की सेना के सेनाध्यक्ष के रूप में अधिष्ठित किया [31] । अदिति, उमा, सरस्वती प्रभृति देवियाँ इस अवसर पर उपस्थित थीं ।[32]

देवताओं की सेना के सेनापति के रूप में अधिष्ठित होने के बाद कार्त्तिकेय को देवताओं के द्वारा विभिन्न प्रकार के उपहार दिये गए। इन्द्र ने 'शक्ति' (भाला), एक बड़ी घंटी और उदय होते हुए सूर्य के समान किरणें फैलाने वाला दीप्तिमान ध्वज दिया। शिव ने उसे विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र दिए। विष्णु ने उसे वैजयन्ती माला दी। उमा ने उसे निशान रहित पोशाकें दी। गंगा ने उसे अमृत से भरा हुआ खूबसूरत घड़ा दिया। बृहस्पति ने एक छड़ी दिया। गरूड़ ने उसे अपना प्रिय पुत्र मोर दिया और उषाकाल के देवता अरूण ने उसे लाल कलँगी वाला मुर्गा दिया। वरूण ने उसे एक पाश (जाल) दिया। ब्रह्मा ने उसे एक काली खाल दी और उसे सदैव विजयी होने का आशीर्वाद दिया [33]। चन्द्रमा ने उसे भैंड़ दिया जबकि अग्नि ने उसे एक बकरी और इन्द्र ने उसे शेर, चीते, तेंदुये तथा शिकार के अन्य पशु उपहार में दिये।[34]

कार्त्तिकेय सप्त मातृ देवियों के समूहों से घिरा था।[35] आरण्यक पर्व के अनुसार सामान्य जन की मातृ देवियों ने उसके अजेय पराक्रम को समझते हुए उसके शरणागत होने की इच्छा जाहिर की और उन्हें अपनी माता की तरह स्वीकार करने की उससे प्रार्थना की। कार्त्तिकेय ने मातृ देवियों को यथोचित सम्मान दिया।[36] महाभारत के शल्यपर्व में मातृ देवियों की एक बड़ी संख्या ने, जैसे कि विलक्षण और अनेक रूपों वाली तथा प्राय: सभी पशुओं एवं पक्षियों के संग रहतीं थी, उसकी प्रतीक्षा की।[37] इस प्रकार सिपाहियों के मेजबान जिसने कार्त्तिकेय के सेवकों का निर्माण किया, विलक्षण और अनेक रूपों वाले थे तथा सभी जानवरों और पक्षियों के लक्षणों से युक्त थे।[38] जो कि विभिन्न भाषाएँ और संवाद बोलते थे।[39] वे विभिन्न जातियों के वंशज[40] तथा विभिन्न प्रकार की पोशाकें पहने थे।[41]

देवताओं की सेना के सेनापति के रूप में कार्त्तिकेय ने अनेक शौर्यतापूर्ण कार्य किए। देवताओं के रक्षार्थ, उन्होंने राक्षसों को पराजित किया। अपने अत्यन्त चमकीले भाले (शक्ति) से उन्होंने राक्षस महिष को मारा और उसका सिर अलग कर दिया।[42] अपने विशेष हथियार भाला से उसने असुरों के प्रधान तारकासुर का भी वध किया।[43] उसने त्रिपाद और हरद्रोद राक्षसों का भी वध किया। इस तरह कार्त्तिकेय की शक्ति से हजारों आसुरी शक्तियाँ जलकर खाक हो गईं। कार्त्तिकेय ने अपने विशेष अस्त्र से क्रौंच पर्वत को छेद डाला, पर्वत की गुफाओं को तोड़ डाला तथा उसमें शरण लिए हुए हजारों राक्षसों को मार डाला।[44]

रामायण और महाभारत में कार्त्तिकेय विषयक अनेक प्रसंगों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि महाकाव्य काल में क्रमशः इस देवता की शक्ति और सम्मान में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। महाभारत में कम से कम पन्द्रह अध्याय (नौ आरण्यकपर्व में,[45] तीन शल्यपर्व [46] में और तीन अनुशासन पर्व [47] में) कार्त्तिकेय को समर्पित हैं जो इस देवता की लोकप्रियता को प्रमाणित करते हैं। यह एक वास्तविक तथ्य है कि विष्णु और शिव को छोड़ कर अन्य देवताओं की तुलना में अधिक श्लोक इस देवता को निर्दिष्ट किये गए हैं।

कार्त्तिकेय के हाथों इन्द्र की पराजय, और महिष, तारक, त्रिपाद तथा हरद्रोद सहित अनेकों असुरों का विनाश इस देवता की बढ़ती हुईसम्मानीय सामाजिक स्थिति एवं शक्ति का प्रतीक है। वास्तव में कार्त्तिकेय अग्नि के पुत्र थे किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें शिव और उमा का पुत्र भी माना गया है। शिव और उमा का समीकरण अग्नि और स्वाहा से क्रमशः किया गया। कार्त्तिकेय का शिव के साथ यह समीकरण पुनः उनकी आराधना एवं लोकप्रियता की वृद्धि में सहायक हुआ।

आरण्यक पर्व में पचास से अधिक युद्ध - देवता के नामों की सूची दी गई है जो कि अप्रत्यक्षत: इस देवता की विस्तृत क्षेत्र में लोकप्रियता को निर्दिष्ट करती है ।[48] आरण्यक पर्व में उल्लिखित विवरण के अनुसार समाज के प्रत्येक वर्ग एवं जाति के लोग स्कन्द की शरण में आते थे और वे अपनी सभाओं एवं परिजनों में सर्वाधिक शक्तिशाली मानते थे ।[49] इस प्रकार, कार्त्तिकेय समाज के प्रत्येक वर्ग के अनुयायियों का नेता (प्रधान) था ।[50] इससे यह संकेत मिलता है कि वह समाज के सामान्य लोगों का देवता था । शान्तिपर्व में कार्त्तिकेय को मारने वाले तथा डराने-धमकाने वाले देवताओं में शामिल किया गया है ।[51] अधिक क्या, ब्रह्मा और विष्णु जैसे महान देवताओं की कोटि में उनकी गणना की जाने लगी जो मृत बच्चे को पुनर्जीवित कर देते थे ।[52] भीष्म पर्व में कहा गया है कि कौरवों की सेना का नेतृत्व करते समय कार्त्तिकेय से ही बल प्राप्त किया था ।[53]

महाभारत के आरण्यकपर्व में पृथूदक को महानतम तीर्थ माना गया है जो कार्त्तिकेय के लिए विशेष महत्वपूर्ण रूप से पवित्र कहा गया है ।[54] इस महाकाव्य में कार्त्तिकेय से सम्बन्धित अन्य तीर्थों में औशनस,[55] औजस या तैजस[56], कोटितीर्थ,[57] स्थाणुतीर्थ,[58] सौभाग्यतीर्थ[59] और समन्तपंचक[60] उल्लेखनीय हैं । रामायण में कार्त्तिकेय के प्रमुख मन्दिरों का उल्लेख है ।[61]

इस प्रकार महाकाव्य काल (रामायण और महाभारत) में जहाँ एक ओर कार्त्तिकेय के जन्म की विभिन्न कथाएँ अनेक रूपों में मिलती हैं, वहीं उसके शौर्य एवं बलिष्ठता का सांगोपांग विवेचन भी मिलता है । समाज के जन सामान्य से लेकर विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा इनकी उपासना की जाती थी जो स्पष्टत: इनकी सम्माननीय सामाजिक स्थिति एवं विशिष्ट लोकप्रियता को द्योतित करता है ।

संदर्भ - संकेत

1- महाभारत, III अध्याय - 213 - 221

2- महाभारत, IX अध्याय - 43 - 45

3- महाभारत, XIII अध्याय - 83 - 84 और 86

4- रामायण बालकाण्ड, अध्याय 37 और 38

5- महाभारत, IX 46, 98 - 99

6- केचिदेनं व्यवस्यन्ति पितामहसुतं प्रभुम् ।
सनत्कुमारं सर्वेषां ब्रह्मयोनिं तमग्रजम् ।।
केचिन्महेश्वरसुतं केचित्पुत्रं विभावसो: ।
उमाया: कृत्तिकानां च गंगाश्च वदन्त्युत ।।

तुलनीय महाभारत आदिपर्व, 1•136•13

"आग्नेय: कृत्तिकापुत्रो रूद्रो गंगेय इत्यपि ।
सूयते भगवान देव: सर्वगुह्यमयो गुहा ।।

6- महाभारत, आरण्यकपर्व

7- महाभारत, शल्यपर्व अनुशासन पर्व

8- महाभारत, III 213 - 21

9- यदुवमशी, शैवमत [हिन्दी], पृ0 75

10- वही पृ0 76

11- महाभारत, III 188

12- महाभारत, IX 43 - 45

13- महाभारत, XIII 83 - 84

14- वही 86

15- रामायण, बालकाण्ड, अध्याय 37 और 38.

16- भण्डारकर, भार0 जी0 वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड आद माइनर रीलिजिएस सिस्टम

17- महाभारत, IX 45, 85 - 86.

18- स्कन्द-पुराण, VI 4.

19- छान्दोग्य उपनिषद, 7•26•2 ; महाभारत, XIII, 38•12.

20- रामायण, I, अध्याय 37 और 38.

21- महाभारत, III 213 - 221

22- वही, IX 43 - 45

23- वही, XIII 83 - 84 और 86

24- वही, III 227 - 116 और III 231 - 28

25 - वही, 227•13 और III 227•7

26- वही, III 231•112

27- वही, III 223, 1 - 2

28- वही, III 227, 16 - 17

29- वही, III, 216•3•

30- वही, III 218•5•48; वही, III, 213•32•33

31- वही, IX, 44•1-11

32- वही, IX 44-12

33- वही, IX 45•41-47

34 - वही, XIII, 86• 15 - 25 अनुशासन पर्व के अनुसार वरूण के द्वारा कार्त्तिकेय को मोर दिया गया था ।

35 - वही, IX, 43•29

36 - वही, III 215• 16 - 22

37 - वही, IX, 45• 3 - 40

38 - वही, IX, 44• 21 - 48 और 51 - 101

39 - वही, IX, 44 - 98 (कुशला देशभाषासु) और महाभारत IX 44•97 (नाना भाषा:) ।

40 - वही, IX, 44•101 (नाना वर्णा: सवर्णाश्च)

41 - वही, IX, 44•88 (नानावेषधरा:)

42 - वही, III 221•63-66

43 - वही, IX, 45•56-91

44 - वही

45 - वही, आरण्यकपर्व, अध्याय 213 और 221

46- वही, शल्यपर्व, अध्याय 43 से 45

47 - वही, अनुशासन पर्व, अध्याय 83, 84 और 86

48 - ___, महाभारत, आरण्यक पर्व, अध्याय 213

49 - वही, III, 214-29

50 - एनाल्स आफ द भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, भाग LVI, 1975, पृ० 157

51 - महाभारत, XII, 15 - 16

52 - वही, XII, 149•72

53 - वही, V, 162•7

54 - वही, III 33•141

55 - वही, III 81•117

56 - वही, III 81•143

57 - वही, III 62•68

58 - वही, IX, 42•4364 (प्रकाशक कलकत्ता)

59 - वही, IX, 43•2448-49 (प्रकाशक - कलकत्ता)

60 - सोरेन्सेन, पृ0 640

61 - रामायण, III 12•21

§ख§ पुराणों में कार्त्तिकेय :

कार्त्तिकेय के जन्म से सम्बन्धित विभिन्न कहानियां महाकाव्यों के अतिरिक्त पुराणों [1] में भी मिलती हैं। वराह पुराण में कहा गया है कि स्कन्द § कार्त्तिकेय § की उत्पत्ति विभिन्न युगों में विभिन्न रूपों में हुई।[2] इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि महाकाव्य काल में कार्त्तिकेय को मुख्यत: शिव-पुत्र माना गया है। वैदिक वांगमय में, अग्नि, स्कन्द §कार्त्तिकेय§ के पिता थे और ऐसा प्रतीत होता है कि कार्त्तिकेय पौराणिक काल में विस्मृत हो गया था क्योंकि यदा-कदा[3] ही सन्दर्भ आये हैं। पुराणों में जहां-कहीं भी स्कन्द की कथा आयी है, शिव को उनका पिता बतलाया गया है। कार्त्तिकेय के पिता का सम्बन्ध अग्नि और बाद में शिव का अर्थ निकालना कठिन नहीं है, क्योंकि रुद्र, अग्नि और शिव दोनों का ही विशेषण है।[4] वस्तुत: स्कन्द के जन्म की कथा पुराणों में एक विस्तृत कथा के रूप में विकसित हो चुकी थी, क्योंकि उसमें दक्ष के यज्ञ के विनाश की कथा को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया था। शिव का पार्वती से विवाह और मदन§काम§ को भस्म करने की कथाओं का भी समावेश हो गया था। स्कन्द के जन्म के सम्बन्ध में अनेक कथाओं का जन्म हुआ जिन्हें मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। कथा का प्रथम रूप इस बात से प्रारम्भ होता है कि देवताओं द्वारा अपनी सेना के लिए एक प्रमुख सेनापति की तलाश प्रारम्भ की गई। महाभारत में स्कन्द के जन्म की कथा इसी रूप में मिलती है और इसी रूप में इस कथा का उल्लेख वाराह पुराण [5] में है। देवगण दैत्यों से बार-बार पराजित होने पर एक नये सेनापति की तलाश में थे, अत: ब्रह्मा की सलाह पर वे शिव के पास गए। यह पौराणिक कथा महाभारत की कथा से

मिलती जुलती है । इसके बाद कथा में एक नया मोड़ आता है । शिव, जिन्होंने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर ली थी, ने शीघ्र ही अपनी शक्ति से एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र को उत्पन्न किया, जो एक विशेष प्रकार के हथियार फरसा (शक्ति) को हाथ में लिए हुए अवतरित हुआ । यह कथा निःश्चित रूप से काफी बाद की है, क्योंकि अग्नि के सम्बन्ध में प्रचलित कथाओं में इसका उल्लेख नहीं मिलता है । पुराणों में एक दार्शनिक स्पष्टीकरण स्कन्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दिया गया है जिसमें यह कहा गया है कि 'प्रकृति' (उमा) और 'पुरुष' (शिव) के संयोग से अहंकार की उत्पत्ति हुई । अहंकार को परमतत्व के रूप में, स्कन्द[6] के लिए प्रस्तुत किया गया है ।

दूसरी कथा का प्रारम्भ इससे होता है कि देवगण शिव और पार्वती के प्रेम प्रसंगों से चिंतित हो गये थे । इस प्रकार की कथा जो महाभारत में पायी जाती है, सूर्य पुराण [7] की कथा से मिलती-जुलती है । इसमें यह कहा गया है कि शिव और पार्वती के शारीरिक संयोग से संसार में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो गई थी । देवगण और भी ज्यादा परेशान हो गये थे । विशेषकर जब नारद ने उन्हें यह बताया कि इस संयोग से उत्पन्न होने वाली सन्तान अत्यधिक शक्तिशाली होगी और देव शक्ति को भी पार कर जाएगी । अतः उन्होंने सर्व प्रथम अग्नि को इस संयोग से उत्पन्न होने वाले फल को नष्ट करने भेजा । लेकिन पार्वती के शेर को देखकर वे भाग खड़े हुए । अतः सभी देवगण सामूहिक रूप से शिव के पास गये और उनसे यह प्रार्थना की कि वे किसी सन्तान को जन्म न दें । शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की, किन्तु उन्होंने उनसे कहा कि उनका जो वीर्य स्खलित हो चुका है, उसको धारण करने का कोई पात्र बताएं । देवताओं ने इस कार्य के लिए अग्नि को प्रस्तुत किया । किन्तु जब वह शिव-शक्ति को सहन न कर सके तो उन्होंने उसे गंगा में फेंक दिया । गंगा भी उसे सहन न कर

यहाँ तक कि कुछ अंश वायु पुराण की कथा से लिया गया है ।[17] स्कन्द के जन्म की कथा शिव पुराण के जन्म संहिता [18] में कही गयी है, जो वायु पुराण के कथानक के अनुरूप ही है । अन्तर केवल इतना है कि कृत्तिकाओं के स्थान पर छः राजकन्याओं का उल्लेख है और स्कन्द ने सभी राजकन्याओं का स्तन पान किया था तथा इसीलिए उन्हें षण्मातुर: कहा गया । स्कन्द के जन्म की एक विस्तृत कथा पुराण के कुमारखण्ड [19] में कही गयी है, जो वायु पुराण में वर्णित कथा का एक प्रतिरूप मात्र है ।

'मत्स्य पुराण [20] में स्कन्द के जन्म का कथानक कुछ भिन्न है । यह वस्तुत: रामायण और महाभारत के शल्यपर्व के अंश का रोमांचकारी वर्णन है जिसमें यह कहा गया है कि जब शिव तथा पार्वती को सम्भोग क्रिया में लिप्त हुए कई हजार वर्ष बीत गये तो देवगणों ने अग्नि को इन दैवी-युगल के सम्बन्ध में जानकारी करने भेजा । अग्नि ने तोते का रूप धारण करके विश्राम-कक्ष में झाँका तो यह पाया कि महाराज शिव देवी पार्वती के संयोग का आनन्द ले रहे हैं । अग्नि के इस कार्य से शिव कुपित हो गये और उन्होंने स्खलित-वीर्य को उसे निगलने के लिए कहा तथा अन्य देवगणों को भी । लेकिन शिव तेज को वे अपने पेट में न संभाल सके, उनके पेट फट गये और वीर्य स्वर्ण रंग में एक झील के रूप में शिव निवास स्थल के करीब से बह निकला; जिसमें सुनहले रंग के कमल खिले और विभिन्न प्रजातियों के पक्षी कलरव करने लगे । इस झील की ख्याति को सुनकर पार्वती अपनी सहेलियों के साथ वहाँ क्रीड़ा करने आयीं, कमल के फूलों को उन्होंने अपना आभूषण बनाया । बाद में उन्होंने इस सुन्दर झील के जल को पीने की इच्छा की तब कृत्तिकाएं थोड़ा जल कमल के पत्ते में लेकर उपस्थित हुई । कृत्तिकाओं ने पार्वती को यह जल इस शर्त पर पीने के लिए दिया कि यदि उन्हें कोई बच्चा हुआ तो वे उसका नाम

उन्हीं कृत्तिकाओं के आधार पर रखेंगी । कुछ ही समय बाद उन्होंने गर्भ धारण कर लिया और एक अत्यन्त चमत्कारी बालक उत्पन्न हुआ । बालक के शरीर से निकलने वाली स्वर्णिम किरणें चारों ओर फैल गई । वह सूर्य के समान चमक रहा था तथा शक्ति (फरसा), जो सुनहरे रंग का था, धारण किये हुए था । उसके छः सिर थे । कृत्तिकाओं के पुत्र के रूप में उसका नाम कार्त्तिकेय रखा गया । चूंकि वह कृत्तिकाओं की एक शाखा में सम्मिलित हो गया था, अतः उसका दूसरा नाम विशाख रखा गया । उसका नाम 'कुमार' पड़ा क्योंकि उसे असुरों का संहार करने के लिए नियत किया गया था । षष्ठी के दिन, जब वह केवल छः दिन का था, तो सभी देवताओं, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु के नेतृत्व में उसे महाराज 'गुह' के रूप में नामित किया गया। इन्द्र ने अपनी पुत्री देवसेना को विवाहोपरान्त उन्हें प्रदान किया । वह देवताओं के सैन्य दल का प्रमुख बनाया गया और सभी देवगणों ने उनकी स्तुति की । सातवें दिन ही लम्बे और भयानक युद्ध के बाद असुर, गुह महासेन द्वारा मार डाला गया ।[21]

इस प्रकार मत्स्य पुराण के अनुसार शिव और पार्वती, स्कन्द (कार्त्तिकेय) के माता-पिता कहे गये हैं । स्पष्टतया यह तथ्य कि अग्नि, स्कन्द के पिता थे । पौराणिक काल में यह बात विस्मृत (भूल) सी हो गई थी । इस पुराण में, कुमार के जन्म को अत्यन्त रहस्यमयी भाषा में व्यक्त किया गया है जिसके अनुसार शिव और पार्वती के संयोग से स्कन्द का जन्म अग्नि की भांति हुआ । यह वैसे ही है जैसे दो लकड़ियों को रगड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है ।[22]

ब्रह्म पुराण[23] में स्कन्द के जन्म की कथा को अत्यन्त विकसित रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें स्कन्द के जन्म के दोनों रूपों को सम्मिलित कर

लिया गया है । इस पुराण में देवताओं के एक नये सेनापति की खोज को शिव और पर्वती के संयोग से जोड़ दिया गया है किन्तु ऐसा करने में कथा में काफी परिवर्तन लाया गया है । देवताओं को यह जानकारी हो गयी थी कि शिव और पार्वती से उत्पन्न बालक ही सेनापति होगा । अत: उन्होंने उन दोनों के विवाह सम्पन्न कराए । तदुपरान्त वे दोनों (शिव और पार्वती) काफी समय तक शारीरिक आनन्द में लिप्त रहे किन्तु इस बीच असुर तारक की कष्टदायी गतिविधयां बढ़ती गई । अत: देवताओं ने अग्नि को शिव के पास अपनी भावनाओं से अवगत कराने के लिए भेजा । यद्यपि अग्नि ने तोते का रूप धारण करके शिव-पार्वती के विश्राम-कक्ष में झांका था । किन्तु शिव ने उन्हें पहचान लिया था । शेष कथानक अन्य पुराणों के कथानक के सदृश ही है । यहां तक कि सूर्य पुराण के कुछ अंश भी इसमें सन्निहित हैं ।[24] पौराणिक काल में ब्रह्म पुराण की कथा सही मानी गई है ।

स्कन्द पुराण में स्कन्द के जन्म को अनेक स्थानों पर अत्यन्त महत्वपूर्ण ढंग से दर्शाया गया है, यद्यपि विवरणों में पूरा तारतम्य नहीं है और कई स्थानों पर भ्रम की स्थिति भी है । इस पुराण [25] में कम से कम पांच विभिन्न कथानक हैं । इन कथानकों के अतिरिक्त देवताओं के अनगिनत सन्दर्भ हैं । कथानक का पहला रूप, वायु पुराण से स्पष्टतया भिन्न है । इस कथा के अनुसार अग्नि को ही नहीं अन्य देवगणों को भी वीर्य पान करना पड़ा और उन सभी ने गर्भ धारण किया । अपनी कठिनाई को लेकर विष्णु की सलाह पर वे महादेव के पास गए और उनसे प्रसव-दण्ड पाने से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना की । देवताओं को वीर्य त्यागने के लिए कहागया । अग्नि को छोड़कर सभी देवगण इस असाधारण भार से मुक्त हो गए । अग्नि अपने को शीतल करने के लिए झील में गए । जहां उन्हें छ: ऋषि पत्नियां मिलीं । वे सभी अग्नि के

पास गई और अपने को गर्मी प्रदान की । इस प्रकार वे सभी उसी समय गर्भवती हो गई । ये महिलाएं हिमगिरि पर गई और अपने को इस भार से मुक्त कर लिया । उनके पतियों ने उन पर सन्देह करके उन्हें घर से बाहर निकाल दिया । वीर्य गंगा जी में गिरा और वहां से कार्त्तिकेय का जन्म हुआ । इस प्रकार पहली कथा दूसरी कथा के समान ही है, किन्तु काफी भ्रामक है । तीसरी कथा, मत्स्य पुराण से प्रभावित प्रतीत होती है । चौथी कथा के अनुसार, वायु ﴾अग्नि नहीं﴿ ने शिव और पार्वती के शयन-कक्ष में झांका था जबकि पांचवी कथा में कोई नयी बात नहीं है ।

इस प्रकार स्कन्द के जन्म के सम्बन्ध में विभिन्न कथानकों के अध्ययन से, जैसा कि पुराणों में कहा गया है, यह धारणा बनती है कि देवगण, जो असुरों से काफी सताये हुए थे, को एक सेनापति की तत्काल आवश्यकता थी और शिव वीर्य जो देवताओं के द्वारा व्यवधान डालने के कारण जमीन पर गिर गया था, शिव ने इस वीर्य को अग्नि को पिला दिया । अग्नि ने इसे गंगा में बहा ﴾फेंक﴿ दिया तथा गंगा ने इसे शरवण नामक पर्वत में डाल दिया । दूसरे कथानक के अनुसार कृत्तिकाओं द्वारा इसका संरक्षण किया गया । यह वीर्य छः कृत्तिकाओं में स्थानान्तरित कर दिया गया जो गंगा जी में नहाने गयी थीं और अन्ततः यह विलक्षण बालक पैदा हुआ जिसके छः सिर छः मुख थे ।

पुराणों में कार्त्तिकेय के जन्म के सम्बन्ध में अनेक तरह के कथानक हैं । सभी के विवरणों में तारतम्य का सामान्यतः अभाव है और यह सभी स्कन्द के जन्म से सम्बन्धित महाकाव्यों में वर्णित कथानकों पर आधारित हैं किन्तु कुछ पुराणों में, कार्त्तिकेय को अग्नि पुत्र जो शरवण जंगल में पैदा हुआ था, किन्तु किसी में भी अग्नि से उत्पत्ति नहीं बतायी गयी है । जो भी हो, प्रारम्भ के पुराणों में जन्म कथा को महत्व नहीं दिया गया है, जैसे विष्णु, लिंग और

मार्कण्डेय पुराण ।[26] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में जो कथा है वह महाकाव्यों की कथा के समान ही है जिसमें उन्हें शिव पुत्र कहा गया है ।[27] किन्तु इस कथा में स्पष्टतया तारकासुर की अनुपस्थिति दर्शायी गयी है । देवगण, क्रौंच पहाड़ पर, जैसा कि महाकाव्यों में कहा गया है, पहुँचने पर सफल हो गये थे और स्कन्द के जन्म के कारण असुर महिष के हृदय में भय व्याप्त हो गया था ।[28]

स्कन्द के विभिन्न नामों से उनके विभिन्न चरित्र एवं दैहिक क्षमता का आभास मिलता है । शिव के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण वह स्कन्द के नाम से जाने गए ।[29] शिव ने अग्नि को वीर्य पान कराया था जिसने उसे गंगा में वमित किया । अत: उन्हें अग्नि का पुत्र कहा गया और गंगापुत्र या गांगेय कहा गया ।[30] चूंकि वीर्य को छ: कृत्तिकाओं में स्थानान्तरित कर दिया गया जिन्होंने उसे धारण किया, अत: उन्हें कार्त्तिकेय या कृत्तिका पुत्र [31] कहा गया । परिवर्तित कथानक के अनुसार गंगा ने वीर्य को शरवण में डाल दिया था । यहाँ से वह छ: दिन के बाद बाहर आया इसलिए उन्हें 'शारजन्मन' कहा गया ।[32] चूंकि उनका पालन छ: कृत्तिकाओं ने किया था इसी लिए उनके छ: मुख हुए और उन्हें षड़ानन या षण्मुख [33] कहा गया । पार्वती के साथ सदैव रहने के कारण उन्हें पार्वतीनन्दन[34] कहा गया । अग्निभू: ,पावकेय और पावकी नामों से यह संकेत मिलता है कि अग्नि ने उनकी उत्पत्ति में भूमिका निभाई थी ।[35] उनका एक और नाम 'विशाष' है जो पुराणों में मिलता है ।[36] उन्हें 'शिखीवाहन कहा जाता है क्योंकि उनका वाहन मयूर है ।[37] देवसेना का नेतृत्व करने के कारण उनका नाम देवसेनापति, महासेन और सेनानी पड़ा ।[38] तारकासुर का वध करने के कारण, उन्हें 'तारकारि' कहा गया । क्रौंच गिरि पर चढ़ने के कारण उन्हें 'क्रौंचभेदा' कहा गया । उनके अन्दर देव हृदय में चमकने की शक्ति थी और सम्भवत: इसी कारण उनका नाम 'गुह' जो दार्शनिक शब्दों में हृदय के लिए प्रयुक्त होता है, कहा गया है ।[39]

इस प्रकार सम्बन्धित कथानकों से कात्तिकेय सूर्य देव हैं, और उनका मुर्गे से सम्बन्ध इस बात से स्पष्ट किया जा सकता है कि मुर्गा सूर्योदय की सूचना देता है । जैसा कि महाभारत[40] में उल्लिखित है, एक बड़ा मुर्गा जिसके सिर पर लाल चोटी थी, को देवताओं ने उपहार स्वरूप उन्हें 'देवसेना' से विवाह के पूर्व दिया था, विष्णुधर्मोत्तर[41] में मुर्गे को मूर्ति के साथ लगाई जाने वाली वस्तुओं में सम्मिलित किया गया है । इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले के लालभगत [42] में द्वितीय शताब्दी ईसवी में खोजे गए लाल पत्थर पर सूर्य का चित्र पाया गया था, जो कुक्कुट ध्वज कार्त्तिकेय का प्रतीत होता है और मुर्गे की आकृति एक दूसरे स्थान पर प्राप्त हुई । सूर्य से कार्त्तिकेय के सम्बन्ध होने की पुष्टि, इस तथ्य से होती है कि जो फरसा ‖शक्ति‖ वह धारण करते थे उसमें भी सूर्य कान्ति थी ।[43] शिव से शक्ति लेकर विश्वकर्मा ने शक्तयायुध का निर्माण सुब्रह्मण्य के लिए किया था ।[44] इसके अतिरिक्त उनके वाहन मुर्गा ‖कुक्कुट‖ के पंख में, वे सभी रंग जो सूर्य की प्रतिभा को प्रकाशित करते हैं, पाए जाते हैं ।[45] इतना ही नहीं सिन्धुघाटी की सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों के चन्हुदड़ों के बर्तनों पर भी सूर्य के साथ कुक्कुट का प्रतीक बना हुआ पाया गया है ।[46] जैसा कि भण्डारकर ने कहा है कि कुक्कुट जो कार्त्तिकेय का वाहन है, का सम्बन्ध शिव से भी है क्योंकि मुर्गा जंगल में होता है, जहाँ 'रूद्र' अपने गणों के साथ रहते हैं ।[47] पुनश्च, जहाँ भविष्य पुराण में कार्त्तिकेय को सूर्य कहा गया है, दूसरे स्थान पर उन्हें राजा कहा गया है ।[48] एक अन्य स्थान पर स्कन्द को 'दण्ड' कहा गया है क्योंकि श्रौव नाम उन्होंने सूर्य से धारण किया था ।[49] इसी पुराण में एक अन्य स्थान पर श्रोषा कहा गया है ।[50] शाम्बपुराण [51] में श्रोषा या श्रोष को 'स्तोसा' कहा गया है क्योंकि वह सूर्य के द्वारपाल के रूप में थे । वह और कोई नहीं कात्तिकेय ही थे ।[52]

'श्रोषा' शब्द उनके नाम के लिए सही प्रतीत होता है ।[53] भविष्य पुराण [54] में कहा गया है कि चूंकि वह देवताओं के सेनापति के रूप में चमकते हैं, इसलिए वे कार्त्तिकेय के नाम से जाने जाते हैं । 'श्रु' का अर्थ जाने से है 'स' शब्द उसमें जोड़ा गया है । चूंकि वे सर्वप्रथम गए, इसलिए उन्हें श्रोष कहा गया है ।[55] ईरानियों की धार्मिक कथा के अनुसार श्रोष या श्रौष जेन्द अवेस्ता के लिए प्रयुक्त होता है जो कि अहुर मज्द का सबसे सतर्क संदेश वाहक था ।[56] सुकुमार सेन के अनुसार ईरान के श्रोष और भारत के 'स्कन्द' में काफी समानता है ।[57] उनके अनुसार बाद के काल में श्रोष और स्कन्द में काफी समानता है । दोनों के ही पवित्र पशु मुर्गे थे जो उनकी सेवा करते थे । पहले का सम्बन्ध अहुरमज्द से है तथा दूसरे का सूर्य से । श्रोष और स्कन्द दोनों को शिक्षक के रूप में विवेचित किया गया है । पुनश्च, जेन्द अवेस्ता में श्रोष को ओसमा को मारने वाला कहा गया वहीं स्कन्द को तारकासुर को मारने वाला बतलाया गया है ।[58] राव के अनुसार दक्षिण भारत में ध्यान के जो श्लोक पढ़े जाते हैं उसमें उन्हें सूर्य कहा जाता है ।[59] सूर्य का कार्त्तिकेय से सम्बन्ध का पता तक्षशिला [60] से खोजी गई मूर्ति से भी होता है जिसमें उन्हें उत्तरी भारत की सूर्य मूर्ति की तरह ऊँचे जूते पहने दिखलाया गया है ।

पुराणों के विकास काल में, स्कन्द के चार देव रूप बताये गए । लिंग पुराण में सूर्य को चार देवी पुत्रों नैगमेयदी (जैसे कि नैगमेय[61] आदि) से घिरा हुआ कहा गया है । विष्णु पुराण में शाखा विशाख और नैगमेय [62] का उल्लेख है । वायु पुराण [63] में उनके चार रूप, जिसमें वह भी शामिल है, दर्शाया गया है । भागवत पुराण में भी उल्लिखित है ।[64] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में इन चारों रूपों को चतुर्मूर्ति या चतुरात्मा-कुमार कहा गया है ।[65] इन चारों रूपों का नाम कुमार, स्कन्द विशाख और गुह बतलाया गया है ।[66]

यह उल्लेखनीय है कि स्कन्द अपने चारों रूपों में, उन देवों का प्रमुख बतलाया गया है जो बच्चों को कष्ट देते थे। प्रारम्भ में छोटे स्तर के देवता नवजात शिशु को और उनकी माताओं को कष्ट देते थे तथा उनके रक्षकों को तभी मुक्ति मिलती थी जब उनकी भली भाँति पूजा हो जाती थी। स्कन्द - गुह को बलि दी जाती थी[67] और उनके बुरे प्रभाव से बचने के लिए षष्ठी के दिन उनकी पूजा की जाती थी।[68]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण[69] के अनुसार इन्द्र ने हजारों महाग्रहों, जिनके आचरण असुरों जैसे थे, की उत्पत्ति स्कन्द नामक देवीय बालक को मारने के लिए कर दिया था किन्तु वे सभी, इसी प्रकार की अधिक शक्तिशाली ग्रहों जो स्कन्द, विशाख, नैगमेय आदि के नेतृत्व में तैयार हुई, से दब गई। दोनों ही असुरीय दल, चाहे इन्द्र द्वारा बनाये गये हों या स्कन्द द्वारा, स्कन्द के अधीन हो गए। आयुर्वेद संहिता में ग्रहों और उनके कुप्रभाव का अध्ययन महत्वपूर्ण विषय है। भूत विद्या (या ग्रह विद्या कहा जाता है) आयुर्वेद की संहिता में उपचार का एक प्रमुख विषय है।[70] चरक संहिता[71] में भी इस विन्दु पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। सुश्रुत संहिता में इस ओर व्यापक रूप से ध्यान दिया गया है और नर-मादा ग्रहों के नाम दर्शाये गए हैं।[72] अष्टांग संग्रह में शिव के लिए यह कहा गया है कि उन्होंने बारह ग्रहों की रचना स्कन्द की सहायतार्थ की थी, जिनमें से पाँच पुरुष ग्रह तथा सात स्त्री ग्रह हैं।[73]

इस संदर्भ में, काश्यप संहिता, जो पाँचवीं शताब्दी ईसवी की है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें कई देवियों के नाम मिलते हैं। रेवती जिसके अनेक नामों (नामानी तावा विम्बसती[74]) जैसे - वरुणी, रेवती, ब्राह्मी कुमारी बहुपुत्रिका, षष्ठी, यभिका, निर्रुचिका, रोदनी, भूतमाता, लोकमाता इत्यादि का उल्लेख मिलता है। दूसरे शब्दों में अन्य देवियाँ जिनकी पूजा पहले से ही

प्रारम्भ हो गयी थी, वह रेवती के नाम से जानी जाने लगी और कश्यप संहिता में रेवती - कल्प के नाम से विख्यात है । यह और कोई नहीं बल्कि देवी षष्ठी ही हैं जिनकी पूजा बच्चे के जन्म के छठें दिन होती है । इस प्रकार वे देवियाँ जिनकी कृपा से बच्चों की रक्षा होती थी, वे सभी सम्मिलित हो गई और बाद में देवी षष्ठी के नाम से प्रसिद्ध हुई । बहुत पहले से यह सभी देवियाँ स्कन्द के साथ थी जो इस प्रकार के लोगों का प्रतिनिधित्व करती थी ।[75]

देवी भागवत पुराण[76] में षष्ठी देवी के विभिन्न रूप और उपासना विधि का उल्लेख है । उनके कार्य के अनुसार उन्हें षष्ठी कहा गया क्योंकि वे प्रकृति के छठें भाग का प्रतिनिधित्व करती थीं । वह बच्चों की प्रमुख देवी के रूप में मानी जाती थी तथा माताओं में देवसेना के रूप में प्रसिद्ध हुई । वह स्कन्द (कार्त्तिकेय) की संगी (साथी) हैं और निःसन्तान लोगों को बच्चे देती हैं । बच्चे के जन्म के छठें दिन, उनकी पूजा 'सूतिका-गृह' में होती है ।

कार्त्तिकेय के धार्मिक सम्प्रदाय के सम्बन्ध में ये साक्ष्य, इस देवता के प्रति विश्वास और उपासना की लोकप्रियता पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं । आरम्भ में, गृहदेवता, कार्त्तिकेय (स्कन्द) देवगणों में एक महत्वपूर्ण स्थान पर पहुँच गए ।

पुराणों में, कुछ अन्य महत्वपूर्ण सन्दर्भ हैं, जो कार्त्तिकेय के महत्व को प्रकट करते हैं । अग्नि पुराण[77] के अनुसार भाद्रपद के छठें दिन 'अक्षय- षष्ठी के रूप में, स्कन्द-षष्ठी का व्रत रहा (मनाया) जाता है । विष्णुधर्मोत्तर पुराण,[78] में 'चैत्र-षष्ठी' के सम्बन्ध में ऐसी ही व्यवस्था की गयी है जिसमें स्कन्द की (उपासना) पूजा की जाती है । स्वामी कार्त्तिकेय के लिए कार्तिक माह विशेष रूप से पवित्र माना गया है ।[79] विष्णुधर्मोत्तर पुराण [80] में ऐसे लोगों, जो

बच्चे चाहते हैं, द्वारा उपासना ॥कुमार रोव॥ का वर्णन है ।

यह उल्लेखनीय है कि पुराणों में, स्वामी कार्त्तिकेय के लिए अनेक पवित्र स्थानों ॥तीर्थों॥ का उल्लेख है । अग्नि पुराण के अनुसार गुह ॥कार्त्तिकेय॥ की प्रतिमा शहर के उत्तर में बनाई जानी चाहिए ।[81] वायु पुराण, जो सबसे प्राचीन है, में उल्लेख है गुह-तीर्थ उस देव के लिए पवित्र है, जो सरस्वती नदी के किनारे स्थित है ।[82] इस स्थान का उल्लेख विष्णुपुराण में भी है ।[83] पद्मपुराण में कार्त्तिकेय के पूज्य स्थलों, जिसे द्वीप कहा गया है जो सरस्वती के किनारे है, में माना गया है ।[84] वामन पुराण में, सरस्वती के निकट ओजसा-तीर्थ, जो पवित्र स्थान कार्त्तिकेय के लिए है, का उल्लेख मिलता है ।[85]

स्कन्द पुराण के प्रभासखण्ड में, अनेक तीर्थ स्थलों जो स्वामी कार्त्तिकेय से सम्बन्धित हैं, कुमारेश्वर-तीर्थ, का उल्लेख मिलता है ।[86] यह स्थान सौराष्ट्र ॥आधुनिक गुजरात॥ में स्थित है ।

स्कन्द पुराण में, चमत्कारपुर शहर का वृहद् विवेचन है, जो आनर्त्त देश में है । बाद में इसका नाम स्कन्दपुर पड़ा ।[87] यह उल्लेखनीय है कि रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में आनर्त्त देश की पहचान गुजरात में द्वारका के निकटवर्ती क्षेत्रों से की गई है ।[68]

स्कन्द पुराण में, स्कन्देश्वर, नैगमेयेश्वर और विशाखेश्वर तीर्थ वाराणसी ॥ उत्तर प्रदेश॥ में है, का कार्त्तिकेय के पवित्र स्थलों के रूप में उल्लेख है ।[89] वाराणसी से कुछ दूर पर गोमती नदी के किनारे कोटि-तीर्थ नामक पवित्र तीर्थ स्थल है । इस स्थान का उल्लेख पद्मपुराण में हुआ है ।[90] यह उल्लेखनीय है कि कोटि-तीर्थ का उल्लेख महाभारत में भी है ।[91]

वायु पुराण में कार्त्तिकेय पद्म का उल्लेख है जो गया ॥बिहार॥ में था ।[92] अग्निपुराण के अनुसार गया में 'काकशिला' है जो कार्त्तिकेय का पवित्र स्थल है ।[93]

गरूड़ पुराण में कार्त्तिकेय के पवित्र तीर्थ स्थल के रूप में पुण्ड्रवर्द्धन उल्लिखित है ।[94] कल्हण की राजतरंगिणी पुण्ड्रवर्द्धन में कार्त्तिकेय के मन्दिर होने का उल्लेख करती है जिसका कश्मीर के शासक जयापीड विनयादित्य ने भ्रमण (दर्शन) किया ।[95] नरसिंह पुराण में भी एक कुमार-तीर्थ का उल्लेख है ।[96]

मत्स्य पुराण में एक लोकप्रिय तीर्थ, जो कार्त्तिकेय के प्रसिद्ध नाम स्कन्द-तीर्थ के नाम से जाना जाता है, नर्मदा तट पर बतलाया जाता है ।[97] पुराण के अनुसार लोग स्कन्द-तीर्थ में स्नान करके ही पापों से मुक्त हो जाते थे । इस विशेष तीर्थ का उल्लेख कूर्म पुराण[98] और पद्म पुराण [99] में भी है । स्कन्द पुराण में नर्मदा[100] कुमारेश्वर-तीर्थ होने का उल्लेख है जो कि स्कन्द तीर्थ की तरह है। सूर्य पुराण में उज्जयिनी के साकी-भेद को कार्त्तिकेय का पवित्र स्थल बताया गया है ।[101]

मत्स्य पुराण में यशस्कारी को कार्त्तिकेय का पवित्र तीर्थ कहा गया है ।[102] यह स्थान कुमायूं जिले के बैजनाथ में, जो अल्मोड़ा से करीब 128 किलोमीटर दूर स्थित है । ऐसा लगता है कि राजशेखर की काव्यमीमांसा में इस स्थान को कार्त्तिकेय नगर कहा गया है ।[103]

ब्रह्मपुराण [104] कुमार-तीर्थ को गौतमी नदी (गोदावरी) पर बतलाता है जबकि कूर्म पुराण[105] स्वामी-तीर्थ को कावेरी और ताम्रपर्णी नदियों के बीच बतलाता है । स्पष्टतया, ये सभी तीर्थ स्थल दक्षिण के अर्द्ध भाग में स्थित थे ।

स्कन्द पुराण[106] से यह भी विदित होता है कि कुमारधारा और स्वामी पुष्करिणी कार्त्तिकेय के पवित्र स्थल थे । इसी तरह से एक जंगल स्कन्दवन नाम से प्रसिद्ध था । श्रीगिरि की प्रदक्षिणा करने के उपरान्त, अगस्त्य

स्कन्दवन अपनी पत्नी के साथ गये थे। वाराहपुराण में भी हिमालय में कार्त्तिकेय के मन्दिर के होने का उल्लेख मिलता है।[107]

इस प्रकार महाकाव्यों एवं पुराणों की समीक्षात्मक विवेचना से स्पष्ट है कि महाकाव्यों में कार्त्तिकेय अत्यन्त लोकप्रिय देवता के रूप में वर्णित हैं, पुराणों में उनकी लोकप्रियता अधिक बढ़ गई थी। उनकी उपासना के लिए भक्तगणों द्वारा मन्दिरों का निर्माण किया जाना, तालाब, झरने एवं जंगलों का नामकरण उनके नाम के आधार पर किया जाना उनकी सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिष्ठा के चरमोत्कर्ष को द्योतित करता है।

संदर्भ-संकेत

1- वायु पुराण, अध्याय 70; वाराह पुराण, अध्याय 25, 50; सूर्य पुराण अध्याय 60-62; ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, III , अध्याय 1-2 और 14 ; ब्रह्माण्ड पुराण, II , अध्याय 40 ; शिव महापुराण, IX , अध्याय 19 ; मत्स्य पुराण, अध्याय 158 - 60 ; ब्रह्मपुराण अध्याय, 128 ; वामन पुराण, अध्याय 57 - 58 ; लिंग पुराण, 1•104•105 ; पद्मपुराण, 6•38 ; विष्णुधर्मोत्तर पुराण, I , अध्याय, 228

2- वाराह पुराण, अध्याय, 25, श्लोक 34 :

3- विष्णुपुराण, 1•15•116

4- यदुवंशी, शैव मत (हिन्दी), पृ0 76

5- वाराह पुराण, अध्याय, 25,52

6- वही, अध्याय, 25

7- सूर्य पुराण, अध्याय, 60 - 62

8- ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, III , अध्याय, 1 - 2 और 14

9- भविष्य पुराण, ब्रह्मपुराण, अध्याय - 39

10- ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, III , अध्याय - 1-2 और 14

11- वायु पुराण, अध्याय, 72

12- हाजरा, आर0 सी0, वायु पुराण को 200 ई0 के बाद रखते हैं (कल्चरल हेरिटेज आँव इण्डिया, भाग II , पृ0 240-70) जबकि पी0 वी0 काणे 350 से 500 ईसवी के बीच रखते हैं (हिस्ट्री आँव धर्मशास्त्र भाग V,

13 - वायु पुराण, अध्याय, 72

14 - रामायण, I , अध्याय, 36 - 37

15 - महाभारत

16 - ब्रह्माण्ड पुराण, II अध्याय 40

17- सामान्य रूप से ब्रह्माण्ड पुराण प्रारम्भिक पुराण माना गया है किन्तु यह निश्चियेन वायु पुराण के बाद ही लिखा गया । दीक्षितार ने इसे चौथी शताब्दी ई0 पू0 के रखा है ﴾ पुराण इंडेक्स , भाग I, पृ0 XXII

18 - शिव पुराण IX अध्याय, 19

19 - वही, II अध्याय 1-12

20 - मत्स्य पुराण, अध्याय - 158 - 60

21- अग्रवाल, वी0 एस0, मत्स्य पुराण - ए स्टडी, पृ0 237

22- मत्स्य पुराण, अध्याय - 154, 52-53, अग्रवाल, पी0 के, स्कन्द कार्त्तिकेय, पृ0 57

23- ब्रह्मपुराण, अध्याय 128

24 - सूर्य पुराण, अध्याय, 60

25 - स्कन्द पुराण, का महेश्वर-खण्ड ﴾केदार-खण्ड﴿, अध्याय-27 और﴾कुमारिका-खण्ड﴿, अध्याय - 29

आर0 सी0 हाजरा के अनुसार 700 ईसवी से पहले, यह पुराण संकलित नहीं किया गया ﴾स्टडीज इन द पुराणिक रिकार्ड्स ऑव हिन्दू राइट्स एण्ड

कस्टम्स, पृ0 157) । पी0 वी0 काणे इस पुराण को सातवीं शताब्दी ईसवी से 9 वीं शताब्दी ईसवी के बीच रखते हैं (हिस्ट्री आँव धर्मशास्त्र, भाग V पृ0 911-12) .

26- आर0 सी0 हाजरा विष्णु पुराण की तिथि 100 ईसवी से 350 ईसवी के बीच निर्धारित करते हैं । लिंग पुराण अपने वर्तमान स्वरूप में 600 ईसवी में आया, जबकि इसका मूल रूप पहले का माना जाता है । मार्कण्डेय पुराण का अधिकांश भाग 200 ईसवी के लगभग लिखा गया,(आर0 सी0 हाजरा, पुराणिक रिकर्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स पृ0 19-26, 93-96 और 8-13) ।

27 - विष्णुधर्मोत्तर पुराण, I, अध्याय, 228 - 30

28 - वही, I , 9526

29 - ब्रह्माण्ड पुराण, III, 10•40-51, रामायण, 1 37•24-32

30 - महाभारत, I, 127•13

31 - मत्स्य पुराण, अध्याय, 6•27

32 - वही,

33 - वाराह पुराण, 25•44-49 ; वामन पुराण, 57•46

34 - वायु पुराण, I, 54• 20-21

35 - महाभारत 27•13

36 - मत्स्य पुराण अध्याय- 6,26 ; 159•1-2 ; वाराह पुराण के अनुसार- 25•1-43

37 - वायु पुराण, I, 154•24

38- वाराह पुराण, 25•1-17 ; वायु पुराण, I, 54•20

39- वामन पुराण, 58•1-121

40- महाभारत, XI, 45•46 और XIII. 86•15-25 ; मजुमदार, आर० सी० द एज आँव इम्पीरियल यूनिटी, पृ० 468

41- विष्णुधर्मोत्तर, III, अध्याय 71

42- आर्कलॉजिकल सर्वे आँव इण्डिया (वार्षिक रिपोर्ट) 1929-30, पृ० 132-33; जर्नल आँफ द इण्डियन सोसाइटी आँव ओरिएन्टल आर्ट, V, पृ० 13F ; बनर्जी, जे० एन० डेवलपमेन्ट आँव हिन्दू आयकोनोग्राफी, पृ० 116-18

43- राय , टी० ए० जी०, ई०एच०आई०, भाग II, पृ० 431 (मार्कण्डेय पुराण के अनुसार)

44- वही

45- वही, पृ० 432

46- यदुवंमसी, शैव मत, पृ० 76

47- भण्डारकर, आर० जी० , वैष्णविज्म, शैविज्म एंड माइनर रिलिजस सिस्टम्स, पृ० 215

48- राव, टीए०जी; एलिमेन्ट्स आँव हिन्दू आयकोनोग्राफी, पृ० 431

49- वही, पृ० 431; भविष्यपुराण, 1•124•13; और श्लोक 22-24

50- वही, 1•76•13 और 18; 1•143•40

51- शाम्ब पुराण, 6•22; 7•3; 16•8

52- वही, 16•8

53- हाजरा, आर0 सी0, स्टडीज इन द उपपुराणाज़, भाग I , पृ0 39 और 32

54- भविष्य ब्रह्मपुराण, 124·24

55- वसु, एन0 एन0, मयूरभंज आर्कलॉजिकल सर्वे, भाग I , प्रस्तावना, पृ0 XXI.

56- इण्डो-ईरानिका, भाग IV , नम्बर, I जुलाई 1950 (ईरानियन श्रोष एण्ड इण्डियन स्कन्द, कृत सुकुमार सेन), पृ0 27

57- वही

58- अग्रवाल, पी0 के0· स्कन्द-कार्त्तिकेय, पृ0 - 23

59- राव, टी0 ए0 जी0, ई0 एच0 आई0 II पृ0 432

60- आर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया (वार्षिक रिपोर्ट) 1934-35, पृ0 31

61- लिंग पुराण, 1·82·16

62- विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 1·15·115-16

63- वायु पुराण, 66·24

64- भगवत पुराण, 6·14

65- विष्णुधर्मोत्तर पुराण, III, 71·3 और III, 218·50

66- वही, III71·3-7

67- वही, II 22·28

68- अग्रवाल, पी0 के0, स्कन्द - कार्त्तिकेय, पृ0 65

69- वही, पृ0 65-66

70- वही, पृ0 66

71- चरक संहिता, IV, अध्याय 8

72- अग्रवाल, वी0 एस0, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृ0 51

73- वही,

74- काश्यप संहिता ़ हेमराज द्वारा सम्पादित ़

75- अग्रवाल, पी0 के0, स्कन्द-कार्त्तिकेय, पृ0 67 - 69

76- देवीभागवत पुराण, IX, 46

77- अग्नि पुराण, III, 221.54

78- विष्णुधर्मोत्तर पुराण, III, 221.54

79- वही, II अध्याय 96

80- वही, III. 223.18

81- अग्निपुराण, 39.12; बनर्जी, डेवलपमेन्ट आॅव हिन्दू इकानोग्राफी, पृ0 338

82- वायु पुराण, श्लोक सं0 315

83- विष्णु पुराण V. 33.26

84- पद्म पुराण, स्वर्ग खण्ड, 19.71

85- वामन पुराण, 41 . 6-7

86- स्कन्द-पुराण, प्रभा सक्षेत्र-माहात्म्य, 215.2.

87- वही, नगर खण्ड, 71.38

88- रायचौधरी, एच0 सी0, पालिटिकल हिस्ट्री आॅव एन्श्यन्ट इण्डिया, पृ0 447

89- स्कन्द पुराण, काशी खण्ड, उत्तरार्द्ध, 97•26-27

90- पद्म पुराण, स्वर्ग खण्ड, अध्याय, 16

91- महाभारत, III, 62•68

92- वायु पुराण, 109•19; 111•54

93- अग्नि पुराण, 116•23•

94- गरुड़ पुराण, I. 81•16

95- राजतरंगिणी, IV, 422

96- नरसिंह पुराण, 65•17

97- मत्स्य पुराण, 191•50•51

98- कूर्म पुराण, II. 41•31

99- पद्म पुराण, 13•51

100- स्कन्द पुराण, रेवा खण्ड

101- सूर्य पुराण, 67•10

102- मत्स्य पुराण, 13•45

103- काव्यमीमांसा (गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज) पृ० 47

104- ब्रह्म पुराण, II, अध्याय, 81

105- कूर्म पुराण, II, 36, 19-20

106- स्कन्द पुराण, 2 (1), 1; (1)• 12

107- वाराह पुराण, 151•61•62

अध्याय चार

"लौकिक संस्कृत साहित्य में कार्त्तिकेय"

प्राचीन काल के धार्मिक साहित्य, जहाँ कार्त्तिकेय के सन्दर्भों से युक्त हैं, वहीं प्राचीन कालीन लौकिक संस्कृत ग्रन्थ भी कार्त्तिकेय विषयक सन्दर्भों से अछूते नहीं हैं ।

प्राचीन भारतीय लौकिक संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम कौटिल्य की लेखनी की प्रसूति 'अर्थशास्त्र' विशेष उल्लेखनीय है । मूलत: प्राचीन भारतीय राज-व्यवस्था पर एक महत्त्वपूर्ण कृति होने के बावजूद अर्थशास्त्र चौथी शताब्दी ई0 पू0 के धार्मिक जीवन पर भी प्रकाश डालता है ।[1] दुर्ग-निवेश नामक अध्याय में कौटिल्य कहता है " नगर के मध्य में अपराजित, अप्रतिहत,जयन्त और विजयन्त जैसे देवताओं के 'कोष्ठों' के साथ ही शिव, वैश्रवण, अश्विन, श्री तथा मदिरा के निवासों का स्थान होना चाहिए ।[2] काँगले के अनुसार अपराजित, अप्रतिहत, जयन्त और विजयन्त ये चारों नाम साहसपूर्ण विजय के प्रतीक हैं ।[3] रामतेजशास्त्री अपराजित, अप्रतिहत, जयन्त और वैजयन्त का समीकरण क्रमश: दुर्गा, नारायण, इन्द्र के पुत्र तथा इन्द्र से करते हैं ।[4] किन्तु काँगले महोदय का कहना है कि स्त्री वाचक प्रथम नाम प्रश्न करने योग्य है ।[5] वी0 पी0 सिन्हा के अनुसार 'अप्रतिहत' विष्णु का नाम है और जयन्त, इन्द्र या रूद्र के पुत्र हो सकते हैं अथवा वे स्कन्द हो सकते हैं । किन्तु वे महाकाव्यों में उपास्य देव के रूप में नहीं पाये जाते हैं ।[6] बहरहाल, यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कौटिल्य पुन: कहता है कि ब्रह्मा, इन्द्र, यम और सेनापति जैसे संरक्षक देवगणों को नगर के द्वारों पर अवस्थित होना चाहिए ।[7] इस तरह सेनापति के समीकरण के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए, कि कोई और नहीं बल्कि कार्त्तिकेय ही हैं ।[8] पूर्वोल्लिखित चारों देवताओं के निश्चित समीकरण को लेकर भले ही मतैक्य न हो, किन्तु यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र में कार्त्तिकेय का उल्लेख, उन देवताओं में से एक के रूप में अवश्य है जिनके मन्दिर

नगर द्वार पर अवश्य स्थित होते थे । इस तरह मौर्यकाल में, अन्य देवताओं के साथ कार्त्तिकेय की न केवल उपासना ही होती थी वरन् उनको समर्पित मन्दिरों का भी निर्माण किया जाता था ।

समान रूप से महत्वपूर्ण एक अन्य ग्रन्थ, पतंजलि के 'महाभाष्य' से भी मौर्योत्तर काल में कार्त्तिकेय-उपासना, उन्हें समर्पित मन्दिर निर्माण विषयक सूचना और प्रमाणित हो जाती है । पतंजलि, जो एक महान वैयाकरण था, पुष्यमित्र शुंग का समकालीन था । पाणिनि के वैयाकरण-सूत्र पर टिप्पणी करते हुए पतंजलि स्पष्टतः शिव, स्कन्द और विशाख की मूर्तियों की उपासना हेतु निर्माण का संकेत करते हैं ।[9]

उपर्युक्त साक्ष्य मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में स्कन्द और विशाख की व्यापक रूप से प्रचलित उपासना का संकेत करते हैं । यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि स्कन्द एवं विशाख, शिव के साथ इतने सुप्रचलित नाम थे, कि इनकी मूर्तियों का विक्रय कर मौर्य शासक धन प्राप्त करते थे । यद्यपि पतंजलि के काल में देव-मूर्तियों का विक्रय बन्द हो गया था, तथापि उनकी उपासना में अनवरत बढ़ोत्तरी होती जा रही थी ।[10]

स्कन्द और विशाख एक ही देवता के दो सुप्रचलित नाम हैं किन्तु पतंजलि द्वारा इनका पृथक उल्लेख किया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है । डी० आर० भण्डारकर [11] ने उचित ही ध्यान दिलाया है, यदि दोनों नाम एक ही देवता के हैं तो पतंजलि को केवल एक ही नाम प्रयोग करना चाहिए था । किन्तु उनके द्वारा दो पृथक नामों का उल्लेख किया जाना यह स्पष्ट संकेत करता है कि द्वितीय शताब्दी ई० पू० तक स्कन्द और विशाख दो पृथक-पृथक देवता थे । महाभारत [12] में विशाख स्कन्द के दाएं भाग से निकले हुए बतलाये

गए हैं जब कि बाद में इन्द्र की विद्युत से मारे गये बतलाये गए हैं । आर० जी० भण्डारकर बतलाते हैं कि यह इस बात का संकेतक है कि ये दो अलग-अलग देवता थे जो परवर्ती काल में एक रूप ‹नाम› में दिखलाई पड़ते हैं ।[13] कुषाण शासक हुविष्क की भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्राएं यह प्रमाणित करती हैं कि स्कन्द और विशाख प्रथम-द्वितीय शताब्दी ईसवी तक दो पृथक् देवता थे ।[14]

संस्कृत भाषा में लिखित 'ललित विस्तर'[15] नामक बौद्ध कृति से सूचना मिलती है कि शिव, स्कन्द, नारायण, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, वैश्रवण, शक्र, ब्रह्मा, और लोकपालों की प्रतिमाएं बाल राजकुमार सिद्धार्थ को दर्शायी गई थी । ‹शिव-स्कन्द-नारायण-कुबेर-चन्द्र-सूर्य-वैश्रवण-शक्र-ब्रह्मा-लोकपाल प्रभृत्य: प्रतिभा सर्व: स्वेभ्य: स्वेभ्य: स्थानेभ्यो व्युत्थान बोधिसत्वस्य क्रमतलयोनिर्पतन्तिस्म›[16]

वराहमिहिर की बृहत्संहिता, जो छठीं शती ईसवी की ज्योतिष-विद्या पर एक विशिष्ट कृति है, में भी कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं सुरक्षित हैं जिनको कार्त्तिके उपासना के साथ विशेषत: सम्बन्धित किया जाता है । इस कृति में एक स्थल पर 'पुष्य-स्नान' क्रिया के पूर्व स्कन्द और विशाख की कृतियों का अंकन एवं प्रसादन, आवश्यक बताया गया है ‹स्कन्दं विष्णु विशाखं च[17]›

स्कन्द ‹कार्त्तिकेय› विषयक प्रतिमा विज्ञान का भी बृहत्संहिता में संक्षिप्त विवरण मिलता है । इसके अनुसार स्कन्द का रूप रंग बालक सदृश है, वे एक शक्ति ‹भाला› वहन करते हैं और अपने प्रतीक के रूप में एक मयूर रखते हैं ।[18] इसी ग्रन्थ में अन्यत्र स्कन्द को 'षडमुखी' कहा गया है ।[19]

अमरसिंह कृत 'नामलिंगानुशासन' ‹ जो अमरकोश नाम से प्रसिद्ध है ›, जो कि शब्दों ‹पदों› का प्रथम शब्दकोश माना जाता है । अमरसिंह परम्परा के अनुसार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे । वे एक कवि एवं निश्चित रूप से एक बौद्ध मतावलम्बी थे, जिन्होंने महायान को जाना और

कालिदास का प्रयोग किया ।[20] अमरकोश में कार्त्तिकेय देवता के अनेक नामों का उल्लेख है जिससे यह इंगित होता है कि सभी नाम एक ही और उसी देवता के हैं । कार्त्तिकेय के अनेक नामों की सूची 'नामलिंगानुशासन' में इस प्रकार है :-

"कार्त्तिकेय: महासेन: शरजन्मा षडानन:
पार्वतीनन्दन: स्कन्द: सेनानीरग्निर्भूगुह:
बाहुलेउस्तारक जिद्विशाख: शिखिवाहन:
षन्मातुर: शक्तिधर: - कुमार: क्रौंचदारण: ।[21]

ग्रन्थ में उपलब्ध देवता के नामों की इतनी बृहद् सूची से कार्त्तिकेय की लोकप्रियता भी सिद्ध होती है, विशेषत: जिस काल में उक्त ग्रन्थ रचित हुआ । लिंगानुशासन को सामान्यत: पाँचवी - छठीं शती में रखा जाता है, यद्यपि एक मत के अनुसार इसकी रचना आठवीं शती के पूर्व हुई थी ।[22]

कालिदास कृत 'कुमार संभव' में कार्त्तिकेय देवता की महत्ता अधिकाधिक स्थापित हुई । वी० एस० अग्रवाल के शब्दों में 'यह कहना अत्युक्ति न होगी कि गुप्तकाल में स्कन्द (कार्त्तिकेय) एक आदर्श राष्ट्रीय देवता के रूप में स्थान बना लिया था । अट्ठारह सर्गों में विभक्त 'कुमार संभव' में शिव और पार्वती से उत्पन्न 'कुमार' (कार्त्तिकेय) के जन्म की कथा वर्णित है, जिसने देवताओं की सेना का नेतृत्व किया और तारक नामक राक्षस का एक घमासान युद्ध में वध किया । इस तरह कालिदास द्वारा कार्त्तिकेय को लक्ष्य कर लिखित एक सुन्दर महाकाव्य के माध्यम से उस देवता को अमरत्व प्रदान किया (गया) । 'कुमार' को लेकर महान कवि एवं नाटककार द्वारा एक उच्चकोटि की कृति की रचना, इस तथ्य को स्वत: प्रमाणित करती है कि इसके रचनाकाल के समय कार्त्तिकेय युद्ध के देवता के रूप में अत्यन्त लोकप्रिय थे ।

'कुमार संभव' के अतिरिक्त कालिदास ने 'रघुवंश' में भी कार्त्तिकेय (गुह) को अपने वाहन मयूर के पृष्ठ भाग पर बैठा हुआ चित्रित किया है (मयूर पृष्ठाश्रयिना गुहेन [24]) । कालिदास गुप्तकाल में कार्त्तिकेय के सम्मान में निर्मित देव-मन्दिर के अस्तित्व को भी प्रमाणित करते हैं । 'मेघदूत' में रामगिरि में स्थित कार्त्तिकेय के एक मन्दिर का वर्णन मिलता है ।[25] रामगिरि की पहिचान राम्टेक पहाड़ी से की जाती है जो महाराष्ट्र के नागपुर जिले में स्थित है ।

शूद्रक की लेखनी की प्रसूति मृच्छकटिक' एक अत्यन्त रोचक नाट्यकृति है । यह सम्भवत: छठीं शती ईसवी की रचना प्रतीत होती है ।[26] यद्यपि यह एक नाट्यकृति है, तथापि यह कार्त्तिकेय उपासना विषयक अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यह कृति स्कन्द की पूजा के एक अन्य लोकप्रिय पक्ष को प्रकाश में लाती है । इस ग्रन्थ के अनुसार चोरों और सेंधमारों की गणना स्कन्दपुत्रों के रूप में होती है ।[27] मृच्छकटिक में शर्विलक नामक सेंधमार चारूदत्त के गृह में सेंध मारते समय अपने को स्कन्दपुत्र (चोर) कहते हुए अपने कार्य की सफलता हेतु देवकुमार कार्त्तिकेय को नमन करता है ।[28] चारूदत्त के घर की दीवाल में सेंध बनाने के पश्चात् वह विभिन्न उपाधियों से कार्त्तिकेय की आराधना करता है । इन उपाधियों में कनकशक्ति, ब्रह्मण्यदेव और देवव्रत उल्लेखनीय हैं ।

कार्त्तिकेय उपासना से सम्बन्धित रोचक प्रसंग बाणभट्ट की कृति कादम्बरी [29] एवं हर्षचरित [30] और धनपाल की तिलकमंजरी [31] में भी उपलब्ध है । चन्द्रपीड के जन्म का वर्णन करते हुए कादम्बरी में, हल्दी से रंगे पीले वस्त्रों से लिपटी षष्ठी की आकृति की ओर संकेत है ।[32] इसमें पुन: कहा गया है कि साथ-साथ मयूर पर सवार भाला लिए हुए कार्त्तिकेय की आकृति भी

स्थापित होना चाहिए ।[33] पुनश्च, कादम्बरी में 'बहुपुत्रिका' का उल्लेख मिलता है [34] और हर्षचरित जातमातृका' का उल्लेख करता है ।[35] यह नाम किसी अन्य देवी का नहीं अपितु देवी षष्ठी का संकेतक है जिसको पूर्ण रूपेण प्रमाणित धनपाल की 'तिलकमंजरी' जो षष्ठी के चित्र को 'जातमातृपटल' पर चित्रित करने का निर्देश देता है, करती है (जो छोटा टेबुल 'जातमात्तृ [36] है)।

दामोदर गुप्त के 'कुट्टनीमत' में कार्त्तिकेय विषयक प्रचुर सामग्री का अभाव नहीं है । कर्कोट वंश का राजा जयापीड विनयादित्य जिसने आठवीं शताब्दी ईसवी में कश्मीर पर शासन किया, लेखक दामोदर गुप्त का महान आश्रयदाता था । यह ग्रन्थ कुछ रोचक सन्दर्भों को प्रस्तुत करता है ।[37] यह कार्त्तिकेय को अनेक नामों, जैसे शरजंमन् [38], गुह [39], महासेन [40] और कुमार [41] से सन्दर्भित करता है । इससे स्पष्ट है कि इस देवता की विस्तृत रूप से आराधना होती थी।

सोमदेव कृत कथा सरित्सागर, जो कश्मीर नरेश अनन्त की पत्नी सूर्यमती के मनो विनोद हेतु लिखा गया था, की तिथि ग्यारहवीं शताब्दी है ।[42] कथासरित्सागर में व्यादि नामक एक ऐसे ब्राह्मण का उल्लेख है जो विद्या[43] प्राप्ति हेतु स्वामी कुमार की अर्चना कर रहा है । इस ग्रन्थ में वर्णित एक कथा के अनुसार संस्कृत व्याकरण की 'कातन्त्र' पद्धति परम्परया कार्त्तिकेय के षड्मुखों से नि:सृत कही जाती है । पुनश्च, कार्त्तिकेय अपने मन्दिर में प्रकट हुए और अपने भक्तों को व्याकरण की 'कातन्त्र' पद्धति का ज्ञान दिया ।[44] कथासरित्सागर में ही दक्षिण भारत स्थित कार्त्तिकेय के मन्दिरों का भी उल्लेख मिलता है ।

कार्त्तिकेयपुर नामक नगर कार्त्तिकेय का पवित्र स्थल था । कार्त्तिकेयपुर नामक नगर उत्तर प्रदेश के कुमायूं जिले में वर्तमान बैजनाथ ग्राम के निकटस्थ गोमती घाटी में अवस्थित था ।[45] कार्त्तिकेयपुर का वर्णन देवीपुराण के नवें अध्याय में

मिलता है ।[46] डी0 आर0 भण्डारकर [47]और डी0 सी0 सरकार [48] के अनुसार कर्त्तपुर सम्भवत: कार्त्तिकेयपुर का एक अन्य रूप रहा हो ।

इतिहासकार कल्हण (12वीं शताब्दी ई0 में) कृत 'राजतरंगिणी' में कश्मीर नरेशों का इतिहास पद्यबद्ध है । इसके अनुसार मध्यकाल में उत्तरी बंगाल कार्त्तिकेय उपासना का एक महत्वपूर्ण केन्द्र प्रतीत होता है । इस ग्रन्थ से यह सूचित होता है कि गौड़ देश में पुण्ड्रवर्द्धन नामक स्थान पर कार्त्तिकेय का एक मन्दिर स्थित था ।[49] कार्त्तिकेय के पुण्ड्रवर्द्धन स्थित मन्दिर में भरत के 'नाट्यशास्त्र' के सूत्रों पर आधारित नृत्य एवं संगीत का भरपूर आनन्द गौड़ नरेश जयन्त लेता था जो स्वयं उस विषय से सुपरिचित था ।[50] कश्मीरी इतिहासकार पुन: कहता है कि जयापीड नामक कर्कोट वंश का कश्मीर नरेश पुण्ड्रवर्द्धन स्थित कार्त्तिकेय मन्दिर में आयोजित नृत्य एवं संगीत का आनन्द लेने गया था, जहाँ वह कमला नामक नृत्यांगना के प्रेम-पाश में इस तरह आबद्ध हुआ कि अन्तत: दोनों का सम्बन्ध आजीवन हो गया ।[51]

यह स्पष्टत: ज्ञात नहीं है कि कार्त्तिकेय मन्दिर का निर्माण वस्तुत: कब हुआ, परन्तु जयापीड की तिथि के आधार पर यह तर्कसंगत ढंग से कहा जा सकता है कि आठवीं और नवीं शताब्दी में पुण्ड्रवर्द्धन स्थित मन्दिर को विस्तृत लोकप्रियता थी । पुण्ड्रवर्द्धन के कार्त्तिकेय उपासना के विख्यात केन्द्र होने की पुष्टि गरूड़ पुराण से भी होती है, जिसमें पुण्ड्रवर्द्धन नामक स्थान कार्त्तिकेय के लिए अति पवित्र रूप में वर्णित है ।[52] गरूड़ पुराण का यह प्रसंग अतीव महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके इतर किसी भी पौराणिक ग्रन्थ में कहीं पुण्ड्रवर्द्धन कार्त्तिकेय तीर्थ के रूप में सन्दर्भित नहीं है । गरूड़ पुराण प्राय: काल क्रम की दृष्टि से राजतरंगिणी के काफी पूर्व का माना जाता है ।[53]

इस प्रकार उत्तर भारतीय कतिपय लौकिक संस्कृत साहित्य की कृतियों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि देवताओं के सेना - अधिपति स्वरूप कार्त्तिकेय काफी पहले से लोकप्रिय थे । गुप्तकाल में अवश्य ही कार्त्तिकेय की लोकप्रियता की वृद्धि हुई थी, जिसकी पुष्टि महाकवि कालिदास की कृतियों से तथा कुमारगुप्त प्रथम की स्वर्ण मुद्राओं से होती है ।[54]

संदर्भ-संकेत
========

1- 1- कौटिल्य के अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं । याकोबी महोदय ने इसे चौथी शताब्दी ई0 पू0 में रखा है जो कि चन्द्रगुप्त मौर्य का काल था ﴾इण्डियन एन्टीक्यूरी, 1918, पृ0 157-61 और 187-95 और 189-95 ﴿ कुछ विद्वान् इसकी तिथि गुप्तकाल के आस-पास रखते हैं ﴾राय चौधरी, एच0 सी0, पालिटिकल हिस्ट्री आफ एन्शयन्ट इण्डिया, पृ0 246, कलकत्ता, 1950; मजूमदार, आर0 सी0 द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 285-87, बम्बई 1960 ﴿

2- कौटिल्य का अर्थशास्त्र ﴾कांगे का अनुवाद﴿ पृ0 80, बम्बई, 1960, 1963 और आर0 शाम शास्त्री का अनुवाद, पृ0 59, मैसूर; 1963 ﴾मूलपाठ - अपराजित प्रतिहत जयन्त वैजयन्त कोष्ठान शिव वैश्रवण शिवन श्री मदिरा गृहणि च "﴿ .

3- कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र, कांगे का अनुवाद, पृ0 80, बम्बई, 1960, 1963 .

4- वही, पाण्डेय रामतेजशास्त्री का अनुवाद ﴾हिन्दी﴿ पृ0 59, वही

5- वही, कांगे का अनुवाद, पृ0 80, वही

6- सिन्हा, बी0 पी0, रीडिंग इन कौटिल्याज, अर्थशास्त्र, पृ0 170, दिल्ली, 1976

7- कौटिल्य, अर्थशास्त्र, II 4.19

8- सिन्हा, बी0 पी0 रीडिंग इन कौटिल्याज अर्थशास्त्र, पृ0 170, वही

9- पाणिनि, V 3.99, सं0 एवं अनु0 श्रीशचन्द्र वसु इलाहाबाद 1991-92

10- प्रसाद, एच0 के0, द पॉलिटिकल एण्ड सोसियो - रीलिजियस कण्डीशन ऑफ बिहार, पृ0 198, वाराणसी, 1970

11- भण्डारकर, डी0 आर0, कार्मिकल लेक्चर्स ऑन एन्श्यन्ट इण्डियन न्यूमिस-मेटेक्स, पृ0 22, कलकत्ता, 1921

12- महाभारत, III, अध्याय 229

13- भण्डारकर, आर0 जी0, वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड अदर माइनर रीलिजियस सिस्टमस, पृ0 215, पूना 1928

14- न्यूमिसमेटिक क्रोनिकल, XII, 1892, पृ0 106, लन्दन

15- ललितविस्तर की तिथि के लिए, आर0 एल0 मित्रा द्वारा प्रस्तावना का अनुवाद, पृ0 19· कुछ विद्वान इस ग्रन्थ का काल प्रथम शताब्दी ई0 पू0 मानते हैं किन्तु यह सर्वमान्य नहीं है । यह कृति प्राय: तीसरी-चौथी शताब्दी की मानी जाती है ।

16- ललितविस्तर, अध्याय 8, एस0 लेफ्मैन, दो भागों में, हाले 1902-08

17- बृहत्संहिता, XLVII, 26, वाराणसी, 1995-97

18- वही, LVII 41

19- वही, XCVIII 1· वही

20- कीथ, ए0 बी0 हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 413, आक्सफोर्ड, 1956

21- अमरकोश (नामलिंगानुशासन), 1,1, 39-40

22- मजूमदार, आर0 सी0, द क्लासिकल एज, पृ0 318, बम्बई, 1954

23- जर्नल ऑव द यू0 पी0 हिस्टारिकल सोसाइटी, IX, ii, पृ0 66, लखनऊ

24- रघुवंश, VI सं0 अंग्रेजी अनुवाद सहित सी0 आर0 नन्दरगिकर, बम्बई, 1897.

25- मेघदूत, पूर्वमेघ, 43-45, सी0 किंग द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित, लन्दन, 1930

26- दासगुप्त, एस0 एन0 और डे, एस0 के, ए हिस्ट्री आँव संस्कृत लिटरेचर, जिल्द - 1, पृ0 240, कलकत्ता, 1962

27- मृच्छकटिक, एक्ट III , निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1963

28- वही

29- कादम्बरी, सेक्शन 64

30- हर्षचरित, अध्याय 4 पृ0 129

31- तिलकमंजरी, पृ0 77, बम्बई, 1924

32- अग्रवाल, वी0 एस0, जर्नल आँव द न्यूमिसमेटिक सोसाइटी आँव इण्डिया, V, ii, पृ0 4

33- वही

34- कादम्बरी, सेक्शन, 64

35- हर्षचरित, अध्याय 4, वही

36- तिलकमंजरी, पृ0 77, वही

37- शास्त्री, ए0 एम0, इण्डिया एज सीन इन द कुट्टनीमत, पृ0 31, दिल्ली 1975

38- कुट्टनीमत, श्लोक 241

39- वही, 241

40- वही, 486

41- वही, 1014

42- कीथ के अनुसार सोमदेव कश्मीरी कविथा जिसने अविस्मरणीय ग्रन्थ 1063 से 1081 ई0 के बीच लेखा (हिस्ट्री आँव संस्कृत लिटरेचर, पृ0 281, वही)

43- कथासरितसागर, 1·2·44 और 61

44- वही

45- डे, नन्दूलाल, द जाग्राफिकल डिक्शनरी आँफ एन्शयन्ट एण्ड मीडिवल इण्डिया, पृ0 95, नई दिल्ली 1971

46- देवीभागवत पुराण, अध्याय 9, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, सं0 1955

47- मालवीय कांमिमोरेशन वाॅल्यूम, पृ0 195

48- सरकार, डी0 सी0, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ0 257, कलकत्ता, 1965

49- राजतरंगिनी, IV 421, दिल्ली, 1960

50- वही

51- वही

52- गरूड़ पुराण, पूर्व खण्ड, अध्याय, 41

53- चटर्जी, ए0 के0, द कल्ट आँव स्कन्द-कार्तिकेय इन एन्शयन्ट इण्डिया, पृ0 50, वही

54- अल्तेकर, ए0 एस0, जी0 सी0 बी0 एम0, पृ0 ci - cii, प्लेट XXVI, 1-13

अध्याय-पाँच

दक्षिण भारतीय साहित्य में कार्त्तिकेय

दक्षिण भारत के प्रमुख देवताओं में कार्त्तिकेय का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । वस्तुत: हिन्दू देवताओं में कार्त्तिकेय, जिसका संकेत कुरूक्कल करते हैं के दक्षिण भारत में सम्भवत: सबसे अधिक भक्त रहे हैं ।[1] इसी तरह भण्डारकर[2] का यह मन्तव्य कि कार्त्तिकेय जिसकी प्राचीन भारत में विस्तृत क्षेत्र में पूजा होती थी वरन्तु अब दुर्लभ है समीचीन नहीं लगता है ।

प्राचीन तमिल साहित्य में इस देवता से सम्बन्धित प्रचुर सूचनाएं हैं । तमिल ग्रन्थों में कार्त्तिकेय को 'मुरूगन' कहा गया है । जिसका अर्थ है मुरूग अर्थात सुन्दरता का स्वामी । सुन्दरता का अवतार होने के कारण मुरूगन को हमेशा इस क्षेत्र में तुलना का मानक माना गया है । उसकी यह उपाधि उसके संस्कृत नाम 'कुमार' के समकक्ष है, जिसका अर्थ युवा और सुन्दर है ।

दक्षिण भारत में कार्त्तिकेय, मुरूगन के नाम के साथ ही साथ सुब्रह्मण्य नाम से भी विख्यात है । दक्षिण भारत में, इस देवता के इस नाम का प्राचीनतम उल्लेख एक मन्दिर में उत्कीर्ण अभिलेख में मिलता है जो नेल्लोर जिले के मल्लाम से प्राप्त हुआ है तथा नन्दिवर्मा[3] के काल का है । यह उल्लेखनीय है कि सुब्रह्मण्य नाम बौधायन धर्मसूत्र[4] जितना प्राचीन है और यह नाम उत्तर भारतीय उत्पत्ति का है ।

संगम कालीन तमिल ग्रन्थ 'मुरूगन' के सन्दर्भों से परिपूर्ण हैं । दुर्भाग्यवश प्रथम संगम काल का कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है । इसी तरह तोल्कप्पियर् कृत तोल्काप्पियम जो तमिल व्याकरण का महान ग्रन्थ है को छोड़कर द्वितीय संगम के भी सभी ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं ।[5] तोल्कप्पियम[6] में, नीले मयूर पर बैठे हुए लाल देवता जो चिर युवा है और जो विजयश्री दिलाने वाला है, की तमिलों के लोकप्रिय देवता के रूप में 'सेयन' ‖ या मुरूगन ‖ की प्रशंसा की गई है । रक्त वर्णीय अस्ताचल का सूर्य अहनागुरू के कवि को उसके दो देवीय योद्धाओं का स्मरण कराते हैं, उनमें से एक 'सेयन' ‖मुरूगन‖ है ।[7]

महत्वपूर्ण कृति 'तिरूमुरूगारूप्पदाई' तृतीय संगम युग की गद्य-पद्य मिश्रित दस कृतियों में से एक है, जो कि स्वामी मुरूगन की प्रशंसा से परिपूर्ण है तथा उनकी पूजा के विभिन्न धार्मिक स्थलों का वर्णन है यह कृति तीन सौ सत्तरह पंक्तियों में वर्णित लम्बी कविता है जो नक्कीरार द्वारा रचित है। नक्कीरार स्वामी मुरूगन के अनन्य भक्त थे और मुरूगन सम्प्रदाय के अनुयायी थे।[8]

नक्कीरार रचित 'तिरूमुरूगारूप्पदाई'[9] तत्कालीन परिस्थितियों पर आधारित एक रोचक कथा है। वंक्या सुदामणि पाण्ड्य ने उस समय के उच्च साहित्यिक गुणों से युक्त रचनाकारों को स्वर्ण उपहार देने का प्रस्ताव किया था। एक सामान्य कवि धर्मी ने इस देवता की प्रार्थना में लिखी कविता को प्रस्तुत किया जिस पर उसे मन वांछित पुरस्कार प्राप्त हुआ। नक्कीरार से उस कविता में कुछ त्रुटियां (गलतियाँ) हो गई थीं किन्तु परमात्मा शिव ने स्वयं नक्कीरार पर कृपा-दृष्टि की जिससे नक्कीरार ने उन त्रुटियों को ठीक किया। अतएव इसके परिणाम स्वरूप उनको घमण्ड हो गया। इस असाध्य रोग (घमण्ड) से छुटकारा पाने के लिए, दुर्गम रास्ते से होते हुए वे कैलाश पर्वत की ओर चल पड़े। मार्ग में नक्कीरार एक राक्षस द्वारा पकड़ लिये गए। एक यज्ञ का आयोजन किया जा रहा था जिसमें एक हजार व्यक्तियों की आवश्यकता थी। नौ सौ निन्यानवे उस राक्षस को प्राप्त थे। नक्कीरार को मिलाकर व्यक्तियों की संख्या पूरी हो गई। यह घटना उस समय हुई जब नक्कीरार ने एक साहित्यिक कविता की रचना की और अपने आप को तथा अपने साथियों की हत्या को बचाने के लिए स्वामी मुरूगन की प्रशंसा में गाने लगे। कविता समाप्त होते ही स्वामी मुरूगन प्रकट हुए और अपनी शक्तिशाली बर्छी से उस राक्षस को मार डाला तथा हजारों व्यक्तियों की जान बचा ली।[10] यह घटना तिरूप्परंकुरम की चोटी पर स्थित कन्दरा में हुई।[11]

नक्कीरार रचित तिरूमुरूगाप्पदाई दक्षिण भारत में अत्यन्त लोकप्रिय है । नक्कीरार ने मुरूगन के सम्मान में गेय कविता लिखी । मुरूगन के अनुयायी प्रतिदिन इसका गायन करते हैं । पत्तुपादटू में (प्रथम गद्य-पद्य मिश्रित) इसे बहुत सम्मान मिला । महत्वपूर्ण बात यह है कि पवित्र शैव ग्रन्थों में यह सम्मिलित कर लिया गया तथा इसे ग्यारहवां पवित्र शैव ग्रन्थ माना जाने लगा ।

तिरूमुरूगाप्पदाई की प्रारम्भिक पंक्तियों में मुरूगन की विजयों का वर्णन किया गया है । कविता में इस देवता की प्रभुता का वर्णन है । वह असुरों का नाश करता है । इस कृति में नक्कीरार ने पवित्र मुरूगन स्वामी के पवित्र मार्गों एवं स्थानों का वर्णन किया है । वह मुख्य रूप से उनके निवास के रूप में देवालय का वर्णन करता है । स्वामी मुरूगन छः पवित्र स्थानों से सम्बन्ध रखते हैं, तिरूप्परंकुरम, तिरूचीरलवई, तिरूवविनन्कुदी, तिरूवेरकम, कुन्स्थोरडल और पालमुथिदशोलई ।[12] ये छः स्थान पहाड़ियों की चोटी पर है । इस कृति के अनुसार ये छः स्थान मुरूगन स्वामी की शक्तियों के केन्द्र हैं और असुरों के विरूद्ध वे अपने अस्त्रों का प्रयोग यहीं से करते हैं । शत्रु पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् स्वामी (मुरूगन) अपने निवास स्थान पर वापस आ जाते हैं तथा अपनी विजय के उपलक्ष में उत्सव का आयोजन करते हैं ।

पवित्र स्थान 'तिरूप्परंकुरम्' मुरूगन का निवास स्थान है, जो मदुरै से 10 किमी दक्षिण-पश्चिम में स्थित है तथा जो कभी पाण्ड्य शासकों की राजधानी भी थी । कवि वर्णन करते हुए कहता है कि असुरों पर विजयोपरान्त अपनी सर्वोत्तम चोटी पर चढ़ जाते हैं[13] और उपयुक्त स्थान पर आरूढ़ हो जाते हैं । स्वामी तिरूप्परंकुरम् नामक स्थान पर रहते हुए इन्द्र की पुत्री देवयानी[14] से शादी करते हैं । इन सभी वर्णनों में देवयानी का पत्नी के रूप में उल्लेख है जो उनकी स्वाभाविक उर्जा है तथा क्रिया शक्ति के रूप में जानी जाती है ।

पर्वत के उत्तरी तरफ मुरूगन का मन्दिर है । यह मयूर का हाल सोलह बड़े खम्भों पर आधारित है तथा चारों ओर पचास खम्भे हैं और वे सभी अच्छी तरह से सजाये गए हैं और मुरूगन के उपाख्यानों में वर्णित हैं । गोपुरम् लगभग 45 मीटर ऊँचाई और अन्दर कल्याण मण्डप मन्दिर है जो कुण्ड द्वारा घिरा है । गर्भ गृह पवित्र चट्टानों से घिरा हुआ है तथा अन्दर स्वामी मुरूगन के साथ दुर्गा, विष्णु प्रभृति देवी-देवताओं को भी देखा जा सकता है । मुरूगन मन्दिर के सम्बन्ध में मदुरै जिले से प्राप्त गजेटियर के अनुसार "अन्दर का भाग पवित्र ठोस चट्टानों से काटा गया है । सामने की ओर श्रेणी रूप में मण्डप विभिन्न श्रेणियों में है जो एक दूसरे से नीचे है । सबसे छोटा या इनमें से कोई भी वर्गीकरण का सर्वोत्तम उदाहरण है । इसकी छतें बड़े चट्टानों पर टिकी हैं और 15 मीटर लम्बे एकाश्म खम्भों द्वारा सज्जित है ।[15]

मुरूगन का दूसरा निवास 'तिरूचिरलवई' भी महत्वपूर्ण किलों द्वारा सज्जित है, जहाँ उन्होंने असुरो के विनाश हेतु अन्तिम साहिसिक यात्रा की थी । तिरूचिरलवई का समीकरण तिरूचेन्दुर से किया जाता है जो कि तिरूनेल्वेलि ज़िले में स्थित है, जो कि 56 किमी तिरूनेलवेलि नगर से है और 29 किमी द0 पू0 श्रीवईकुन्थम' से है ।

स्वामी मुरूगन 'तिरूचिरलवई'[16], अपनी सेना के साथ आया तो नगर को अत्यन्त छोटा पाया तब उसने विश्वकर्मा से जो स्वामी के शिल्पकर्त्ता थे, को लम्बा और सही करने को कहा । तब से यह नगर तिरूच्चेन्दिल जयन्थीपुरम या श्रीसन्धीनगर के रूप में जाना गया । अर्द्ध-ईश्वर के रूप में मुरूगन दुर्गम रास्ते पर पूजा हेतु स्थान चहता था । तिरूच्चेन्दिल उन सभी अर्हताओं को पूरा करता था जो मुरूगन आवश्यक समझता था । मुरूगन की पूजा हुई तिरूचेन्दर का मन्दिर मदुरै के पाण्ड्य वंश की पाँचवी पीदी के उग्र पाण्ड्य ने बनवाया था । मन्दिर

का आन्तिरिक भाग (गर्भ गृह) में बाल सुब्रह्मण्यम् की मूर्ति है जिसक एक सिर चार भुजा और उनमें से आभा प्रकट होती है ।[17] मन्दिर का पूर्वी भाग मुरूगन के छः चेहरों को प्रकट करता है । उसके 12 हाथ हैं तथा हाथी पर सवार है, जैसा कि नक्कीरार की कविता में वर्णित है ।[18] ऐसा कहा जाता है कि आदि श्री शंकराचार्य ने नैतिक शुद्धि के लिए मुरूगन के पवित्र निवास तिरूचेन्दर में प्रसिद्ध 'सुब्रह्मण्य भुजंगम' गीत गाया है जो ईश्वर की प्रार्थना के रूप में एक आदर्श है ।[19]

तिरूवविनन्कुदि स्वामी मुरूगन का तीसरा महत्वपूर्ण स्थान है, जैसा कि नक्कीरार ने वर्णन किया है तिरूवविनन्कुदि का पवित्र ईश्वर के पलनि पहाड़ी से समीकरण किया जाता है जो मद्रास-रामेश्वरम सेक्सन पर स्थित डिंडीगुल, दक्षिण रेलवे स्टेशन से 60 किमी की दूरी पर स्थित है । दक्षिण भारत में मुरूगन के महत्वपूर्ण तीर्थों में पलनि का महत्वपूर्ण स्थान है । इसके विषय में एक अत्यन्त रूचिकर कहानी मिलती है कि पर्वत के मध्य भाग पर तिरूवविनन्कुदि पवित्र मुरूगन से सम्बन्धित है ।[20] ऋषि अगस्त्य एक बार शिव की अनुमति से दो छोटी पहाड़ियाँ लाए, जिनका नाम शिव और शक्ति था, दक्षिण में ईश्वर की पूजा के लिए प्रयास किया और इस स्थान को ईश्वर द्वारा प्रदत्त बतलाया । मुनि ने छोटी पहाड़ी और कुछ जंगलों को पार किया तथा दक्षिण वापस लौट गए । उन्होंने अपने शिष्य को आदेश दिया कि एक महान् राक्षस जिसका नाम इदुम्बरा था, जिसने कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न की । वह अपने सैनिकों के साथ उस छोटी पहाड़ी कावडि पर पहुँच जाए ।[21] किन्तु अपने दक्षिण रास्ते पर पलनि जंगल के पास ठहरे, जिसे छोटी पहाड़ी के रूप में जाना जाता है । इस प्रकार, वह छोटी पहाड़ी पर चढ़ा और उसे एक जमीन के रूप में पाया । उन्होंने प्रत्येक जवान से अपने हाथ में एक छड़ी लेने तथा चड्ढी (जाँघिया) पहनने को कहा ।' जवान कोई और नहीं स्वयं स्वामी मुरूगन थे । बाद में,

दोनों में युद्ध हुआ तथा राक्षस युद्ध से विक्षिप्त हो गया । राक्षस अपने पूर्ववत् स्थान पर भाग आया । उसकी पत्नी एवं उसकी स्वयं की प्रार्थना पर उसे द्वार पर द्वार - रक्षक के रूप में रख दिया गया । तभी से वह स्थान स्वामी मुरूगन के कारण पवित्र हो गया । राक्षस की प्रार्थना पर मुरूगन का मन्दिर कावडि लाया गया । इस प्रकार, दक्षिण भारत में कावडि, विशेष तौर से मुरूगन की पूजा के लिए विशेष महत्वपूर्ण है ।

नक्कीरार द्वारा रचित तिरूमुरूगारूप्पवई तिरूवरेकम का स्वामी के चौथे पड़ाव के रूप में वर्णन मिलता है । इस स्थान पर ईश्वर ने कुमार गुरू की राह देखने को कहा । गुरू दो अन्दनार के रूप में अपने छः अक्षरों को पूजनीय बनाया - स र व ण भ व ।

तिरूवेरकम का समीकरण कुम्भकोणम से किया जाता है जो मद्रास - रामेश्वरम् के दक्षिण रेलवे सेक्शन के तंजावुर (तंजौर) से 38 किमी दूर है ।

संत नक्कीरार ने कुन्रूथरेदल का उल्लेख मुरूगन के पाँचवें प्रिय व्यक्ति के रूप में किया है जो उनके साथ क्रीडा में पहाड़ पर रहते थे - "जब पहाड़ी जातियाँ सुरापान कर नृत्य करती हैं, शेयान् बालिकाओं के साथ पर्वतों के किनारे नृत्य की स्थायी आदत है ।"[22] उनकी उपासना के लिए मन्दिरों का निर्माण पर्वतीय शिखरों पर किया गया जिससे युद्ध देवता का रूप प्रदर्शित हो सके ।

नक्कीरार ने तिरूमुरूगारप्पदई में पहमुर्थिशोलई के छठें एवं अन्तिम मुरूगन देव के रूप में वर्णन किया है । पहमुर्थिशोलई देव मन्दिर के रूप में माना जाता है । वह तिरूमालिरनचोलई के साथ जाना जाता है जो वर्तमान मदुरा के निकट वर्तमान अलागारमलई में है । यह स्थान तिरूमल के ऊपर प्रतीत होता है जिसे पर वैष्णव भक्तों की अधिक आस्था है । विष्णु भक्तों को तिरूमालिरंकुरम्

या तिरूमलिरनचोलई नाम अधिक प्रिय है । मुरूगन उपासकों द्वारा शोलिमलई या मुथिशोलई नाम की उपासना की जाती है ।

अपने सुन्दर काव्य में नक्कीरार ने मुरूगन की उपासना की विभिन्न विधियों का उल्लेख किया है ।[23] उनके अनुसार भक्तगण वादन और नृत्य करते हुए खुले मैदान या झरने के निकट एकत्र होते हैं तथा पूजन-अर्चना करते हैं । योद्धा झण्डों एवं बल्लमों से आदिवासी नशीले पेय और नृत्य, जबकि भक्तगण शान्ति से उपासना करते हुए उन्हें सर्वश्रेष्ठ देव, मानव के सर्व सौभाग्यदाता सुब्रह्मण्य[24] के रूप में उपासना करते हैं । नक्कीरार ने अपनी कविता में पर्वतीय जातियों द्वारा देव उपासना की जो पद्धति अपनायी जाती थी उसकी रूप रेखा प्रस्तुत किया । मुरूगन नृत्य जिसे 'वेरियादल' के नाम से जाना जाता है, पर्वतों और जंगलों में आयोजित होता था ।[25] स्त्री और पुरूष सम्मिलित रूप से पहाड की चोटियों पर एकत्र हो कर, हिरण की बाल की बनी ढोल के वादन के मध्य नाचते थे । नृत्य करने वाले लोग पुरानी शहद का पान करके नशे में हो जाते थे और पहाड़ी क्षेत्र नृत्य एवं गान के स्वरों से गूंज उठता था । प्रमुख भक्तगण लाल वस्त्र, लाल खड़ाऊं और लाल माला पहन कर हाथों में फरसा लिए हुए, समूहों में नृत्य करते थे । पहाड़ी महिलाएं भी बलि वस्त्र से सुसज्जित नृत्य समूहों का साथ देतीं । वे सरसों का तेल देवता को अर्पित करते और उनके साथ मदार के लाल फूल, हरी पत्तियों की राख, चावल, जिसमें बकरी का खून मिला होता के गोले बनाकर अर्पित करते थे और सुन्दर गीत गाते थे ।[26]

आदिवासियों द्वारा मुरूगन देव की उपासना का विस्तृत विवरण पत्तुपाटट,[27] में सविस्तार मिलता है जिसके अनुसार एक झोपड़ी तैयार की जाती थी और उसे मालों एवं फूलों से सजाया जाता था । इसके ऊपर मुरूगन ध्वज फहराया जाता था जिससे कि जंगली जीव भाग जायें । जैसा कि समीक्षकों

ने सुझाव दिया है, ऐसा इसलिए किया जाता था जिसे कि रक्त के प्यासे असुरगण हट जायें। मुरुगन का पुजारी घन्टा और बल्लम एवं लाल वस्त्र धारण करता है, इसलिए उसे 'वेलन' भी कहा जाता है जो कि देव नाम है। वह अपनी कमर में एक लाल धागा का परिधान धारण करता है जो देवमूर्ति का प्रतीक बतलाया जाता है। वह देव मूर्ति की उपासना करता है, गुनगुनाहट फैलती है, फूल तथा लावा बिखर जाता है। तदुपरान्त वह एक मोटे बैल की बलि करता है उसके गर्म खून में पका हुआ चावल मिलाकर देवता को अर्पित करता है। शंख, घन्टे और ढोल बजते हैं तथा चारों ओर गुलाल एवं फूल बिखर जाते हैं। यह पद्धति उन्हीं की है जिनका नाम 'वेरि-आडु' है। 'वेलन और स्त्रियां, जो उपस्थित होती हैं, सहायक रूप में नृत्य करती हैं, उन्हीं में से कोई व्यक्ति सामान्यतया 'वेलन' देव की छाया से आविष्ट हो जाता है, कुदता है और खड़े हुए व्यक्तियों को सौभाग्य प्रदान करता है

प्राचीन काल में, दक्षिणी भारत में मुरुगन की बलि काफी प्रचलित थी, यहां तक कि सभी प्रकार की बलि 'मुरुगन' नाम से अर्पित की जाती थी। आज का 'आसुरी नृत्य' जो ग्रामीण अंचलों में है वह प्राचीन काल के 'वेदी-आडु' की पुन - रावृत्ति मात्र है।[28]

पोप ने मुरुगन को आसुरी गान की संज्ञा दी है।[29] 'पुर पारेल वेम्ब मानई' को कोररवई के पुत्र के रूप में निरूपित किया गया है जो दक्षिण के प्राचीन लोगों की उपासना के विन्दु थे।[30] पोप ने आगे कहा है कि विभिन्न नामों से आसुरी मन्दिरों में उनकी उपासना अब भी होती है। ये मन्दिर दक्षिण भारत के गावों में अब भी पाए जाते हैं।[31] तिरुमुरुगरूप्पदई में भी एक स्थान पर मुरुगन को कोरवई के पुत्र के रूप में कहा गया है। पी० टी० एस० आयंगर के अनुसार मुरुगन प्रेम का एक रूप था।[32] उनके अनुसार लड़कियों में प्रेम की भावना मुरुगन की कृपा से होती है।

सुब्रह्मण्य से मुरूगन का समीकरण नक्कीरार के समय में स्थापित हो गया था । तिरूमुरूगारूप्पदई उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि हिमवान् की पुत्री से अग्नि द्वारा उनकी उत्पत्ति हुई थी और छ: कृत्तिका देवियों द्वारा हिमालय की झील में उनका पालन किया गया था । यहाँ आर्यों के स्कन्द का मुरूगन से समीकरण पूर्ण होता है । मुरूगन की छ: मुद्राओं को निरूपित करने में कवि ने प्रत्येक को रहस्यमयी महत्व प्रदान किया है । "एक अन्धकार को हटा कर संसार को प्रकाश में लाता है दूसरा भक्तों को वरदान देता है, तीसरा यज्ञों की रक्षा करता है, चौथा ज्ञानोपदेश देता है, पाँचवा दुष्टों का संहार करता है; और छठाँ, वल्लि के, जो पहाड़ी क्षेत्र से उनकी पत्नी है, चेहरे पर प्रेम भाव उत्पन्न करता है ।[33]

परिपादल, जो संकलित गीतों का पाँचवा भाग है और जिसे 'इत्तुतथोगई' कहते हैं, में आठ भाग हैं अनेक कविताएं हैं । ये सभी मुरूगन को समर्पित हैं । इस कविता समूह का रचना काल तीसरा संगम काल है । विभिन्न कवियों द्वारा लिखित कविताओं से जो विभिन्न कालों में गायी गई हैं, उनके देव-प्रेम का पता चलता है । इससे तत्कालीन लोकप्रिय उपासना पद्धति का पता चलता है ।[34] मन्दिरों के विवरण, त्यौहार, उपासना के गीतों से मुरूगन देव का स्पष्ट रूप प्रकट होता है । इससे उनके दैवी जन्म, गौरव पूर्ण कृत्य, अस्त्र प्रेम-कथाएं और शक्तियाँ प्रकट होती हैं जिससे वे तमिलों के संरक्षक देव शेव्वल' के रूप में प्रकट होते हैं और 'कुरव लड़की, वल्लि को पत्नी के रूप में ले जाते हैं । दे देवराज इन्द्र की पुत्री देवयानी के पति के रूप में भी जाने जाते हैं ।

परिपादक में भी तमिलनाडु के तिरूप्परंकुरम् में स्वामी मुरूगन के प्रसिद्ध मन्दिर का उल्लेख है । तिरूप्परंकुरम् का मन्दिर मदुरा के पश्चिम में

है, जो पाण्ड्य नरेशों की राजधानी थी । [35] यह मुरुगन के निवास के रूप में प्रसिद्ध है क्योंकि यहीं पर असुरों पर विजय के उपलक्ष में देवयानी से दाम्पत्य - सूत्र में बंधे थे । मुरुगन प्रेमी युगलों के भी देवता माने जाते हैं । यही कारण है कि इस मन्दिर के प्रति नवयुवक नवयुवतियों का आकर्षण था । उन्हें विश्वास था कि उनकी आराधना से प्रेम की विजय होती है । यह मन्दिर प्रेमी-युगलों की लड़ाई झगड़े और प्रसन्नता की अभिव्यक्ति के आचरणों के शोर गुल से पूर्ण रहता था । इसके अतिरिक्त यह मन्दिर अनाज के खेतों के मध्य स्थित या जहाँ कटाई के समय ढोल की आवाज होती रहती थी ।[36] मुरुगन मन्दिर पुत्रियों के देवता का होने के कारण यह पहाड़ी क्षेत्र, पुष्प-वाटिकाओं का केन्द्र था । परिपादल में उसका भौगोलिक चित्रण मिलता है ।[37]

परिपादल में, उपासक मुरुगन की सभी छः मुद्राओं (मुखों) की अर्चना करते थे जिससे वह अपनी कृपा से उन्हें अच्छे कार्य और प्रेम की ओर उत्प्रेरित कर सके । इस पर्वतीय मन्दिर पर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं और ऊपर राजमहल निर्मित है । मुरुगन देव सर्वशक्तिमान माने जाते हैं और उनमें सभी देवों की शक्तियाँ विद्यमान कही जाती हैं ।[38]

दक्षिणी भारत में मुरुगन की लोकप्रियता की जानकारी जीवकाचिन्तामणि और शिलप्पदिकारम् जैसे काव्यों से भी मिलती है । जैन तीर्थंकर और कवि, जीवकचिन्तामणि, जिन्होंने जीवक की कहानी की रचना की है में स्वामी मुरुगन के अनेक वर्णन आए हैं ।[39] जैन लेखक की लेखनी से यह उल्लेख उसका हिन्दू धर्म के प्रति सहिष्णुता प्रकट करता है । इससे मुरुगन की सार्वभौमिकता प्रकट होती है ।

जीवकचिन्तामणि में जहाँ जीवक की शक्ति एवं वीरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख मिलता है वहीं उनकी तुलना मुरुगन से की गई है । उन्होंने क्रौंच पर्वत को अपना स्थल चुना था ।[40] मुरुगन के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वह पुष्प पर

उत्पन्न हुए थे और जीवक के शुभ जन्म के रूप में तुलना की जाती है । यहाँ पर भी पर्वतीय कन्या वल्लि से मुरुगन के विवाह का उल्लेख है । यह उल्लेख इस प्रसंग में आया है कि जीवक गोविन्दई से विवाह के लिए प्रेरित किया गया है, जो उनके विवाह के योग्य थी । एक मनोहारी घटना का उल्लेख मिलता है । एक अत्यन्त सुन्दरी पदुमई, एक नाग के द्वारा मूर्छित कर दी गई । जीवक ने उसे मृत्यु से बचाया । दोनों की निगाहें मिली और वे प्रेम सूत्र में बँध गए । उनकी निगाहें उसी प्रकार प्रेम विह्वल हो गईं, जैसे मुरुगन की वल्लि के साथ ।[41]

शिलप्पदिकारम् जो तीसरे संगम काल से सम्बन्धित है, में मुरुगन की उपासना का कई रूपों में उल्लेख मिलता है । विचारशील लोगों द्वारा, सभी वर्गों के लोगों को मुरुगन की ईश्वर रूप में पूजा करने के लिए प्रेरित किया गया है । लेखक इलंगो इस कार्य में विश्वास नहीं करता था और हिन्दू भी नहीं । इस सन्दर्भ में यह भी उल्लिखित है कि छः मुद्रा (मुखों) वाले मुरुगन का मन्दिर और उनके वेल (बर्छी) का निर्माण, उपासकों ने करवाया था ।[42] जबकि दूसरे मन्दिरों में वेल्कोट्टम भी है, पूजा हेतु उनके एक हथियार 'वेल' (बर्छी) का निर्माण किया गया था । स्वामी मुरुगन का अस्त्र (बर्छी या वेल) को मन्दिर की ऊँचाई पर रखा गया था जिसकी पूजा लोगों द्वारा की जाती थी ।[43] इस काव्य में कोवलन और कन्नगी की कहानी का जीवन्त वर्णन है । यह कथानक एक लोकप्रिय कहानी पर आधारित है ।

कथानक के अनुसार[44] कोवलन वेश्या माधवी पर मोहित हो जाता है तथा अपनी प्रिय पत्नी कन्नगी को भूल जाता है । बाद में, अपनी भूल का अहसास करके पश्चाताप करता है और अपनी पत्नी के पास वापस आ जाता है । दोनों पुहार छोड़ कर मदुरा आ जाते हैं । एक पाण्ड्य शासक

के आदेश से कोवलन को उसकी छोटी सी गलती के लिए मृत्यु दण्ड दे दिया जाता है । इस घटना के पश्चात् से कन्नगी देवदूत के रूप में जानी जाने लगी । कोवलन और कन्नगी (प्रेमी-प्रेमिका) अन्त में स्वर्ग में पुन: मिलते हैं । इस काव्य में कोवलन को सुन्दर शरीरधारी के रूप में वर्णित किया गया है ।

जिस प्रकार तिरुमुरुगारूप्पदई[45] में मुरुगन के आकर्षक व्यक्तित्व का रूप मिलता है, उसी प्रकार इलंगो ने शिलप्पदिकारम् में किया है । पुनश्च, प्रेमी अक्सर गले में कदम्ब के फूलों की माला धारण किए हुए और बर्छा (वेल) को झुलाते हुए मरुगन के वेश में स्वयं प्रेमिका से मिला करता था । यह स्पष्ट है कि उस गाँव के लोगों ने मुरुगन के छ: मुखों एवं बारह भुजाओं को पहचाना था जो चोटी पर आरूढ़ थे और वल्लि पत्नी के साथ थे ।[46] यह भी सुझाव दिया जाता है कि सुसभ्य लोगों द्वारा मुरुगन की पूजा की जाती थी जिसके एक मुख और दो भुजाएँ थीं ।[47]

संदर्भ-ग्रन्थ

1- यूनिवर्सिटी आॅव सिलोन रिव्यू, भाग XIX संख्या 2 {अक्टूबर 1961} पृ0 135 {कैलासनाथ कुरुक्कल द्वारा 'ए स्टडी आॅव द कार्तिकेय कल्ट एज रिफ्लेक्टेड इन द इपिक्स एण्ड द पुरानस}

2- भण्डारकर, आर0 जी0, वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलिजिअस ऐक्ट्स, पृ0 150 ।

3- नेल्लोर इन्सक्रिप्शन्स, पृ0 429•30

4- बोधायन धर्मशास्त्र, II. 5•98

5- मजूमदार, आर0 सी0, द एज आॅवइम्पीरियल यूनिटी, पृ0 292 - 93

6- नवरत्नम्, आर0, कार्तिकेय द डिवाइन चाइल्ड, पृ0 111

7- अहनानुरू, 360• 6-9; 158• 16-17

8- मजूमदार, आर0 सी0, द एज आॅव इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 292-93

9- चटर्जी, ए0 के0, द कल्ट आॅव स्कन्द - कार्तिकेय, पृ0 60

10- नवरत्नम्, आर0, कार्त्तिकेय द डिवाइन चाइल्ड, पृ0 9

11- वही

12- चटर्जी, ए0 के0, द कल्ट आॅव स्कन्द कार्तिकेय, पृ0 60

13- नवरत्नम, आर0 वही0 पृ0 19

14- वही

15- मदुरा डिस्ट्रिक गजेटियर, भाग, 1, पृ0 280-81

16- अय्यर, नी0वी0जे0, साउथ इण्डियन श्राइन्स, पृ0 214 - 15

17- वही

18- तिरुमुरुगरुप्पदाई, 11•89-118

19- नवरत्नम्0 आर0, वही, पृ0 52

20- अय्यर, पी0 वी0 जे0, साउथ इण्डियन श्राइन्स, पृ0 156

21- यह तमिल के 'कवु' से निकला है ।

22- तिरुमुरुगरुप्पदाई, 11• 215-17

23- वही

24- नवरत्नम्, आर0, वही, पृ0 18

25- तिरुमुरुगरुप्पदाई, 11• 190-217

26- कल्चरल हेरिटज ऑव इण्डिया, भाग - IV, पृ0 309 - 310

27- पत्तुपाट्टु, 1; 220-49

28- ज ड• प्रकाशर, सिद्धान्त शविज्म, पृ0 118

29- तमिलियन ऐन्टीक्वेरी, 1910, पृ0 17 - 19

30- वही

31- वही

32- आयंगर, पी0टी0एस0, हिस्ट्री ऑव द तमिल्स, पृ0 76

33- कल्चरल हेरिटेज ऑव इण्डिया, भाग IV, पृ0 310

34- नवरत्नम, आर0, वही, पृ0 134

35- परिपादल, 18, 30-35

36- मुद्रिकांची, 262-66 ; परिपादल, 8.29-35

37- परिपादल, 19, 48-57

38- वही, गीत 18

39- नवरत्नम्, आर0, वही, पृ0 149 - 50

40- वही

41- वही, पृ0 150

42- शिलप्पदिकारम्, 5 - 170

43- वही,

44- मजूमदार, आर0 सी0 , द एज आॅव इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 301-02

45- तिरुमुरुगारुप्पदाई 265

46- नवरत्नम् आर0 वही, पृ0 151

47- वही,

अध्याय - छः

पुरातात्त्विक स्रोतों में कार्त्तिकेय

(क) अभिलेखों में कार्त्तिकेय

(ख) मूर्तियों में कार्त्तिकेय

(ग) मुद्राओं एवं मुहरों में कार्त्तिकेय

अध्याय - छ :

(क) अभिलेखों में कार्त्तिकेय

प्राचीन भारतीय इतिहास की पुनर्संरचना करने वाले प्रमुख पुरातात्विक स्रोतों में अभिलेखों का महत्वपूर्ण स्थान है । अभिलेखों के माध्यम से, कार्त्तिकेय के सन्दर्भ में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है । अभिलेखों के अध्ययन से यह पता चलता है कि प्राचीन भारत में, इस देवता की उपासना के लिए मन्दिरों का निर्माण किया जाता था ।

कुछ दशक पूर्व एक प्रस्तर अभिलेख, मध्य प्रदेश के शक्ति रेलवे स्टेशन के उत्तर-पश्चिम में 23 किमी की दूरी पर स्थित गुन्जी नामक स्थान पर प्राप्त हुआ था । इसअभिलेख में एक कुमार वीरदत्त का सन्दर्भ आता है जिसका अर्थ कुमारवीर से है, जो कार्त्तिकेय के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है ।[2] इस सन्दर्भ में डी० सी० सरकार का कहना है कि उसकी कल्पना एक वीर, {श्रेष्ठ के समतुल्य} की तरह की गयी है जो कि महाभारत[3] में उद्धृत तथ्यों से भी स्पष्ट है कि देवताओं की सूची में 'शूर' और 'सुवीर' दोनों ही 'वीर' का अर्थ रखते हैं ।[4] वह पुनः कहते हैं कि कुमारवीरदत्त, नाम आन्ध्र प्रदेश की निचली कृष्णा घाटी में स्थित गुन्टूर के शासक, इक्ष्वाकु नरेश वीरपुरुषदत्त की याद दिलाता है ।[5] डी० आर० भण्डारकर[6] और वी० वी० मिराशी[7] ने अभिलेख को प्रथम शताब्द ईसवी में रखा है जबकि डी० सी० सरकार[8] ने इसकी तिथि द्वितीय शताब्दी ईसवी स्वीकार की है ।

सम्भवतः सबसे प्राचीन अभिलेख जिसमें कार्त्तिकेय के मन्दिर का उल्लेख है, हजारा जिले {जो कि इस समय पाकिस्तान में है} के अब्बोत्तबाद नामक स्थान से प्राप्त हुआ है ।[9] अभिलेख के अनुसार कार्त्तिकेय के मन्दिर का निर्माण {कारितो-यमं कुमारस्थानम्[10]} गशूर वंश के सदस्य तथा मक के पुत्र गशूर शाफर, ने कराया था[11], जो कि एक विदेशी था । डी० सी० सरकार के अनुसार शाफर नाम सुप्रसिद्ध पह्लव नाम शाहपुर {शापुर} नाम ससैनियन

शासक का स्मरण दिलाता है । उल्लेखनीय है कि सौनियन वंश में इस नाम के तीन हुए जिन्होंने क्रमशः 241-72, 310-70 और 383-88 ई0 के बीच में शासन किया था[12] । अभिलेख की तिथि, महाराज कदम्बेश्वदास के 25 वें वर्ष में पड़ती है ।[13] डी0 सी0 सरकार का सुझाव है कि यह संभवतः हजारा क्षेत्र का स्वतन्त्र या अर्द्ध-स्वतन्त्र शासक था ।[14] पुरालिपिगत साक्ष्यों के आधार पर सरकार महोदय ने इस अभिलेख को तृतीय शताब्दी ईसवी में रखा है ।[15] अभिलेख से यह भी इंगित होता है कि विदेशी शासकों में कार्त्तिकेय विशेष लोकप्रिय थे, इस तथ्य की पुष्टि हुविष्क के सिक्कों पर स्कन्द-कुमार, विशाख और महासेन के रूपों से होती है ।[16] यह आश्चर्य की बात नहीं है कि विदेशी शासक भी ब्राह्मण धर्म में आस्था रखते थे, क्योंकि बेसनगर स्तम्भ लेख से पता चलता है कि पहली शताब्दी ई0 पू0 में हेलियोडोरस ने, जो कि तक्षशिला के इण्डो - ग्रीक राजा का ग्रीक राजदूत था, भागवत धर्म को स्वीकार करके 'भागवत' उपाधि धारण की थी।[17] विदेशियों का कार्त्तिकेय के प्रति झुकाव स्वाभाविक ही था, क्योंकि वे युद्ध के देवता थे । विदेशी भारत में आक्रान्ता के रूप में आये थे और अपनी सैनिक सफलता के लिए इस देवता की उपासना करते थे ।

मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में स्थित साँची के समीप कनखेरा से प्राप्त एक प्रस्तर अभिलेख स्वामी कार्त्तिकेय के विदेशियों के साथ सम्बन्ध को प्रमाणित करता है ।[18] अभिलेख की पंक्तियाँ स्वामी कार्त्तिकेय की प्रशंसा से प्रारम्भ होती है ।[19] सिद्धि का स्वामी, महान् कुमार, दैवीय स्वामी, महासेन (कार्त्तिकेय), जो देवताओं की सेना का प्रमुख है, जिसकी सेना अपराजेय है और जो अपनी दिव्य शक्ति से विजय प्राप्त करता है । आर0 डी0 बनर्जी, जिन्होंने इस अभिलेख का सर्वप्रथम प्रकाशन किया, का विचार है कि यह अभिलेख

शक क्षत्रप स्वामी जीवदामन् से सम्बन्धित है ।[20] एन0 जी0 मजूमदार का मत, बनर्जी महोदय के मत से भिन्न है । मजूमदार का सुझाव है कि यह अभिलेख वास्तव में महादण्डनायक शक श्रीधरवर्मन के काल से सम्बन्धित है जो कि शक नन्द का पुत्र था तथा उसके शासन के 13वें वर्ष में जारी किया गया था, जिसकी तिथि शक संवत 201 ‌(279 ईसवी) है । [21] डी0 सी0 सरकार के अनुसार श्रीधरवर्मन मालवा के शक घराने में संभवत: अधिकारी था, और बाद में अपने को स्वतन्त्र शासक मानने लगा ।[22] अभिलेख से स्पष्टत: यह इंगित होता है कि तृतीय शताब्दी ईसवी में इस देवता (कार्त्तिकेय) को शक शासकों के बीच उच्चतम सम्मान प्राप्त था । अभिलेख की प्रथम पंक्ति में शकों को स्वामी महासेन (कार्त्तिकेय) का उपासक बतलाया गया है जो कि देव सेना का प्रमुख है । शक, पह्लव तथा कुषाणों की भाँति एक आक्रान्ता के रूप में भारत में बाहर से आये थे । इस सन्दर्भ में एस0 चट्टोपाध्याय का सुझाव है कि श्रीधरवर्मन के कनखेरा अभिलेख से यह द्योतित होता है कि शक प्रमुख कार्त्तिकेय का भक्त था, जिस समय शक राज्य अपने कठिन दिनों से गुजर रहा था, उसने राजधानी के साँची क्षेत्र में एक पृथक् विभाग की स्थापना की । इससे यह सिद्ध होता है कि अपने दुर्दिनों को दूर करने के लिए वह स्कन्द - कार्त्तिकेय का भक्त हो गया था ।[23] अतएव इससे स्पष्ट है कि कार्त्तिकेय युद्ध - देवता होने के साथ ही साथ कालान्तर में अर्थव्यवस्था के सुधारक के रूप में स्वीकार किये जाने लगे ।

कार्त्तिकेय की एक मूर्ति जो कि कुषाण कालीन कला से सम्बन्धित है, मथुरा के कन्काली टीला से मिली है जिसके आधार पीठिका (शिलालेख) पर तीन पंक्तियाँ हैं ।[24] इन पंक्तियों का अनुवाद कुछ इस प्रकार है: 'ग्यारहवें वर्ष में जाड़े के चौथे माह और पहले दिन विश्विल के पुत्रों, विश्वदेव, विश्वसोमा, विश्वभव तथा विश्ववसु ने कार्त्तिकेय की प्रतिमा की स्थापना अपने घर में ही की'[25]

एम0 एम0 नागर के अनुसार इस लेख की तिथि निश्चित रूप से शक संवत का संकेत करती है जो की 89 ईसवी कही जा सकती है, यह तिथि कुषाण शासक कनिष्क कनिष्क के शासन काल के समकालीन है ।[26] इससे यह पता चलता है कि कार्त्तिकेय की उपासना उस समय की जाती थी ।

गुप्त नरेश मुख्यत: वैष्णव धर्म के अनुयायी थे और परम भागवत उपाधि धारण करते थे । साक्ष्यों से यह प्रतीत होता है कि क्रम से कम कुमारगुप्त प्रथम, जिसने लगभग 40 वर्षों तक ﴾414 ई0 से 454 ई0 ﴿ शासन किया, कार्त्तिकेय का भक्त था, यद्यपि वह भी अपने पूर्वजों की तरह परमभागवत उपाधि धारण करता था, इसकी पुष्टि गढ़वा प्रस्तर लेख तथा मुद्राओं से होती है ।[27] न केवल उसका अपना नाम कुमार था बल्कि उसने अपने पुत्र का नाम देवताओं की सेना के प्रमुख स्वामी स्कन्द के नाम पर 'स्कन्दगुप्त' रखा । उसके शासन काल के 'कार्त्तिकेय' प्रकार के स्वर्ण सिक्के ﴾मुद्रा सम्बन्धी﴿ उसकी प्रबल देव भक्ति के द्योतक हैं ।[28] इस सन्दर्भ में कुमारगुप्त प्रथम के काल का, जिसकी तिथि 415-16 ईसवी है, बिलसद प्रस्तर लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।[29] लेख के अनुसार ध्रुवशर्मन, जो कि राज्य-परिषद ﴾परिषदा मन्त्रिषेण[30]﴿ द्वारा सम्मानीय था, ने स्वामी महासेन ﴾कार्त्तिकेय﴿ को मन्दिर में स्थापित कराया ।[31] कुमारगुप्त प्रथम के काल से प्राप्त इस लेख से यह सिद्ध होता है कि कार्त्तिकेय की पूजा के लिए मन्दिर निर्मित किया गया था । निश्चित रूप से यह बताना कठिन है कि इस मन्दिर का निर्माण कब हुआ था । अनुमानत: ﴾मन्दिर का निर्माण﴿ लेख लिखने से कुछ समय पूर्व समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के काल में या इसके पूर्व ही बनवाया गया था । ध्रुवशर्मन ने कार्त्तिकेय के मन्दिर में मूल्यवान सामग्री का प्रयोग किया, वह इस देव ﴾कार्त्तिकेय﴿ को सर्वोच्च मानता था जो कि इस पंक्ति से सिद्ध होता है "भगवतो त्रैलोक्य तेजस-सम्भव - अद्भुत

मूर्ते ब्रह्मण्यदेवस्य ।"[32] कार्त्तिकेय की ब्रह्मणदेव उपाधि बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उपाधि केवल देवताओं के लिए ही प्रयोग की जाती थी । इसी तरह की उपाधि यौधेय शासकों के सिक्कों में मिलती है ।[33] इस प्रकार गुप्त नरेशो द्वारा स्वामी कार्त्तिकेय के मन्दिर का निर्माण किया जाना इस बात का द्योतक है कि इस देवता का धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से तत्कालीन समाज में अत्यन्त सम्मानीय स्थान था ।

बिहार प्रस्तर स्तम्भ लेख ‡इस लेख में तिथि नहीं है ‡ में स्कन्दगुप्त के काल के. भद्रार्य नामक पवित्र स्थान का उल्लेख है जो स्कन्द एवं दैवी माताओं से सम्बन्धित है ।[34] यह लेख अपने महत्वपूर्ण स्थानों पर खण्डित है, इसलिए इससे समुचित जानकारी नहीं हो पाती है किन्तु कार्त्तिकेय की ‡बिहार में ‡ उपासना किये जाने का संकेत मिलता है ।

गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के समय में प्राप्त नवीनतम सुपिया अभिलेख इस समय के धार्मिक इतिहास के निर्माण में अत्यधिक सहायक है ।[35] शिलालेख में एक चण्डक व्यक्ति के द्वारा षष्ठी देवी की मूर्ति के अभिषेक का उल्लेख मिलता है । यह सर्वविदित है कि षष्ठी की प्लास्टिक मूर्तियाँ नगण्य ही हैं तथा उनकी कोई पृथक मूर्ति अब भी नहीं पायी गई है । स्कन्द के साथ उनकी पत्नी के रूप में चित्रित देवी को देवसेना के रूप में जाना जाता है । फिर भी, षष्ठी का देवसेना से समीकरण करने में किसी तरह की आशंका नहीं है । सुपिया शिलालेख के अनुसार चण्डक के द्वारा अभिषिक्त देवी की मूर्ति ‡देवी का स्वतन्त्र चित्रण था ‡ अत्यधिक महत्वपूर्ण है । शिशु जन्म के रूप में वह अपने गुण के द्वारा अलंकृत हुई थी, न कि कार्त्तिकेय की दैवीय पत्नी के रूप में । इस प्रसंग में राजघाट से प्राप्त मृत्तिका मुद्राओं का विशेष उल्लेख किया जा सकता है ।[36]

गुप्तकाल से सम्बन्धित मुद्रा में षष्ठीदत्त को नामांकित किया गया है जो साक्ष्य रूप में शिशु का जन्म हुआ माना जाता है जिसका नामकरण उनके नाम के अनुसार किया गया है ।

द्वितीय षष्ठीदत्त वर्ष 589 के मालवा के यशोधर्मन विष्णुवर्धन के मन्दसोर प्रस्तर अभिलेख से जाना जाता है । यह षष्ठीदत्त औलिकर वंश का संस्थापक था ।[37] उसका नाम देवी से लिया गया प्रतीत होता है जिसके प्रताप से उसका जन्म होना माना जाता है । इसी प्रकार श्रीपुलुमावि (150 ई0) मयाकदोनी अभिलेख में 'कुमारदत्त' नाम का उदाहरण है जो समान रूप से यह सुझाव देता है कि माता-पिता शिशु का जन्म ईश्वरीय (दैवीय) वरदान मानते हैं ।[38]

गुप्तकाल में विद्यमान कार्त्तिकेय की पूजा के लिए समर्पित एक दूसरा मन्दिर भूतपूर्व केन्द्रीय भारतीय एजेन्सी के बघेल खण्ड क्षेत्र में सोहवाल पर पाए गए राजा उच्छकल्प शर्वनाथ के ताम्रपत्र लेख से जाना जाता है ।[39] सम्प्रति अभिलेख अजमेर के राजपूताना संग्रहालय में सुरक्षित है । शिलालेख के अनुसार उच्छकल्प शासक महाराजा शर्वनाथ ने अपने द्वारा निर्मित स्वामी कार्त्तिकेय (भगवत्स्वामी कार्त्तिकेयस्वामी) के मन्दिर की सुरक्षा हेतु विशाखदत्त तथा शक्ति नाम के दो व्यक्तियों को वैश्यवत नामक गाँव दान में दिया । अभिलेख की तिथि अनिर्दिष्ट काल में वर्ष 191 निर्धारित की गई है । कीलहार्न[40] तथा डी0 आर0 भण्डारकर [41] ने अभिलेख की तिथि को कलचुरि युग का वर्ष 248-49 निर्धारित किया है तदनुसार अभिलेख की तिथि 439 ई0 - 40 ई0 से मिलती है जो कि कुमारगुप्त प्रथम (415-16 ई0) के बिलसद प्रस्तर स्तम्भ लेख से दूर नहीं है । जे0 एफ0 फ्लीट,[42] जी0 एस0 ओझा,[43] आर0 आर0 हल्दर [44], वी0 वी0 मिराशी [45] तथा डी0 सी0 सरकार [46] अभिलेख को गुप्तकाल में

रखते हैं । डी० सी० सरकार[47] के अनुसार 'भूमर अभिलेख ॥भण्डारकर की सारणी संख्या॥1661॥ जिसकी तिथि 508 ई० है, दर्शाता है कि तिथि 156 से 151 के मध्य के परिव्राजक वंश के हस्तिन् तथा 191 से 214 के उच्छकल्प के शर्वनाथ समकालीन थे । तिथियाँ उस क्षेत्र को या तो गुप्त साम्राज्य के भाग के रूप में अथवा उसके सीमा क्षेत्र के रूप में दर्शाती हैं । उस समय कलचुरि युग के प्रयोग का कोई प्रमाण नहीं मिलता है । आर० आर० हल्दर का विचार है कि वे वाकाटकों के सहायक थे ।[48] द्वितीय विचार स्वीकार करते हुए कि सोहवाल ताम्रपत्र अभिलेख गुप्त युग से सम्बन्धित है, इसकी तिथि 510-11 ई० के अनुरूप होगी तथा उसके द्वारा दर्शाते हुए कि उच्छकल्प राजा शर्वनाथ, जो कि संभवतः गुप्त सामन्त था, वह स्वामी कार्त्तिकेय का परम भक्त था । उसने अपने समय में निर्मित कार्त्तिकेय के मन्दिरों के प्रबन्ध के लिए दान दिया ।

परवर्ती गुप्त सम्राट, जिन्होंने छठी सातवीं ई० में शासन किया, कार्त्तिकेय और मैत्रक के प्रति विशेष सम्मान रखते थे । परवर्तीगुप्त नरेश कुमार गुप्त तथा महासेनगुप्त का नामकरण युद्ध देवता के नाम के आधार पर रखा गया । यह कार्त्तिकेय की लोकप्रियता का चरमोत्कर्ष है । आदित्यसेन के अफसद प्रस्तर शिलालेख में देवता को शिव के पुत्र के रूप में तथा मोर को उसके वाहन के रूप में चित्रित किया गया है ।[49] इस अभिलेख में, जीवितगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त की तुलना हर ॥शिव॥ के पुत्र के साथ की गई है जो कि मोर पर सवार होते हैं ।[50] यह व्यर्थ की आत्मश्लाघा नहीं थी । इस तथ्य से सिद्ध होता है कि कुमारगुप्त ने उस अपराजेय दुग्ध-सागर का मन्थन किया । सौभाग्य प्राप्त करने का कारण, गौरवशाली ईशानवर्मा की सेना थी ।[51] ॥एक महान मौखरी सम्राट जिसका उल्लेख 554 ई० के हरहा शिलालेख में मिलता है[52]॥ महाशिवगुप्त

मल्लार पत्र में कार्त्तिकेय को शिव के पुत्र के रूप में अंकित किया गया है ।[53] आदित्यसेन का अफ्सद् प्रस्तर अभिलेख तथा महाशिवगुप्त के मल्लार पत्र सातवीं शती ई० से सम्बन्धित है । मैत्रक शासक शिलादित्य अष्टम के आलिना ताम्र-पत्र अभिलेख में मोर को स्कन्द के प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है ।[54]

पाल नरेशों के कतिपय अभिलेखों में कार्त्तिकेय का प्रसंग मिलता है । पाल शासक नारायण पाल के गरूड़ स्तम्भ अभिलेख केदारमिश्र को सोमेश्वर के पुत्र के रूप में उल्लेख करता है जिसकी तुलना कार्त्तिकेय से की गई है ।[55] प्रस्तर स्तम्भ शिलालेख दीनाजपुर जनपद में जंगल से पाया गया था, जो सम्प्रति बंगाल में है ।[56] माहेपाद द्वितीय के भाई मदनपाल देव सूरपाल के मनहाली दान ताम्र-पत्र में कार्त्तिकेय के कौशल का वर्णन मिलता है ।[57] मनहाली, बांग्लादेश के दीनाजपुर जिले में एक गाँव है ।

मध्य प्रदेश राज्य में रीवा जनपद से प्राप्त अभिलेख कलचुरि नरेशों के समय में कार्त्तिकेय की लोकप्रियता को सिद्ध करता है । इस सम्बन्ध में कोकल्लदेव द्वितीय के समय का गुर्गी प्रस्तर अभिलेख विशेष महत्व का है ।[58] रीवा से 20 किमी० पूर्व गाँव के निकट एक बड़े मन्दिर के खण्डहरों से अभिलेख युक्त पट्टी प्राप्त हुई थी । अभिलेख सूचित करता है कि प्रशान्त शिव,जो चन्द्रशिव का सबसे प्रिय शिष्य था, जो शैव मतानुयायी था, मठ के समीप एक शिव-मन्दिर का निर्माण कराया जिसकी संरचना युवराजदेव के द्वारा हुई थी । मन्दिर निर्माण के साथ उन्होंने इससे संलग्न मन्दिरों में उमा, हर गौरी, गणपति, सरस्वती के साथ सदानन (कार्त्तिकेय) की मूर्तियों को स्थापित किया ।[59] ईशान-शिव-गुरु-पद्धति में इन देवताओं की प्रतिदिन पूजा होती थी, यह लगभग निश्चित है कि पंचदेव का यह प्रकार सिद्धान्त

स्कूल में स्वीकृत था ।[60] यह तथ्य कि शिव के मुख्य मन्दिर से संलग्न मन्दिरों में अन्य देवताओं के साथ कार्त्तिकेय की मूर्ति की स्थापना की गई थी, दर्शाता है कि देवता की पूजा होती थी किन्तु उनका महत्व बहुत कम हो गया था तथा मन्दिर में एक वेदी बना दी गई थी, क्योंकि उनका सम्बन्ध शिव से था । कार्त्तिकेय ने शिव के मन्दिर में एक अधीनस्थ स्थान प्राप्त किया ।

कलचुरि वर्ष 724 (973 ई0)[61] का प्रबोधशिव का चन्द्रेहे प्रस्तर अभिलेख इंगित करता है कि उन्हें विश्वास था कि वह कुमार (कार्त्तिकेय) के समान थे जिनका एक हाथ अग्नि की धधकती ज्वालाओं में ठीक समय पर भेंट चढ़ाने में कुशल था, जो सदैव स्त्रियों के साथ से बचता रहता था (कुमार के समान), जिसने अपनी शक्ति का प्रभाव बलशाली राजाओं पर दिखाया था (जिस तरह कुमार ने क्रौंच पर्वत पर अपने बरछे का प्रदर्शन किया था) जो शिव का भक्त था तथा जो ईश्वर के प्रति सभी कर्त्तव्यों को पूरा करता था । चन्द्रेहे रीवा में बनस तथा सोन के संगम के दक्षिणी किनारे से 1½ किमी0 दूर एक छोटा सा गाँव है । वी0 वी0 मिराशी के अनुसार अभिलेख स्पष्ट रूप से कुछ शब्दों पर एक नाटक का उल्लेख करता है जिसके कारण विश्लेषणात्मक अभिव्यक्तियाँ दो अर्थों को जन्म देती है, एक ऋषि से सम्बन्धित है तथा दूसरा कार्त्तिकेय से सम्बन्धित है ।[62]

इन अभिलेखों के अतिरिक्त अन्यान्य अभिलेखों में भी कार्त्तिकेय के सन्दर्भ में संकेत मिलता है । तीवरदेव के बेलोद पत्र[63] में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि षण्मुख देवस्वामी (कार्त्तिकेय) की पूजा सभी व्यक्तियों के द्वारा निरन्तर होती थी । यह प्रमाण उस क्षेत्र में इस देवता की लोकप्रियता को इंगित करता है । बेलोद उड़ीसा राज्य के संभलपुर जिले में स्थित है ।

उड़ीसा के प्राचीन (भूतपूर्व) पटवा राज्य में तितिलगढ़ के 35 किमी० पश्चिम में एक गाँव रानी झरियल में एक गंगा शिव द्वारा निकाला गया महादेव मन्दिर का अभिलेख सूचित करता है कि मन्दिर में शिव, सिद्धेश्वर, लक्ष्मी की मूर्तियों के अतिरिक्त, स्वामी (कार्त्तिकेय) की मूर्ति भी स्थित थी ।[64]

शक वर्ष 1172 (1250 ई०) का कन्हारा का मामदपुर अभिलेख छ: गुणों से युक्त षड्मुख कार्त्तिकेय का उल्लेख करता है ।[65] छिन्दक वंश से सम्बन्धित उसने सम्भवत: राष्ट्रकूटों के अधीन सामन्त के रूप में मध्य प्रदेश के बस्तर क्षेत्र में शासन किया । ईश्वर के छ: गुण सैन्य विज्ञान की छ: शाखाएँ हैं, जैसे सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधभाव एवं संश्रय ।

विक्रम संवत् 1173 (1116 ई०) की तिथि का गुहिल अरिसिंह पल्दी अभिलेख एक बड़े शिव मन्दिर के पास कार्त्तिकेयस्वामी के मन्दिर की दीवार पर खुदा हुआ पाया गया है ।[66] पल्दी राजस्थान में उदयपुर के उत्तर में 8 किमी० दूरी पर है । जयसिंह द्वितीय (11वीं शती ई०) के मिरज पत्र में कुमरेश्वर (कार्त्तिकेय) के मन्दिर का उल्लेख मिलता है।[67]

विक्रम संवत् 1226 (1169 ई०) की तिथि का चाहमान सोमेश्वर के बिझोली शिलालेख में कुमारेश्वर के दूसरे मन्दिर का उल्लेख मिलता है ।[68] शिलालेख के अनुसार ईश्वर का मन्दिर भीम्वन में स्थित है जिसका समीकरण राजस्थान में पाथर से किया गया है । बिझोली उदयपुर के 180 किमी० उत्तर-पूर्व में है ।[69] चाहमान केल्हन के ताम्रपत्र अनुदान में महास्वामीदेव (कार्त्तिकेय) का भी प्रसंग मिलता है ।[70] उसके अभिलेखों की तिथियाँ 1163 से 1192 ई० के मध्य है ।[71] वह चाहमान अल्हणदेव का पुत्र था ।

दहोबी से प्राप्त एक अभिलेख,[72] वि० सं० 1311 (1253 ई०), गुजराती शासक वीशालदेव का उल्लेख करता है जिसने कुमार (कार्त्तिकेय) के मन्दिर का निर्माण वर्धमान के निकट कराया था । बूलर ने इस स्थान की गुजरात में आधुनिक वधवन से पहचान की है ।[73]

दक्षिण भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त अभिलेख न केवल उपमहाद्वीप के दक्षिणी भाग के लोगों के साथ कार्त्तिकेय की लोकप्रियता का उल्लेख करते हैं, वरन् इस देवता के सम्मान में निर्मित मन्दिरों की भी सूचना देते हैं ।

कार्त्तिकेय सातवाहन नरेशों के भी लोकप्रिय देवता थे । यह इस तथ्य से सिद्ध होता है कि कुछ शासक स्कन्दनाग-शातक तथा स्कन्दस्वाति नाम धारण करते थे जो स्वामी स्कन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए थे । स्कन्दनाग-शातक नाम कन्हेरी अभिलेख में मिलता है तथा स्कन्दस्वाति नाम पौराणिक सूची के आन्ध्र-शासकों में मिलता है ।[74] रायचौधरी जैसे विद्वान का मत है कि स्कन्दनाग शातक और स्कन्दस्वाति एक ही व्यक्ति के नाम हैं ।[75] सीरी पुलुमावि (150 ई०) के मथाकदोनी अभिलेख में मिला हुआ कुमारदत्त नाम प्रदर्शित करता है कि माता-पिता अपने बच्चों को स्वामी कुमार (कार्त्तिकेय) के वरदान रूप में मानते हैं ।[76] यह भी महत्वपूर्ण है कि स्वामी कुमार (कार्त्तिकेय) दूसरे देवताओं के साथ नानाघाट अभिलेख (प्रथम शती ई० पू०) में अंकित किए गए हैं ।[77] इस देवता का यह अभिलेख भारत में पाए गए अभिलेखों में सबसे प्राचीन है ।

नागार्जुन कोण्ड के इक्ष्वाकु वंशीय नरेश भी कार्त्तिकेय के उपासक थे । उन्होंने इस देवता की पूजा (उपासना) को विशेष संरक्षण प्रदान किया जो उन क्षेत्रों में मूर्तियों तथा मन्दिरों के पुरावशेषों से प्रमाणित होता है । निस्सन्देह, इस वंश का वाम्तमूल महासेन देवता के प्रति सबसे अधिक समर्पित था (विरूपाक्षपति महासेन परिगहतस)[78] विरूपाक्षपति शब्द कार्त्तिकेय के उपनाम के रूप में स्पष्ट है जिसका प्रसंग महाकाव्यों और पुराणों में नहीं है । यौगिक शब्द अतिथियों

का सांकेतिक है, स्कन्द (कार्त्तिकेय) [illegible] है। विनयपिटक में यह सर्पों के एक वर्ग का संकेत करता है।[79] [illegible] और महाभारत में विरूपाक्ष राक्षसों तथा दूसरी आत्माओं के लिए प्रयोग किया गया उपनाम है।[80] वैसे महाकाव्यों में अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जहाँ राक्षसों के साथ कार्त्तिकेय के घनिष्ठ सम्बन्धों का प्रसंग आया है।[81]

नागार्जुनीकोंड से एक दूसरा अभिलेख (तीसरी शती) इहुवल चाम्तमूल से सम्बन्धित, एलिश्री का उल्लेख करता है [illegible] देवता का महान भक्त माना जाता है।[82] एलिश्री, संभवतः इक्ष्वाकु शासकों के अधीन था, गृहपति के परिवार से किसी भी रूप में सम्बन्धित नहीं प्रतीत होता है।[83] इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि 1956-57 की नागार्जुनीकोंड के कृष्णा घाटी से खुदायी में इक्ष्वाकु काल में सुब्रह्मण्य मन्दिरों के निर्माण के प्रमाण मिलते हैं।[84] मन्दिर के एक स्तम्भ पर चण्ड-शक्ति-कुमार नाम अंकित है जो सम्भवतः मन्दिर का संस्थापक था।[85] कार्त्तिकेय की कुछ मूर्तियाँ भी उसी स्थान से पायी गई हैं।

दक्षिण भारतीय शासकों में कदम्ब भी एक थे जो कि कार्त्तिकेय की उपासना करते थे। वे यह कहने में गर्व महसूस करते थे कि उन्हें प्राचीनतम पूर्वजों के समय से ही महासेन एवं माताओं का समर्थन दिया जाता था। शान्तिवर्मन के तलगुण्ड अभिलेख में मयूरशर्मन जो कि साम्राज्य का संस्थापक था, सदानन और माताओं द्वारा अभिषिक्त किया गया था। मयूरशर्मन का नाम भी अत्यधिक महत्वपूर्ण था। इस प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि प्रायः सभी कदम्ब शासकों के विवरणों में स्वामी महासेन एवं माताओं के द्वारा परिवार के 'अनुध्याता' के रूप में वर्णित किया गया है।[87] यह भी ध्यान देने योग्य है कि रविवर्मन् के सिरसी अनुदान राजा को 'कदम्ब-महासेन-प्रतिमा' के रूप में उल्लिखित करता है।[88]

दक्कन में कार्त्तिकेय की व्यापक लोकप्रियता इस तथ्य से जानी जाती है कि नल नरेशों, जिन्होंने अमरावती क्षेत्र में शासन किया [89], ने देवता के प्रति अपनी विशेष भक्ति को आरोपित किया। अमरावती जिले के मोरसी तलुक में स्थित रिथापुर में राजा भवत्तवर्मन का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जिसकी तिथि राजा के ग्यारहवें वर्ष में रखी गई थी।[90] अभिलेख में महान देवता महासेन या शिव तथा महासेन (स्कन्द-कार्त्तिकेय) को उस पर राजसत्ता सौंपने का श्रेय दिया गया है।[91]

चालुक्य शासक भी कार्त्तिकेय के महान भक्त थे। कुछ प्रारम्भिक अभिलेखों में चालुक्य शासकों द्वारा स्वामी महासेन (कार्त्तिकेय) के पैरों के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया गया है। इस तथ्य के बावजूद विष्णु प्रारम्भिक चालुक्यों के पारिवारिक देवता थे, जैसा कि अभिलेखों में उल्लिखित विष्णु के वाराह अवतार से स्पष्ट होता है।[92] किन्तु कार्त्तिकेय के सन्दर्भ में पूर्वी चालुक्य नरेश युद्धमल्ल (दसवीं शताब्दी ईसवी) के बेजवद स्तम्भ लेख का उल्लेख किया जा सकता है।[93] इसमें उल्लेखित है कि नरेश ने ार्त्तिकेय का एक मन्दिर तथा एक मठ बनवाया।[94] अभिलेख में राजा को गोमरस्वामी (कुमार स्वामी या कार्त्तिकेय) का अनुयायी बतलाया गया है।[95] अभिलेख से यह भी विदित होता है कि एक बार त्रिनयन (कार्त्तिकेय) का पुत्र बेजवद उत्सव में उपस्थित हुआ था और वह इससे अत्यधिक प्रभावित हुआ तथा वहाँ रुकने की इच्छा जाहिर की।[96] यह जानकर मल्ल (युद्ध मल्ल) ने देवता के लिए एक मन्दिर तथा एक मठ का निर्माण कराया।[97] राजा युद्ध मल्ल ने पर-ब्रह्मण्य (कार्त्तिकेय या ब्रह्मण्य का महान भक्त) की उपाधि धारण की।[98]

कार्त्तिकेय पल्लव नरेशों के लोकप्रिय देवता थे। पल्लव नरेश नन्दिवर्द्धन के अभिलेखों में कार्त्तिकेय के सुब्रह्मण्य नाम का उल्लेख मिलता है।[99] यह

अभिलेख तमिलनाडु राज्य के नेल्लोर जिले के मल्लम् §गूदूर§ के सुब्रह्मण्य मन्दिर के भूतल से प्राप्त हुआ है ।[100] अभिलेख के अनुसार अलुव प्रमुख § जो कि सम्भवत: नाग राजकुमार था § के आग्रह पर मन्दिर का निर्माण किया गया जिसकी तिथि नन्दिवर्मन के राज्य के पन्द्रहवें वर्ष में पड़ती है ।[101] पल्लव शासक नन्दिवर्मन के प्रारम्भिक अभिलेख में, जो कि मूर्दुगर से प्राप्त हुआ है, एक उपहार षण्मात्र §सुब्रह्मण्य§ या कार्त्तिकेय को दिया गया है, का उल्लेख मिलता है ।[102] ये सारे प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि पल्लव शासकों में कार्त्तिकेय की उपासना किसी न किसी रूप में प्रचलित थी ।

पाण्ड्य शासक भी कार्त्तिकेय के उपासक थे । पाण्ड्य शासक वर्गुण द्वितीय, जो कि 862 ईसवी में शासन करता था, के काल का एक अत्यन्त प्रामाणिक लेख सुब्रह्मण्य मन्दिर में लिखा गया है जो कि तमिलनाडु राज्य के तिरूचिरप्पल्लि जिले के तिरूच्चेन्दुर ग्राम से मिला है ।[103] तिरूच्चेन्दुर अभिलेख सुब्रह्मण्य-भट्टारक मन्दिर की आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से लिखा गया था । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1400 स्वर्ण काशु तीन अधिकारियों के संरक्षण में जमा किया गया ।[104] जमा करने का उद्देश्य यह था कि इस धनराशि को गाँव में उधार §ऋण§ के रूप बाँटा जाएगा ।[105] इससे जो व्याज आयेगा, उससे मन्दिर का खर्च पूरा होगा तथा मूलधन यथावत बरकरार रहेगा ।[106] शिलालेख यह दर्शाता है कि सुब्रह्मण्य को मन्दिर के केन्द्रीय भाग में देवता के रूप में प्रकट किया गया है । इससे स्पष्ट है कि पाण्ड्य शासक वर्गुण द्वितीय स्वामी सुब्रह्मण्य §कार्त्तिकेय§ का उपासक था ।

दक्षिण भारतीय संस्कृति में चोल शासकों का विशेष योगदान रहा है । चोल शासक शैव धर्म के अनुयायी थे । चोल नरेश राजराज प्रथम §985-1014 ई0§ और उसके पुत्र राजेन्द्र चोल §1012-1044§ के काल में चोल शक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर थी । इन शासकों ने द्रविड शैली में अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया । इनमें से अनेक मन्दिर स्वामी सुब्रह्मण्य को समर्पित है । मन्दिर के

लेख के अनुसार चार भुजाओं वाली सुब्रह्मण्य की प्रतिमा राजराज प्रथम (अपने शासन के 24वें वर्ष में) द्वारा स्थापित की गई जो तन्जौर के राजराजेश्वर मन्दिर (जिसे बृहदीश्वर मन्दिर भी कहा जाता है) में है ।[107] कन्नुर में बाल सुब्रह्मण्य का मन्दिर है । यह मन्दिर राजकेशरी द्वारा बनवाया गया था जिसकी पहचान चोल शासक आदित्य चोल (871-907 ईसवी) से की जाती है । यह सम्भवत: सबसे प्रारम्भिक तिथि का मन्दिर है जो शुरू से अन्त तक पत्थर से बना है ।[108]

वेलन्तनी (राजेन्द्र चोल, शक वर्ष 1091 या सन् 1169 ई0) के नन्दूर प्रस्तर शिला में कहा गया है कि राजेन्द्र चोल प्रथम ने गुन्डम्बिका से विवाह किया तथा उससे दो पुत्र हुए जिनमें से एक गोन्कराज द्वितीय था, जो गुहा या कुमार स्वामिन् (कुमार लक्षनावितम[109] या विप्रो नर्पकुमार सद्रधुत[110]) से मिलता-जुलता था ।

तमिलनाडु प्रदेश का एक शिलालेख, जो कि धर्मराज की कोन्देद्द जागीर थी,[111] धर्मराज जो कि मध्यमाराजदेव का प्रसिद्ध पुत्र था, की वीरता प्रस्तुत करता है । धर्मराज क्रौंच (कार्त्तिकेय) के शत्रु की तरह था (काले धर्म-विवेचनाय निरतो ब्राह्मण्यमध्ये स्थित: क्रौंचारेरिवा यस्य[112]) ।

केरल से प्राप्त शिलालेखों के अनुसार कार्त्तिकेय (या सुब्रह्मण्य) उस राज्य से अपरिचित नहीं था । वेल्लन्द में कई मन्दिर उसे समर्पित है ।[113] वेल्लन्द त्रिवेन्द्रम् और इलान्जी से लगभग 12 किमी दूर स्थित है । वेल्लन्द मन्दिर से अनेकों शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिसमें समय का उल्लेख नहीं किया गया है । किन्तु वे चौदहवीं शताब्दी से सम्बन्धित हैं । शक सम्वत् 1131 के एक शिलालेख में एक अलगम कुलशेखरदेव का उल्लेख है, जो अपने राजत्व के चौदहवें वर्ष में इलन्जी के सुब्रह्मण्य मन्दिर के मध्य समाधि (मन्दिर) की

मरम्मत कराया, जो कि एक खंडहर का रूप ले चुका था ।[114] यह कथन नि:सन्देह यह सिद्ध करता है कि सुब्रह्मण्य मन्दिर का निर्माण शिलालेख में उल्लिखित समय से पूर्व हो चुका था ।

एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अभिलेख जो कि कार्त्तिकेय के सम्बन्ध में प्रचुर प्रकाश डालता है, कोलगल्लू गाँव से मिला था, जो कि कर्नाटक के कर्नूल जिले में, दक्षिण रेलवे के गुन्टकल-हुबली मार्ग पर है ।[115] यह अभिलेख शक सम्वत् 889 [सन् 967 ई0] का राष्ट्रकूट राजा खोट्टिग के समय का है[116] जो कि मान्यखेड़ के समरूपीय राष्ट्रकूट नरेश की तरह जाने जाते हैं, जो कृष्ण तृतीय के उत्तराधिकारी थे । ब्रह्मचारी गदाधर द्वारा कोलगल ग्राम में कार्त्तिकेय तथा अन्य देवों की मूर्तियों की स्थापना का उल्लेख भी इस अभिलेख में मिलता है । इसमें कार्त्तिकेय [स्कन्द] के सोने के आसन की प्रशंसा में अनेक श्लोक हैं[117] और तारका दैत्य के विनाश की शूरता की भी प्रशंसा की गई है ।[118] ब्रह्मचारी गदाधर को लोहसनी [तपस्वी] के रूप में उल्लिखित किया गया है जो कि शांडिल्य गोत्र का है, उसे गौड़ देश का मुकुट बतलाया गया है ।[119] साथ ही कहा गया है कि उसका जन्म टाडा ग्राम में हुआ था और वह वारेन्द्री देश को प्रकाशवान करने वाला था ।[120] अभिलेख से यह भी सूचना मिलती है कि गदाधर, स्वामी कार्त्तिकेय के प्रदेश का प्रशासन देखता था ।[121] देश का यह प्रदेश जो गदाधर के प्रशासन कार्य के अन्तर्गत था, कार्त्तिकेय तपोवन कहलाता था, इसका उल्लेख 964 ई0 के कोलगल्लू अभिलेख में किया गया है ।[122] एक और अभिलेख से यह पता चलता है कि इस व्यक्ति ने कार्त्तिकेय की एक प्रतिमा कुडटिनि ग्राम में स्थापित की थी ।[123]

खोट्टिग के 967ई0 के अभिलेख से पता चलता है कि गदाधर ने एक सरोवर एक मठ तथा कुछ कुओं का निर्माण कराया था ।[124] सदगुणों से युक्त

उसके इस प्रकार के कार्यों ने उसकी प्रतिष्ठा को अत्यधिक बढ़ाया । उसकी प्रशस्ति पत्र से स्पष्टत: वह महान नामी तपस्वी प्रतीत होता है । यह तपस्वी गदाधर, जो कि कार्त्तिकेय की ओर विशेष झुकाव रखता था, ईश्वर (कार्त्तिकेय) का परम भक्त था । एन0 लक्ष्मीनारायण राव, गदाधर के बारे में लिखते हैं हम यह नहीं जानते कि कब यह प्रसिद्ध वारेन्द्री से कनरेस देश आया, लेकिन यह स्पष्ट है कि कृष्ण तृतीय उससे मिला हो तथा उत्तरी भारत के द्वितीय अभियान के समय लगभग 933-64 ई0 में दक्षिण भारत लाया हो ।[125]

खोटिंग के 967 ई0 के कोलगल्लू अभिलेख का विशेष महत्त्व यह है कि यह तपस्वी गदाधर के बारे में सूचना से युक्त है (जो यद्यपि उत्तर भारतीय था) जो उत्तरी बंगाल का था तथा शायद राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय के साथ सुदूर दक्षिण कर्नाटक में बसने के लिए आया था । कार्त्तिकेय का महान भक्त होने के साथ वह अपने प्रिय देव के प्रचार-प्रसार हेतु कनरेश देश में कई स्थलों पर उनकी प्रतिमा की स्थापना की ।[126] अभिलेख से यह भी प्रमाणित होता है कि उसने ईश्वर की प्रतिमा की स्थापना कम से कम दो स्थानों पर की । यह असंभव नहीं है कि उसने यह कार्य अन्य कई स्थानों (जगहों) पर भी किए हो । जो भी हो, कनरेश प्रदेश का राज्य जो कि उसके पूरे प्रशासन के अन्तर्गत था और जिस पर कोलगल्लू (कोल्लाल) से राज्य करता था, का नाम ईश्वर के नाम पर 'कार्त्तिकेय - तपोवन' रखा गया । [127]

इस प्रकार अभिलेखीय साक्ष्यों से कार्त्तिकेय के अनेक रूपों पर विभिन्न कालों में हुए परिवर्तन पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है । इन रूपों पर सामाजिक-आर्थिक कारकों का कैसा प्रभाव पड़ा, यह भी अभिलेखों से द्योतित होता है । अभिलेखों से यह भी ध्वनित होता है कि कार्त्तिकेय की सामाजिक एवं धार्मिक प्रतिष्ठा में दिन-प्रतिदिन बढ़ोत्तरी होती गई । नरेशों द्वारा कार्त्तिकेय के सम्मान में मन्दिरों का निर्माण किया जाना इस देवता की सम्मानीय सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का सबल प्रमाण है ।

संदर्भ-संकेत
=======

1- जे0 ए0 एस0 बी0, कलकत्ता 1953, पृ0 59 ; ई0 आई0, XXVII, पृ0 48

2- बनर्जी, जे0 एन0 डी0 एच0 आई0, पृ0 94, कलकत्ता 1956

3- महाभारत, III 232·8-10

4- जे0 ए0 एस0 बी0, कलकत्ता 1953, पृ0 60

5- वही

6- प्रोग्रेस रिपोर्ट आॅव द आर्किअलाजिकल सर्वे आॅव इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, 1903-04, पृ0 54

7- ई0 आई, XXVII , पृ0 48

8- जे0 ए0 एस0 बी0 कलकत्ता, 1953, पृ0 59

9- ई0 आई0, XXX पृ0 59-62; डी0 सी0 सरकार, स्टडीज इन द रीलिजियस लाइफ आॅव एन्शयन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ0 105-10, वाराणसी एवं पटना, 1940

10- वही, पृ0 107

11- वही, पृ0 108

12- वही, पृ0 108

13- वही, पृ0 109

14- वही, पृ0 109

15- वही,

16- गार्डनर, बी0 एम0 सी0, लन्दन, XXVII .। और XXVIII , 23;
नूमिसमैटिक क्रोनिकल, XII, 1892, प्लेट, X 16 और 17

17- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, पृ0 126, एन्यूअल रिपोर्ट 1908-9

18- ई0 आई0 पृ0 230-31

19- वही, पृ0 230, 1.1.
"सिद्धम् भगवतस्त्रिदशगणसेनापतेरजितसेनस्य स्वामिमहासेनमहा
(कुमारस्य)(दिव्य) वीर्य्यार्जितविज (य)"

20- वही,

21- जे0 ए0 एस0 बी0; पृ, 337, कलकत्ता, 1923

22- सरकार, डी0 सी0, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स, पृ0 181. कलकत्ता, 1956

23- चट्टोपाध्याय, एस0, द इवोल्यूशन ऑव थीस्टिक केक्टस इन एन्शयन्ट इण्डिया, पृ0 115. कलकत्ता, 1962

24- जे0 यू0 पी0 एच0 एस0 XVI, पृ0 62-66, प्लेट, II, लखनऊ

25- वही, पृ0 66

26- वही, पृ0 62

27- फ्लीट, सी0 आई0आई0 III, पं0 9, पृ0 41, 1.1.

28- अल्तेकर, ए0 एस0, जी0 जी0 सी0 बी0 एच0, पृ0 Ci

29- फ्लीट, जे0 एफ0, इन्स्क्रिप्शन्स आॅव द अर्ली गुप्ता एण्ड देयर शक्सेसर
सी0 आई0 आई0 III संख्या, 10, पृ0 43-44. कलकत्ता, 1888.

30- वही, सं0 10, पृ0 44, 1.9.

31- वही, पृ0 44.1.7

32- वही

33- एलन, जे0, सी0 सी0 ए0 आई0, पृ0, cl-cli लन्दन, 1936

34- फ्लीट् सी0 आई0 आई0, III, सं0 12 पृ0 49, 1.9 कलकत्ता, 1888

35- प्रोसीडिंग्स आॅव द आॅल - इण्डिया ओरिएण्टल कान्फ्रेंस, XII, जिल्द III
111, पृ0 588-89

36- अग्रवाल, वी0 एस0, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृ0 61

37- फ्लीट, सी0 आई0 आई0, III, पृ0 56

38- सरकार, डी0 सी0, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स, पृ0 205, कलकत्ता, 1956

39- ई0 आई0, XIX , पृ0 127-31

40- वही, वी, एपेनडिक्स, पृ0 55

41- वही, XX , एपेनडिक्स, पृ0 159

42- वही, फ्लीट, सी0 आई0 आई0, III, पृ0 126

43- राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट, 1923-24, पृ0 21

44- ई0 आई0, XIX , पृ0 127

45- वही, XXIII , पृ0 171

46- सरकार, डी0 सी0, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ0 370, कलकत्ता, 1956

47- वही

48- ई0 आई0 XIX, पृ0 128

49- फ्लीट, सी0 आई0 आई0 III, संख्या 42, पृ0 203

50- वही, II, 5 और 6

51- वही

52- ई0 आई0, XIX संख्या , 5

53- ई0 आई0, XXIII, पृ0 122

54- फ्लीट सी० आई० आई०, नं० 39 पृ० 177-1•49

55- मुखर्जी, आर० आर० और मैटी, एस० के०, कार्पस आँव बँगाल इंस्क्रिप्शन्स, पृ० 150, कलकत्ता, 1956

56- वही, पृ० 152, श्लोक 11

57- वही, पृ० 210 • 1• 19

58- मिराशी, वी० वी० सी० आई० आई०,IV पृ० 228, ई० आई०, XXII पृ० 128

59- वही, पृ० 128 §श्लोक, 12§

60- पाठ्क, वी० एस०• शैव कल्टस इन नार्दर्न इण्डिया, पृ० 56 वाराणसी, 1960

61- मिराशी, वी० वी०, सी० आई० आई०, IV , पृ० 203; ई० आई०, पृ० 152

62- मिराशी, वी० वी०, सी० आई० आई०, IV

63- ई० आई०, VII, पृ० 106, 1•10

64- वही, XXIV , पृ० 240

65- ई० आई०, XIX , पृ० 28•1•33•

66- वही, XXX , पृ० 8-9

67- वही, XII, पृ0 307

68- वही, XXVI , पृ0 99

69- मजूमदार, आर0 सी0, द स्ट्रगल फॉर इम्पायर, पृ0 83, बम्बई, 1957

70- ई0 आई0, XIII , पृ0 2111, 1·5 और पृ0 218, 1·9

71- मजूमदार, आर0 सी0 द स्ट्रगल फॉर इम्पायर, पृ0 87· बम्बई, 1957

72- ई0 आई0, I , पृ0 23, श्लोक 21·

73- वही, I , पृ0 23·

74- रैप्सन, ई0 जे0, आन्ध्र क्वाइन्स, बक्स्ट्रा, पृ0 liii , लन्दन, 1908

75- रायचौधरी, एच0 सी0 पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शयन्ट इण्डिया, पृ0 360, कलकत्ता, 1950

76- सरकार, डी0 सी0, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स, पृ0 205· जिल्द, I, कलकत्ता, 1956

77- आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव वेस्टर्न इण्डिया, जिल्द V, पृ0 60

78- ई0 आई0, XX , पृ0 6, गोपालचारी, के0, अर्ली हिस्ट्री ऑव आन्ध्र कन्ट्री, पृ0 131 और पृ0 166

79- औल्डेनबर्ग, II , पृ0 110

80- हाप्किन्स, ई0 डब्ल्यू0, इपिक मिथालाजी, पृ0 39

81- महाभारत, XIII , 86.26

82- ई0 आई0, XXIII , पृ0 147

83- वही, XXIV , पृ0 19

84- इण्डियन, आर्किअलाजी - ए रिव्यू, 1956-57, पृ0 36, प्लेट LIV. A.

85- वही, प्लेट, LIX

86- ई0 आई0 VIII, पृ0 29, श्लोक 22

87- ई0 आई0, VI , पृ0 15

88- ई0 आई XVI , पृ0 264

89- ई0 आई, XXIII, पृ0 13

90- ई0 आई, XIX , पृ0 102

91- वही

92- मजूमदार, आर0 सी0, द क्लासिकल एज, पृ0 228, बम्बई 1954,
बाम्बे गजेटियर, जिल्द, I, भाग ii पृ0 337

93- ई0 आई0, XV , पृ0 150-59

94- वही

95- वही

96- वही

97- ई0 आई0, XIX , पृ0 88-89

98- ई0 आई0, XV , पृ0 152

99- नेल्लोर इन्स्क्रिप्शन्स गुडुर (सं0 बटरवर्थ और वेट्टी) सं0 54, पृ0 429-30

100- वही

101- बाम्बे गजेटियर, जिल्द, I, पृ0 281

102- ई0 आई0, (IV, पृ0 178

103- वही, XXI, पृ0 102, II, 3 और 4

104- बाम्बे गजेटियर, जिल्द I पृ0 281; इण्डियन एन्टीक्वरी, 1908, पृ0 352

105- वही

106- वही

107- एस0 आई0 आई, प्लेट ii नं0 49

108- द कल्चरल हेरिटेज ऑव इण्डिया, iv पृ0 309

109- ई0 आई0, XXIX , प्लेट vii, पृ0 232

110- वही, पृ० 240

111- वही, XIX, पृ० 269

112- वही, II• 31-32

113- ट्रावन्कोर आर्किअॅलाजिकल सीरीज, जिल्द III, पृ० 97-99

114- वही, नं० 1, पृ० 45

115- ई० आई०, XXI, नं० 40, पृ० 260

116- ई० आई० XXI, नं० 40, पृ० 260

117- वही, vv 2-8

118- वही, vv 9-12

119- वही, v 13

120- वही, v. 14

121- वही, v. 19

122- मद्रास इपिग्राफिकल रिपोर्ट, 1914, प्लेट, ii पैरा 36

123- मद्रास इपिग्राफिकल कलेक्शन, नं० 44 आव 1904

124- ई० आई०, XXI, v 16

125- वही, पृ0 262

126- वही, पृ0 263; और मद्रास एपिग्राफिकल कलेक्शन नं0 44 आफ़ 1904

127- ई0 आई0, XXI , पृ0 265, मद्रास एपिग्राफिकल रिपोर्ट, 1914
पैरा 36, नं0 234 ऑव 1913

अध्याय - छः
===========

[ख] मूर्तियों में कार्त्तिकेय

भारतीय मूर्तिकला में स्वामी कार्त्तिकेय का अंकन लोकप्रिय रहा है। कार्त्तिकेय की प्रतिमाओं के निर्माण का विवेचन साहित्यिक ग्रन्थों में किया गया है जिसका उल्लेख करना असमीचीन नहीं होगा।

वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता के अनुसार कार्त्तिकेय की प्रतिमा एक हाथ में भाला लिये हुए, मोर के साथ युवक के रूप में अंकन का विधान मिलता है।[1] इसी प्रकार के मिलते-जुलते शस्त्रों से युक्त देव की प्रतिमा के दो रूप भविष्यपुराण में मिलते हैं।[2] बी० सी० भट्टाचार्य का कहना है कि कुमार (कार्त्तिकेय) नाम किशोरावस्था का प्रतीक है।[3] यद्यपि मूल पाठ में यह नहीं दिया गया है कि इस देवता की कितनी भुजाएँ होनी चाहिए तथापि प्रारम्भिक प्रतिमाओं में दो भुजाएँ प्रायः मिलती हैं।

कालिदास ने अपने ग्रन्थ 'रघुवंश' में कार्त्तिकेय का उल्लेख मोर पर आरूढ़ रूप में किया है।[4] विष्णुधर्मोत्तर में शिखण्डक प्रकार की टोपी, लाल रंग के कपड़ों में मोर पर सवारी किये हुए और कुक्कुट लिये हुए दाहिने हाथ में शंख तथा विजय पताका एवं बायें हाथ में भाला (शक्ति) धारण किये हुए षण्मुख आकृति वाली कुमार की मूर्ति का वर्णन है।[5] इस चित्रण के अनुसार इस देवता के चार हाथ हैं। मूल पाठ से पुनः यह जानकारी प्राप्त होती है कि इस देवता के तीन स्वरूपों- स्कन्द, विशाख और गुहा षण्मुख की प्रतिमाएँ मोर की सवारी को छोड़कर कुमार की ही तरह होना चाहिए।[6] इस विवेच्य सन्दर्भ में कार्त्तिकेय को भाला (शक्ति), मयूर और कुक्कुट से सम्बद्ध किया गया है।

समरांगणसूत्रधार में कार्त्तिकेय की मूर्ति का विशद वर्णन मिलता है।[7] इस ग्रन्थ के अनुसार कार्त्तिकेय लाल वस्त्रों से विभूषित एवं अग्नि जैसे प्रज्वलित लाल रंग के प्रातः कालीन सूर्य के समान हैं। यद्यपि [तरुण, किन्तु बालपन (बचपन) की ओर उन्मुख] सुन्दर होना अपेक्षित है।

उनके गले में मुक्तामणि की माला शोभायमान हो । वह षण्मुख या एक मुखी रूप धारण करने में समर्थ हैं । वे वीरता का प्रतीक भाला ﴾ शक्ति ﴿ धारण किये हुए दिखलाये जाते हैं । उनके विभिन्न अस्त्र-शस्त्र स्थान एवं परिवेश के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं । एक कस्बे में उन्हें बारह भुजाओं से सज्जित दिखाया गया है । खेतक में छः और एक गाँव में दो भुजाओं से युक्त दिखलाया गया है । बारह अस्त्र-शस्त्रीय रूप में पाँच दायें हाथों में शक्ति ﴾विशिष्ट आयुध﴿, बाण ﴾तीर﴿, तलवार, मथदी मुग्दर तथा छठाँ फैला हुआ दिखलाया गया है । पाँच बायें हाथों में धनुष , पताका ﴾विजयध्वज﴿, घण्टा, खेटक और कुक्कुट एवं छठाँ संवर्धन रूप में प्रदर्शित है । अस्त्र-शस्त्र से सज्जित यह स्वरूप देवताओं के सेनाधिपति रूप में मुख्यत: युद्ध भूमि के लिए है । अपने अस्वाभाविक रूप में वह पूर्ण विनोदी, कुक्कुट और मयूर आदि के साथ दिखलाये जाने का विधान है । । उनका यह अंकन शहरवासियों के उपयुक्त है । खेटक स्वरूप में उन्हें छः हाथ रूप में उपरोक्त तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों सहित और भाला पहने हुए अग्नि प्रज्जवलित किये हुए प्रदर्शित किया है । गाँवों में इन्हें कुक्कुट और शक्ति धारण किये दो अस्त्रों से सज्जित दिखाया गया है । समरांगणसूत्रधार में उनकी पत्नी देवसेना का उल्लेख नहीं मिलता है।[8] भट्टाचार्य ने ठीक ही कहा है कि विभिन्न स्थानों में पूजा के अनुसार कार्त्तिकेय के अनेक हाथ भिन्न-भिन्न रूप में हैं ।[9]

मत्स्य पुराण में कार्त्तिकेय की किशोरावस्था में दिखाया गया है ।[10] उन्हें कमलवत कालिमा लिये हुए उगते हुए सूर्य के समान कान्तिवान बतलाया है । बारह बाहुधारी कार्त्तिकेय दाहिने पाँच हाथों में शक्ति, पाश, तलवार, बाण और त्रिशूल धारण किये हुए हैं, जबकि शेष छठवाँ दाहिना हाथ कुछ वरद मुद्रा में हैं तथा निर्भय होने के विचार से रहित है । पाँच बायें हाथों में वह बाण, पताका, मुष्टिका, नुकीली अंगुली और खेटक लिये हुए हैं तथा छठवाँ हाथ

कुक्कुट लिये हुए दिखलाया गया है ।[11] द्विबाहु आकृति में भगवान दाहिने हाथ में शक्ति और बायाँ हाथ मयूर के ऊपर स्थित है ।[12] चतुर्भुजी मूर्ति में बायें हाथ में पाश और भाला तथा दाहिना हाथ अभय मुद्रा में प्रदर्शित है ।[13] कार्त्तिकेय के चतुर्भुज स्वरूप का विस्तृत विवेचन शिव पुराण में प्रस्तुत किया गया है ।[14] तदनुसार पाश का स्थानापन्न कुक्कुट द्वारा अन्यथा अन्य विशेषण वैसे ही है जैसे मत्स्य पुराण में वर्णित है । इसमें अधिक यह सम्मिलित है कि भगवान की मूर्ति को गहनों {मुक्तादिभूषणम्} से सजाया और सँवारा जाए ।

अग्नि पुराण में कार्त्तिकेय की मूर्ति को द्विबाहु और षड्बाहु के रूप में वर्णित किया गया है । अग्नि पुराण में स्वामी कार्त्तिकेय की द्विबाहु प्रतिमा में दाहिने हाथ में शक्ति {भाला} तथा बायें हाथ में कुक्कुट के अंकन का उल्लेख है ।[15]

आगम और तान्त्रिक ग्रन्थों में कार्त्तिकेय की मूर्ति के विविध रूपों का विवेचन किया गया है । राव के अनुसार आगम ग्रन्थों में वर्णित प्रतिमा के विविध नाम सुब्रह्मण्य के अनेक नाम हैं ।[16] राव महोदय ने स्वामी कार्त्तिकेय के विविध रूपों का विस्तृत विवेचन हिन्दू प्रतिमा विज्ञान में किया है, जैसे - शक्तिधर, स्कन्द, सेनापति, सुब्रह्मण्य, गजवाहन, शरवनभव, कार्त्तिकेय, कुमार, षण्मुख, तारकारि, सेनानी, ब्रह्मा-सृष्टा, वल्लि-कल्याणसुन्दर मूर्ति, बालास्वामी, क्रौंचभट्ट, शिखिवाहन, जनशक्ति एवं देशिक ।[17]

अभी तक ईसवी सन् से पूर्व की कोई भी कार्त्तिकेय की मूर्ति नहीं प्राप्त हुई है । संभवतः कुषाण काल की कार्त्तिकेय की प्रथम कलाकृति उत्तर प्रदेश के मथुरा संग्रहालय में है ।[18] इसकी पीठिका पर यह विवरण दिया गया है कि इसकी स्थापना कनिष्क के शासन काल के ग्यारहवें वर्ष {89 ईस्वी} में की गई थी ।[19] यह मूर्ति मथुरा के प्रसिद्ध कंकाली टीला से प्राप्त हुई थी ।

दो भुजा वाली यह मूर्ति अपने बायें हाथ में अपना विशिष्ट अस्त्र भाला (शक्ति) लिये हुए अभय-मुद्रा में बहुत ही मनोहारी ढंग से भक्तों को अभय करते हुए और दायें हाथ में समान रूप से वस्त्र-विन्यास के साथ गहने तथा बोधिसत्व की मूर्तियों [20] की ओर उन्मुख एक हाथ में शक्ति रूप पीठिका में खड़ी मुद्रा में उत्कीर्ण है । नाक का अग्र भाग एवं अंगुलियाँ जो थोड़ी सी क्षतिग्रस्त हैं, को छोड़कर मूर्ति पूर्णतः सुरक्षित है । कार्त्तिकेय को युवा रूप में दिखलाया गया है तथा उनके चेहरे से अलौकिक कान्ति प्रस्फुटित हो रही है । कुषाण कालीन कुछ अन्य मूर्तियाँ भी हैं जो मथुरा से प्राप्त हुई हैं तथा वर्तमान समय में मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय में रखी हुई हैं । खड़ी हुई एक मूर्ति में कार्त्तिकेय बायें हाथ में बड़ा भाला लिये हुए हैं और दाहिना हाथ अभयमुद्रा में है ।[21] उनके सिर के बाल चोटी में गुंथे हैं । उनकी छोटी-छोटी दाढ़ी भी है ।

स्वामी कार्त्तिकेय की इसी तरह की मिलती जुलती समकालीन एक दूसरी मूर्ति दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है ।[22] एक मुखी मूर्ति में कार्त्तिकेय को धोती पहने हुए बायें हाथ में भाला लिये हुए तथा दाहिना हाथ अभयमुद्रा में है । यह मूर्ति कुषाण कालीन मूर्तियों से काफी मिलती है जो गले और सिर में आभूषण पहने हुए हैं ।[23]

इस प्रकार कार्त्तिकेय को मथुरा की प्रारम्भिक कुषाण कला में खड़े रूप में प्रदर्शित किया गया है । बायें हाथ में भाला तथा दायें हाथ को अभय मुद्रा में दिखलाया गया है जो कि बोधिसत्व की प्रतिमाओं की प्रतिकृति जैसा प्रतीत होता है । कुषाण काल की इन प्रारम्भिक मूर्तियों में देवता का वाहन नहीं है ।

मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित कार्त्तिकेय की कतिपय अधिक विकसित प्रतिमाएँ कुछ बाद की हैं ।[24] इन मूर्तियों को द्वितीय शताब्दी ईसवी का

रूप मे दिखलाया गया है, किन्तु बाये हाथ के
निर्दिष्ट किया जा सकता है । यद्यपि कार्त्तिकेय की मूर्ति में खड़े स्थान पर भारी भाला दायें हाथ में लिये हुए हैं (अभयमुद्रा में नहीं) तथा बायें हाथ में कुक्कुट लिये हुए दिखलाया गया है ।[25] इस मूर्ति का प्रारूप बहुत कुछ मत्स्य पुराण में दिये गए विवरण से मिलता जुलता है जिसमें दो भुजाओं वाली प्रतिमा में दाहिने हाथ में भाला तथा बायें हाथ में कुक्कुट का अंकन का विधान है ।[26] मूर्ति सुरक्षित स्थिति में नहीं है, इसकी जांघ का निचला भाग नहीं है । टी० एस० अग्रवाल ने इसे प्रथम से द्वितीय शताब्दी के मध्य का माना है [27] किन्तु बाद में उन्होंने अपना विचार संशोधित करते हुए इसे प्रारम्भिक गुप्त काल में रखा है ।[28]

उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले के लाल भगत नामक स्थान से दूसरी शताब्दी ईसवी की लाल बलुए पत्थर की कार्त्तिकेय की एक खण्डित प्रतिमा जो नीचे चौकोर और ऊपर अष्टकोणीय मूर्ति है, प्राप्त हुई है ।[29] अलग से ऊपर अंकित कुक्कुट देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानों कार्त्तिकेय का सचमुच का कुक्कुट ध्वज हो । स्तम्भ के एक ओर बहुत से चित्र उत्कीर्ण हैं । स्तम्भ के ऊपर उड़ते हुए हंसों का जोड़ा प्रदर्शित है, उसके नीचे एक पहिये पर चार घोड़ों के रथ में सवार पार्श्व में दो महिलाओं सहित भगवान सूर्य दिखलाये गए हैं ।[30] इस देवता के बायीं तरफ एक महिला सेविका एक लम्बे दण्ड वाला छत्र लिये हुए तथा दाहिने तरफ संभवत: चौरी लिये हुए है । डरावनी निगाह के असामान्य चेहरे और उभरे हुए पेट, भोज शासक के राक्षसों का स्मरण कराते हुए विलक्षण बौनों के झुण्ड के ऊपर आराम से खड़ी हुई दो-तीन महिलाओं की आकृतियाँ दिखलायी गई हैं ।[31] ठीक नीचे नाचते हुए मोर के फैले हुए पंख का सुन्दर अंकन है । कार्त्तिकेय के वाहन का चित्रण प्रमुखता से किया गया है । उसके नीचे सरोवर से कमल तोड़ते हुए हाथी की आकृति है । उसके भी नीचे वाली स्थान के बाद यक्ष के ऊपर एक बर्तन से निकलते हुए कुक्कुट के सिर की

कलँगी के बगल में खड़ी गजलक्ष्मी की आकृति है । लाल भगत के पत्थर और अत्यन्त भग्न कुक्कुट के साथ सूर्य का उभरा हुआ चित्र बना है । देवी गजलक्ष्मी जो कि कुक्कुट के सिर की कलँगी के बगल में खड़ी हैं, उस पर अपना हाथ बिना उठाये इस प्रकार देख रही है मानो देवी प्रसाद की वर्षा कार्त्तिकेय पर कर रही है ।

कार्त्तिकेय की गान्धार कला से सम्बन्धित मूर्ति तक्षशिला से प्राप्त हुई है ।[32] इस मूर्ति को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय खान साहब सिद्दिकी को है । उन्होंने इसे कुबेर की मूर्ति बतलाया है ।[33] वी0 एस0 अग्रवाल ने इस मत का प्रतिवाद किया है ।[34] उनका कहना है कि ठीक से पहिचान स्थापित करने पर मूर्ति युद्ध देवता कार्त्तिकेय की प्रतीत होती है । देवता के दायें हाथ में भाला और {सिद्दीकी द्वारा उल्लिखित तोता नहीं} बायें हाथ में एक कुक्कुट है । उनको घुटनों के नीचे तक धोती और कमर में कमरबन्द पहने दिखलाया गया है । विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि देवता के पैरों के ऊपर आवरण है जो ऊँचे-ऊँचे जूतों जैसा दिखलाई देता है, स्पष्टतः सूर्य देवता की प्रारम्भिक मूर्ति से मिलता जुलता है ।[35] कार्त्तिकेय का सूर्य से संबन्ध सौर ऊर्जा {शक्ति} का प्रतीक है । इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि साम्ब को, जिनका उत्तरी भारत में सूर्य की उपासना से पौराणिक संबन्ध है, कुषाण काल की मथुरा की कुछ प्रतिमाओं में ऊँचे जूते पहने हुए दिखलाया गया है ।[36] मूर्ति का ऊपरी भाग नग्न {निर्वस्त्र} है किन्तु पवित्र धागों की मालाओं का जोड़ा पहने है । सिर के ऊपर बनावटी टोपी लगी हुई है और भुजाओं में परम्परागत आभूषण जैसे कि कुण्डल तथा वलय पहने हुए है । मूर्ति परिवेष्ठित है । आर0 सी0 कार के कथनानुसार तक्षशिला से प्राप्त विष्णू की लघु प्रतिमा के छाया { potstone } पत्थर के समान है । कार का कथन है कि यह मूर्ति चौथी

पाँचवीं शताब्दी ईसवी की है ।[37] इस सुप्रसिद्ध स्थान से मात्र यही मूर्ति प्राप्त हुई है ।[38] कर्नल डी0 एच0 गॉर्डन के पास इसी प्रकार की एक कार्त्तिकेय की प्रतिमा है जो कि शहर-ए-बहलोल (वर्तमान पाकिस्तान में) से प्राप्त हुई है । यह प्रतिमा मथुरा संग्रहालय की मूर्ति संख्या 2332 के समान है । द्विबाहु मूर्ति में एक हाथ में कुक्कुट तथा दूसरे में भाला धारण किये हुए है ।[39]

काफिर-काट से गान्धार कला में युद्ध देवता की एक सुन्दर प्रतिमा प्राप्त हुई है जो इस समय ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है ।[40] कार्त्तिकेय योद्धा के रूप में विशिष्ट पोशाक कवच, कोट धारण किये हुए हैं । उनके दायें हाथ में बल्लम और बायें हाथ में कुक्कुट है । प्रतिमा परिवेष्ठित है । इसे तीसरी चौथी शताब्दी का होना चाहिए ।

युद्ध की पोशाक में कार्त्तिकेय की ठीक वैसी ही मूर्ति गान्धार से प्राप्त हुई है जो कि बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित है ।[41] इसमें स्पष्टतः कुक्कुट का अंकन नहीं है । कलाकार ने तिथि का भी उल्लेख नहीं किया है ।

यह महत्वपूर्ण है कि गान्धार की यूनानी कला में पंचिक की बहुत सी प्रतिमायें अकेली या अपनी पत्नी हारिती के साथ प्रदर्शित है । इन्हें अमीरों के देवता बुद्ध, हिन्दू, कुबेर का प्रतिरूप माना गया है किन्तु उनके हाथ में नेवला नहीं है । लाहोर संग्रहालय में एक बहुत ही सुन्दर गान्धार शैली की कलाकृति है जिसमें पंचिक को राजा के रूप में राजगद्दी पर बैठे हुए, कीमती आभूषणों से युक्त, पगड़ी बाँधे हुए तथा पेट निकला हुआ दिखलाया गया है ।[42] उसका माँसल और स्वस्थ्य शरीर है । वह सेनापति के वेश में (सेनानी) में है तथा अपने हाथ में भाला लिये हुए है ।

शहर-ए-बहलाल से एक दूसरी मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें हारिति एवं पंचिक [43] दोनों ही अगल-बगल एक पीठिका पर बैठे हैं । पुरूष देवी के दाहिनी ओर दोनों पैर लटकाये हुए बैठे हैं । फुशे द्वारा प्रस्तावित पंचिक की उदग्र मूर्ति

अपने दायें हाथ में भाला और बाएँ हाथ में पर्श (बटुआ) लिये हुए हैं, हारिति सजल नेत्र से उसकी ओर देख रही हैं। हारिति को एक बच्चे को अपने हाथ में लिये हुए दिखाया गया है जो उसके हार से खेल रहा है । इसके अलावा और भी पाँच खेलते हुए बच्चे घेरे हुए हैं । इनके अतिरिक्त पीठिका पर सोलह बच्चे खेलते हुये दिखलाये गए हैं । बौद्ध परम्परा में हारिति मूलत: एक राक्षसी थी जो बच्चों का विनाश करती थी । कालान्तर में उर्वरता और शिशु जननी के रूप में सम्मानित हुई । गोद में बच्चा लिये हुए, कभी-कभी बच्चा दूध पीते हुए और सोने के हार से खेलते हुए सीने से लगाये हुए दिखाया गया है । बहुत से अन्य लड़के उसे घेरे हुए हैं । उनमें से कुछ खेल रहे हैं और आपस में कुश्ती लड़ रहे हैं । पंचिक की पत्नी होने से उन्हें कुछ मूर्तियों में पति के साथ दिखाया गया है ।[44] पंचिक हाथ में भाला लिये हुए सेनाधिपति कार्त्तिकेय की तरह चित्रित किये गए हैं हारिति की तुलना जात हारिणी से सर्वप्रथम शिशु संहारिका और तत्पश्चात् संरक्षिका के रूप में दिखलाया गया है । हारिति की पहचान जात हारिणी से उनके नाम की व्युत्पत्ति से भी स्थापित है (हारिति-जो हरण करे और जातहारिणी-जो बच्चों का हरण कर लें)।

सप्त मातृओं की अनेक मूर्तियाँ देश के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं । मथुरा से प्राप्त कुषाण कालीन मातृकाओं का पहले का स्वरूप विशिष्ट और वाहन रहित है । किसी साधारण महिला स्वरूप में वे बैठी या खड़ी दिखलायी गई हैं । दायें हाथ को अभय मुद्रा में तथा बायें हाथ से कमर पर पानी भरा हुआ घड़ा लिये हुए दिखलाया गया है । उन्हें दो आयुध पुरुषों के साथ बायें हाथ में लम्बे भाले और दाहिने हाथ को अभय मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है ।

मथुरा संग्रहालय में मथुरा के पास धनगाँव की प्रारम्भिक कुषाण काल की एक पत्थर की शिला पर मातृकाओं को एक सामान्य महिला के रूप में

प्रदर्शित किया गया है ।[45] ये महिलायें अभय मुद्रा में अपने हाथ ऊपर किये हुए हैं, जब कि बायें हाथ में पानी के घड़े लिये हुए हैं । इन सप्त महिलाओं के बगल में एक पुरुष आकृति {आयुध-पुरुष} प्रदर्शित है जिसका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में और बायें हाथ में भाला है । वर्तमान समय में बायाँ हाथ नहीं है । केवल के निकट गाट नामक स्थान की दूसरी शिला में भी मातृकाओं से मिलते-जुलते समूह का अंकन है ।[46] वर्तमान मातृकाओं में से सिर्फ छः आयुध पुरुषों के साथ सुरक्षित हैं ।

जमालपुर से प्राप्त कुषाण कालीन दूसरी पत्थर की शिला अभी भी मथुरा संग्रहालय में है ।[47] इसमें सात में से पाँच माताओं के साथ आयुध पुरुषों में एक बायें हाथ में भाला लिये हुए दाहिनी तरफ खड़ा है । इसमें भी दैवीय माताओं का अपना विशिष्ट चिन्ह नहीं है या अपने निधारित वाहनों के साथ उनके दाहिने हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठे हुए हैं । ये अपने पूर्व समूहों के समान नहीं हैं, वे एक पंक्ति में बैठी हैं ।

एक दूसरी खण्डित मूर्ति भी मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है जिसमें दैवीय माताओं में से पाँच अभय मुद्रा में एक पंक्ति में उत्कीर्ण है । वे अस्पष्ट रूप से अपने बायें हाथ में कुछ लिये हुए हैं और भद्रासन में बैठी हुई हैं , दोनों पैर लटके हुए हैं । इसमें आयुध-पुरुष नहीं है । इस प्रकार कुषाण काल में माताओं का चित्रण दो आयुध पुरुषों की आकृतियों के साथ आरम्भ हुआ । कुषाण काल की कार्त्तिकेय की चिर प्रचलित आकृति सप्त मातृकाओं की भाला लिये हुए पुरुष आकृति अधिक मिलती-जुलती है । कार्त्तिकेय के साथ सप्त मातृकाओं के उदाहरण स्वरूप शिलालेखों पर विचार करते हुए आयुध-पुरुषों में से एक की कार्त्तिकेय से पहचान की जा सकती है । इक्ष्वाकु, कदम्ब एवं चालुक्य नरेशों के अभिलेखों में कार्त्तिकेय की उपासना देवी मातृकाओं के साथ की जाती थी, इस बात का

उल्लेख मिलता है । मातृका के फलक {पट्टी} में स्पष्टत: कार्त्तिकेय की मूर्ति का अंकन संभवत: उनके महत्त्व और दूसरे खाली जगह को भरने के लिये किया गया है ।[49] बाद की मूर्तियों में आयुध पुरूषों में से एक का नाम वीरभद्र और दूसरे का गणेश मिलता है ।[50]

प्रारम्भिक मूर्तियों में कार्त्तिकेय का लोक प्रिय वाहन मयूर नहीं है किन्तु गुप्त काल में उन्हें अपने वाहन मयूर पर सवार दिखलाया गया है । कार्त्तिकेय की इस प्रकार की मूर्तियाँ गुप्त कालीन हैं । गुप्त नरेश कुमार गुप्त प्रथम के सोने के सिक्कों पर स्वामी कार्त्तिकेय की आकृति स्पष्टत: प्राप्त होती है । भारत कला भवन वाराणसी [51] में रखी लाल बलुएँ पत्थर की मूर्ति गुप्त काल की उल्लेखनीय रचना है जो कुमार गुप्त के सोने के सिक्कों की आकृतियों से मिलती-जुलती हैं । सिक्कों की तरह मूर्ति अपने वाहन मयूर पर ललित आसन में दोनों पैरों को अलग-अलग किये हुए बैठी है । वाहन की गर्दन और चोंच उसकी कमर के सामने दिखलाई देती है ।[52] उसके रंगीन बनाये गए पंख, आधार को आकर्षक रूप प्रदान कर रहे हैं और बायें हाथ में अपना आयुध भाला लिये हुए हैं । पंखों की चित्रकारी इतनी सुन्दरता एवं कुशलता से की गई है कि आलोचक भी इसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहते हैं । स्वामी कार्तिकेय अपने दायें पैर से मयूर की गर्दन का आलिंगन किये हुए हैं । उनका बायाँ पैर नीचे लटकता हुआ आधार पर टिका है, दाहिने हाथ में कुछ फल लिये हुए हैं जिन पर पक्षी अपनी सुन्दर मुड़ी हुई गर्दन से चोंच लगाये हैं । सुन्दरता से परिपूर्ण यह मूर्ति सचमुच सभी रहस्यों वैभव और काव्यात्मकता की एक मिसाल है । उसका शारीरिक गठन सेनाध्यक्ष की तरह है तथा मुख दैवीय आभा से युक्त है । एन० आर० रे०[53] के दृष्टिकोण में कार्त्तिकेय जो सारनाथ के बुद्ध के निकटतम आते हैं, आध्यात्मिक अनुभव में प्लास्टिक {नम्र} विचार यथा संगत अधिक हल्के

(पतले) हो जाते हैं, अत: कार्य रूप में भी उसी प्रकार थोड़ा सा अन्तर है। सामान्यत: आकृति यथा संबन्धी वजनी और फैली हुई है। एस0 के सरस्वती ने आकृति को भारी नम्र और आध्यात्मिकता में सामान्य माना है।[54] कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार मुद्रा और सम्पूर्ण परिवेश आश्चर्यजनक एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[55] उसके नग्न वक्षस्थल का पर्याप्त विस्तार, उसकी सवारी के पंखों से ढका गया है। अन्तर्दर्शी वियोजन यह अंग विन्यास सरकार इस मूर्ति का यह दृश्य लुभावने दृश्यों में से एक है।[56]

बिहार के भोजपुर जनपद से प्राप्त पाण्डु रंग के पत्थर पर बनी एक कला कृति गुप्त काल की है।[57] यह कलाकृति भारत कला भवन की आकृति के समान है।[58] समान रूप से बायें हाथ में भाला लिये हुए और मयूर पर सवार स्वामी कार्त्तिकेय की मूर्ति का दाहिना हाथ वरद मुद्रा में उठा (बजाय कि हाथ में फल लिये हो) है और सिर के पीछे का प्रभामंडल अलंकृत है। मयूर अपने स्वामी की ओर भक्तिपूर्ण दृष्टि से देख रहा है।[59] मयूर पृष्ठाश्रयी भगवान, कानों में कुण्डल और बघनख एवं पदक सहित प्रतिकात्मक हार पहने हैं। भूमरा के शिव मन्दिर में भी स्वामी को इसी तरह मयूर पर आसन जमाये हाथ में भाला लिये हुए अंकित किया गया है।[60] पक्षी के गले में एक छोटी सी घंटी लटक रही है। मूर्ति के गले में लटकनों के साथ एक हार लटक रहा है। आकृति का ऐसा स्वरूप अन्यत्र कहीं नहीं है। भूमरा मन्दिर की अन्य मूर्तियों की तरह ही यह इसके निर्माता की बुद्धिमत्ता और कलात्मकता को प्रमाणित करती है।[61]

द्विबाहु कार्त्तिकेय की दूसरी मूर्ति देवगढ़ के गुप्त कालीन प्रसिद्ध मन्दिर के अनन्तशायिन के एक भाग से प्राप्त है।[62] इसमें भी देवता को अपने वाहन मयूर पर बैठे हुये दिखलाया गया है। दाहिने हाथ का आयुध अस्पष्ट किन्तु इसे भाला ही होना चाहिए क्योंकि गुप्तकालीन कलाकृतियों में यह प्राप्त होता है।

सिरदल [सोहक्टी] पर बनी एक बारह भुजाओं वाली गुप्त कालीन कार्त्तिकेय की मूर्ति मध्य प्रदेश के ग्वालियर के पवाया नामक स्थान से प्राप्त हुई है ।[63] छः सिरों वाली मूर्ति के ऊपर साँपों का छत्र है । उत्तरी भारत से प्राप्त कार्त्तिकेय की एक भी वर्तमान मूर्तियों से इस आकृति का साम्य नहीं है और न ही प्रतिमाशास्त्र के इस प्रकार प्रमाण उपलब्ध हैं । भारत-पाक से प्राप्त कलाकृतियों से पूर्ण रूपेण भिन्न भी हैं, फिर भी आकृति में विशिष्टता है । देवता के हाथों में आयुध का अभाव है । आकृति को देखने से सनत्कुमार होने का अनुमान लगाया जा सकता है जो कार्त्तिकेय का प्राक्-रूप माना जाता है तथा छान्दोग्य उपनिषद में स्कन्द से संबन्ध स्थापित किया गया है । सम्बन्ध स्थापना सत्य हो सकता है क्योंकि मूर्ति में मूल लक्षण का अभाव है । देवता के चार सिर खड़े हुए दिखलाये गए हैं । वह एक हार और नीचे घुटनों तक लम्बे वस्त्र, जिसमें पैरों के बीच गुच्छा लटक रहा है, पहने हुए हैं । उनके बाल सन्यासी की जटाओं जैसे हैं । उसके अगल-बगल तीन आकृतियाँ हैं । यह प्रस्तुति उत्तरी भारत की प्रारम्भिक प्रस्तुतियों में से एक है । बारह भुजा से युक्त 'कार्त्तिकेय का उल्लेख महाभारत एवं मत्स्य पुराण में है ।

उदयगिरि गुफा मन्दिर नं0 - 3 की मूर्ति सम्भवतः कार्तिकेय का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने हाथ में दण्ड लिये हुए है । बायाँ हाथ, जो अंशतः भग्न है, मूलतः पुट्ठे के ऊपर है । हार, बाजूबन्द और सिरस्त्राण मथुरा की गुप्त कालीन सीधी खड़ी मूर्ति की ही तरह का है । वस्त्र एवं व्यक्तिगत अलंकरण बहुत ही प्रभावशाली है । पहिचान को शंका का विषय बनाती है मयूर की अनुपस्थिति । गुफा नं0 6 में दण्ड लिये हुए मूर्ति संभवतः कार्त्तिकेय की ही है ।[64] काक पक्षीय सिर के बाल और दण्ड कार्त्तिकेय का प्रतिनिधित्व करते हैं ।[65]

बिहार राज्य के रोहतास जिले के मन्देश्वरी मन्दिर से प्राप्त कार्त्तिकेय की दो मूर्तियाँ पटना संग्रहालय में सुरक्षित हैं ।[66] मयूर पर सवार दायें हाथ में भाला लिये हुए हैं । एक कलाकृति पर बहुत ही सुन्दर अंकन है, इसकी मूर्ति कला गुप्त कालीन प्रतिदर्श (मॉडल) की है और भूमरा के देवता की मूर्ति के सदृश्य है ।[67]

बिहार के रोहतास जिले से प्राप्त कार्त्तिकेय को अपनी पत्नी कान्तिकेयानी के साथ में बायें खड़े प्रस्तुत किया गया है ।[68] देवता का दाहिना हाथ कुछ खण्डित है । उनके सिर के पीछे समतल परिवेश है । देवता का चेहरा देवीय आभा से प्रकाशित है एवं लावण्यता तथा आकर्षणशीलता सहज ही उल्लेखनीय है । मूर्तिकला को पूर्ण सन्तुलित चित्रित किया गया है, यह गुप्त काल की शास्त्रीय कला की विशिष्टता से युक्त है ।

बिहार के भूम जिले में बेनी सागर से प्राप्त कार्त्तिकेय की मूर्ति जो वीरेन्द्र अनुसंधान समिति राजशाही संग्रहालय (वर्तमान बांगलादेश) में सुरक्षित है ।[69] कार्त्तिकेय की मूर्ति अच्छे संगमरमर पत्थर पर निर्मित है । देवता को द्विबाहु रूप में अपने आयुध सहित दायें हाथ में भाला लिये हुए दिखाया गया है । अपने प्रिय वाहन मयूर पर ललित आसन पर आसीन है । ये मूर्ति भी गुप्तकाल की है ।

नालन्दा (बिहार) के ब्राह्मण मन्दिर में लगी कार्त्तिकेय की द्विबाहु देवता को थोड़ा झुके हुए, बायें हाथ में भाला धारण किये हुए खड़ी मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है ।[70] फलक के दायें निचले किनारे पर मयूर दिखलाया गया है जो अपने स्वामी के दायें हाथ में रखे हुए फल को ललचायी निगाहों से देख रहा है । मानों चोंच मारने की ताक में है । मूर्ति का अंकन बिल्कुल स्वाभाविक ढंग से किया गया है । बायीं तरफ एक छोटी सी आकृति बैठी हुई मुद्रा में

दिखलाई देती है । संभवत: वह किसी भक्त की होगी। यहकलाकृति सातवीं शताब्दी ई0,की है ।[71]

बसाढ {बिहार} के हरिकटोरा मन्दिर में स्थापित कार्त्तिकेय की प्रतिमा भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।[72] सामने की ओर अभिमुख मूर्ति अपने प्रिय वाहन मयूर पर बैठी हुई स्थापित है जिसके पर बाहर की ओर फैले हुए हैं । कार्त्तिकेय बायें हाथ में लम्बा भाला लिये हुए हैं तथा दायें हाथ में नीबू फल {मातुलुंग} लिये हैं । मुखाकृति अल्प आभूषणों और नैसर्गिक स्वरूप में उच्च स्तर की कला से किया गया है । गहरे क्लोराइट पत्थर पर निर्मित मूर्ति पाल काल की है ।[73] मूर्ति के गठन को देखने से यह गुप्त काल के बाद की ही प्रतीत होती है । अत: इसे आठवीं शताब्दी ई0 के आस-पास रखा जा सकता है ।

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में रखी हुई मूर्ति में कार्त्तिकेय को अपने वाहन मयूर पर दाहिने हाथ में भाला लिये हुए पालथी मार कर बैठे हुये दिखलाया गया है ।[74] उनके केश तीन शिखण्डक आकृति में प्रतीक रूप में सँवारे हुए हैं । कानों में गोलाकार बालियाँ पहने हैं, सुन्दर हार, अन्य साधारण वस्त्र तथा नीचे घुटनों तक ढीला वस्त्र धारण किये हुए हैं । फैले हुए छायादार वृक्ष देवता का परिवेश है । इसी से मिलती-जुलती गुप्त कालीन मूर्ति वाराणसी के भारत कला भवन {उत्तर प्रदेश } में भी प्रदर्शित की गई है । इस कलाकृति की तिथि सातवीं शताब्दी ईसवी अनुमानित की गई है ।

तुमैन से प्राप्त गुप्तकालीन कार्त्तिकेय {स्कन्द} की सुन्दर छोटी पत्थर की मूर्ति कला का एक उत्कृष्ट नमूना है ।[75] इसमें देवता को अपने समान ऊँचाई का भाला बायें हाथ में धारण किये हुए दिखलाया गया है जिसमें भावपूर्ण मुद्रा में दायें हाथ से वह अपने प्रिय पक्षी गरूड़ को खड़े - खड़े सहला रहे हैं । वह सामान्य मुद्रा में खड़े हैं उनका शरीर थोड़ा बायीं तरफ को मुड़ा हुआ है । इसी प्रकार की आकृति गुप्त नरेश स्कन्दगुप्त के सोने के सिक्कों में प्रतीक रूप में मुद्रित है । मूर्ति की लावण्यता कलाकार की कला प्रवीणता को साकार करती

है । इसमें देवता बघनख प्रकार का हार, कान में कुण्डल ,. बाजूबन्द और कंगन पहने हैं । सिर के केशों का गुम्फन बहुत सावधानी से तीन शिखण्डकों में है या गुच्छों, जो बाद की प्रतिमाओं के केश विन्यास स्कन्द की आकृति सा स्वरूप प्रदान करते हैं ।[76] वर्ष ।।6 ‖गुप्त संवत्‖ के अनुसार गुप्त काल में तुमैन तुम्बवन के नाम से प्रसिद्ध था ।[77]

मथुरा से न केवल कुषाण कालीन कार्त्तिकेय की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं बल्कि गुप्त-कालीन मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं । इनमें सबसे उल्लेखनीय प्रारम्भिक गुप्त कालीन मूर्ति है जिसमें देवता को द्विबाहु, दायें हाथ में अपना प्रिय आयुध भाला और बायाँ हाथ अभयमुद्रा में है ।[78]

गुप्तकाल की ‖टेराकोटा‖ मृणमूर्ति पद्धति की एक खण्डित मूर्ति मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है ।[79] कार्त्तिकेय हाथ में भाला लिये मयूर के ऊपर बैठे हुए हैं । मूर्ति के मुस्कुराते हुए भाव से ज्ञात होता है कि मूर्ति कलाकार की एक सुन्दर रचना है ।

मथुरा संग्रहालय में गुप्त काल की एक मात्र वह कलाकृति है जिसमें कार्त्तिकेय को मयूर पर सवार अंकित किया गया है, मयूर को तराश कर स्पष्ट रूप से बनाया गया है जो अपने पंखों को दोनों ओर फैलाये हुए खड़ा है ।[80] प्रभामण्डल के रूप में पीठ पर पक्षियों के पैर खुदे हैं ।[81] स्कन्द के गुच्छेदार केश हैं । केश गुच्छों के एक-एक जोड़े कन्धों पर झूल रहे हैं । सुन्दर कान हैं, एकावली हार तथा बाजूबन्द पहने हुए हैं । बायें हाथ में शक्ति है और दायाँ हाथ क्षतिग्रस्त है ।[82] यह भी महत्वपूर्ण है कि देवता को चार ईश्वरीय शक्तियों, दायें ब्रह्मा ‖सिर्फ तीन आकृतियाँ स्पष्ट दिखलाई देती हैं‖ और बायें शिव, दोनों के केश उलझे हुए हैं एवं कमरबन्द पहने हुए, हाथ ऊपर उठाये, कार्त्तिकेय के सिर पर पानी डालते हुए देवताओं की सेना के सेनाधिपति के रूप में राजतिलक

करते हुए दिखलाया गया है । इनके अतिरिक्त दो और लघु आकार की आकृतियाँ हैं, एक दाहिनी तरफ सिरहीन है जबकि दूसरी बायीं तरफ बकरे के रूप में , दायें हाथ में त्रिशूल लिये हुए दर्शायी गई है । दूसरी आकृति की पहिचान दक्ष प्रजापति से की गई है । इससे भी महत्त्वपूर्ण मेष वाहन अग्नि है जिसको कार्त्तिकेय का घनिष्ठ सहयोगी माना जाता है ।[83]

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले में लाच्छागिर से दो बाहु वाली अग्नि की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है ।[84] दूसरी मूर्ति प्रारम्भिक मध्यकाल की नारद कुण्ड मथुरा से प्राप्त हुई है ।[85] लाच्छागिर से प्राप्त मूर्ति में अग्नि के सिर के चारों ओर ज्वाला प्रज्जवलित है, दोनों ओर दो लघु आकार की प्रतिमाएँ दिखलाये गए हैं । उल्लेखनीय बात यह है कि मूर्ति के बायीं ओर के परिचर को मेष के सिर में दिखलाया गया है । इसी प्रकार का अंकन मथुरा के नारद कुण्ड से प्राप्त मूर्ति में किया गया है । देवता के केवल दायीं तरफ के परिचर को प्रदर्शित किया गया है । यही नहीं मेष वेशधारी व्यक्ति अग्नि देव का परिचर है और विशिष्ट ढंग से प्रकट होता है । वर्तमान में क्लीवलैण्ड कला संग्रहालय, यू0 एस0 ए0, में देवता के दोनों ओर के दोनों ही परिचर मेष सिर वाले हैं ।[86]

एक तरफ अग्नि और दूसरी तरफ कार्त्तिकेय के साथ मेष सिर धारी देवता का सम्बन्ध, प्रतिमा विज्ञान में न केवल महत्त्वपूर्ण है बल्कि अत्यन्त संदेहास्पद भी है । जे0 एन0 बनर्जी के अनुसार मेष सिर धारी पुरूष की संगति मेष सिर धारी दक्ष प्रजापति या मेष रूप स्कन्द से की जा सकती है ।[87] वी0 एस0 अग्रवाल का सुझाव है कि इसको स्कन्द अथवा दक्ष प्रजापति समझा जाए या मेष सिरधारी अग्नि का वाहन ।[88] कार्त्तिकेय का अग्नि से सम्बन्ध जन्म से है, इसका उल्लेख महाकाव्यों में मिलता है । रामायण में

कार्त्तिकेय को 'गंगापुत्र' कहा गया है,[89] जबकि महाभारत में उसे 'अग्नि पुत्र' कहा गया है जो उनकी पत्नी स्वाहा से उत्पन्न हुआ था।[90] मेष सिरधारी पुरुष आकृति में कार्त्तिकेय का ब्रह्मा और शिव द्वारा तिलक किया जाना अग्नि के पुत्र के देवताओं के सेनाधिपति के रूप में तिलक किये जाने से सम्बन्धित प्रतीत होती है। परवर्ती कुषाण या प्रारम्भिक गुप्त काल की अद्वितीय सुन्दर मिट्टी की मूर्ति (मृणमूर्ति) रंगमहल से प्राप्त हुई है जो बीकानेर संग्रहालय में सुरक्षित है।[91] यह आकृति 'अज एक पाद' नाम से प्रसिद्ध है। इसका सिर अज का है और केवल एक पैर है। अग्रवाल के अनुसार वास्तव में अज अग्नि का एक रूप है जिसे मेष सिर धारी (अज) मूर्ति में चित्रित किया गया है।[92]

राजस्थान एवं गुजरात के अनेक भागों से गुप्त एवं गुप्तोत्तर कालीन कार्त्तिकेय की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। कुछ वर्ष पूर्व नागर से कार्त्तिकेय की एक द्विबाहु मूर्ति प्राप्त हुई है।[93] इसे राजस्थान से खोजी गई कार्त्तिकेय की नवीनतम प्रतिमाओं में से माना जाता है। इसमें गुप्तकालीन प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इसका भारत कला भवन की मूर्तियों से घनिष्ठ संबन्ध दृष्टिगोचर होता है। शिखण्डक केश विन्यास, एकावली हार पहने बायें हाथ में भाला लिये हुए अपने वाहन मयूर पर बैठे दिखलाया गया है। दायाँ हाथ क्षतिग्रस्त हो गया है। मौसम के घात - प्रतिघात से यद्यपि मूर्ति क्षतिग्रस्त है, फिर भी इसकी कला उच्चकोटि की है।

ककुनी से लाल बलुएँ पत्थर की भू-आकृति, जो वर्तमान में कोटा के सरस्वती भण्डार में है।[94] यह राजस्थान की पूर्व मध्यकालीन कला की दूसरी उल्लेखनीय कलाकृति है।[95] यह मूर्ति मयूर पर स्थापित है और उसे छः भुजाओं से युक्त प्रदर्शित किया गया है। सब से ऊपर के बायें हाथ में मिठाई लिये हुए, गोलियाँ बना - बना कर मयूर को खिलाते हुए तथा शेष दो बायें हाथों में

धनुष और ढाल लिये हैं । दाहिने हाथ में तलवार और भाला तथा तूणीर दाएँ कन्धे से लटक रहा है । दो परिचारिकायें दोनों ओर खड़ी हैं । हो सकता है ये उनकी दो पत्नियाँ हों । छः भुजा वाला कार्त्तिकेय का यह स्वरूप संरचना भाव, जिन्हें श्रीतत्त्वनिधि और जिसका वर्णन राव ने अपने हिन्दू मूर्तिकला विज्ञान में किया है, विख्यात है ।[96] ग्रन्थ के अनुसार देव के तीन आँखें और छः भुजाएँ हैं तथा प्रातः काल निकलते हुए सूर्य के समान तेज वाला मुख है शेर के ऊपर बैठे हुए हैं । मूर्ति से अन्तिम आकृति की पुष्टि नहीं होती है तथा छः भुजाओं के आयुध भी बहुत भिन्न हैं ।

बैराट से प्राप्त कार्त्तिकेय की दूसरी प्रतिमा (वर्तमान जयपुर के सैन्ट्रल म्यूजियम में) भी देवता को छः भुजी आकृति में दिखाया गया है ।[97] महत्वपूर्ण विषय यह है कि उन्हें तीन सिर वाला दिखलाया गया है । छः सिर अंकित करने का इरादा स्पष्ट है किन्तु तीन सिर ठीक से नहीं दिखलायी देते हैं ।

अग्निपुराण में कार्त्तिकेय को छः सिर वाला, मयूर के साथ कमल पर ललित आसन में आसीन, उल्लिखित किया गया है ।[98] छः भुजा वाली देवता की प्रतिमा कुछ क्षतिग्रस्त हो गई है । किन्तु दोनों बायें हाथों में एक में ढाल और कुक्कुट दिखलाई देते हैं अपने दायें हाथ में भाला लिये हुए हैं, (जो कुछ खण्डित है), दाहिने निचले हाथों के आयुध अस्पष्ट हैं । देवता गले में हार पहने हुये हैं और उनका वाहन मयूर अपनी गर्दन अपने स्वामी की ओर मोड़े हुए है । पक्षी और उसके सवार की मुद्रा कला के आकर्षण में वृद्धि करती है । देवता के दोनों ओर उड़ते गन्धर्व और अप्सराओं की आकृति है । आभूषण और परिधान से यह मूर्ति गुप्तकालीन प्रतीत होती है ।

जोधपुर (राजस्थान) के समीप खेड़ा के प्राचीन रणछोड़दास जी मन्दिर से कार्त्तिकेय की त्रिमुखी मूर्ति प्राप्त हुई है ।[99] एक दूसरी मिलती-जुलती तीन सिर वाली कार्त्तिकेय की मूर्ति रोधा के मन्दिर के ताख में है ।[100] इस प्रकार के उदाहरण में तीन दिखते सिर छः सिरों के सुझाव स्वरूप हैं । पीछे के तीन सिर दिखलायी नहीं देते हैं ।

राजस्थान के दक्षिणी-पश्चिमी भाग के हथियार नामक स्थान से कार्त्तिकेय की एक दो भुजा वाली मूर्ति प्राप्त हुई है ।[101] मूर्ति के बायें हाथ में शक्ति है तथा दायें हाथ में रसभरा फल है । उनका वाहन मयूर बायें पैर के पास है । यह मूर्ति सामल जी की कार्त्तिकेय की समकालीन मूर्ति से किसी भी प्रकार कम नहीं है ।[102] सामलजी की मूर्ति गुप्तकाल की मूर्तियों में कुछ अधिक सुन्दर है ।[103] इसमें यह दिखलाया गया है कि कार्त्तिकेय अपने दायें हाथ में एक लम्बी शक्ति तथा बायें हाथ में कुक्कुट पकड़े हुए हैं । कमर में धोती और अपना हार तथा ऊपरी नग्न शरीर में बाजूबन्द पहने हुए हैं । देवता का पुष्ट शरीर, मांसल बाँह और मजबूत कन्धे स्पष्टतः योद्धा रूप को प्रकट करते हैं । स्थिर निश्चल मुद्रा मूर्ति के मांगलिक विभूषण आदि सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से एक सुन्दर रचना है ।

बड़ौदा से कार्त्तिकेय की एक मूर्ति प्राप्त हुई है जो सीधी खड़ी है । मूर्ति का सिर खण्डित है ।[104] देवता के बायें हाथ में कुक्कुट और दायें हाथ में उनका प्रिय आयुध शक्ति है । वाहन मयूर पीछे अंकित है । विशेष ध्यान देने वाली बात यह है कि घुटनों तक लटकने वाली लम्बी माला गर्दन में लटकती हुई दिखलाई दे रही है । कार्त्तिकेय की मूर्तियाँ बड़ौदा के समीप स्थित कपूरी[105] और कर्वन[106] से भी प्राप्त हुई हैं ।

गुप्तोत्तर काल की अनेक मूर्तियाँ उत्तरी भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त हुई हैं । कार्त्तिकेय की दो मूर्तियाँ हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा से बारह किमी० दूर मसरूर के एकाश्म मन्दिर से प्राप्त हुई हैं जो भगवान विष्णु को समर्पित है ।[107] एक अन्य मूर्ति में विष्णु, इन्द्र, गणेश और दुर्गा के साथ कार्त्तिकेय मुख्य मूर्ति के रूप में चित्रित हैं ।[108] दूसरी मूर्ति मन्दिर से थोड़ीहीदूर पर खुदाई करते हुए प्राप्त हुई है ।[109] मूर्ति का ऊपरी भाग क्षतिग्रस्त है । चतुर्भुजी मूर्ति का एक हाथ वरद मुद्रा में और दूसरा अभय मुद्रा में है । शेष दो भुजायें क्षतिग्रस्त हैं । उन हाथों में क्या धारण किये थे इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । हरग्रीब्ज ने मन्दिर को आठवीं शताब्दी ईसवी का बतलाया है ।[110]

विभिन्न परिधानों और जंगली कुक्कुट हाथ में लिये हुए कार्त्तिकेय की एक छ: सिर और बारह भुजा वाली मूर्ति नागपुर संग्रहालय में है । इस मूर्ति में देवता को अपने वाहन मयूर पर बैठा हुआ नहीं दिखलाया गया है ।[111] उसकी आकृति बाईं ओर है, हाथों में धारण किये गए आयुध उसी प्रकार है जैसा मत्स्य पुराण में वर्णित है । यह मूर्ति भी मध्य काल की प्रतीत होती है ।

कन्नौज(उत्तर प्रदेश) से भी कार्त्तिकेय की मूर्ति प्राप्त हुई है । के० एम० मुन्शी के अनुसार अभी तक खोजी गई मूर्तियों में सर्वश्रेष्ठ है तथा ब्रह्मा और शिव को अभिषेक करते हुए दिखलाया गया है ।[112] पी० के० अग्रवाल ने भी कार्त्तिकेय की मूर्ति के बायें शिव का उल्लेख किया है ।[113] बी० एन० शर्मा के कथनानुसार अगर एक मिनट ध्यान से मूर्ति को देखें तो पायेंगे कि ब्रह्मा और शिव दोनों ही किरीटमुकुट और वनमाला पहने हुए हैं ।[114] बायें हाथ में चक्र लिये हुए हैं जब कि दाहिना हाथ अदृश्य है । सामने के हाथों में घड़ा

लिए हैं । इसकी पहचान उत्तर प्रदेश से प्राप्त एक समकालीन मूर्ति से की जा सकती है जो वर्तमान समय में राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है । इस मूर्ति के बायीं ओर विष्णु की आकृति है जो कि सिर-हीन है । गले में 'एकावली' और 'वनमाला' पहने हैं ।[115] इसकी पुष्टि शिव पुराण से भी होती है जिसमें स्पष्टतः यह विवरण है कि बुद्धिमान हरि (विष्णु) ने अन्य देवताओं के साथ कुमार (कार्त्तिकेय) का अभिषेक किया ।[116] स्कन्द अपने वाहन 'प्रावणी' पर सवार हैं तथा बायें हाथ में शक्ति लिये हुए हैं । देवसेना और वल्लि, देवता की दोनों पत्नियाँ अगल-बगल में हैं । मूर्ति की तिथि सातवीं-आठवीं शताब्दी ई० निर्धारित की गई है ।

सारनाथ संग्रहालय में अग्नि की पत्थर की एक सुन्दर मूर्ति है जो कार्त्तिकेय के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है ।[117] यह मूर्ति सातवीं शताब्दी ईसवी के पहले की नहीं हो सकती है । इस मूर्ति में अग्नि देव की जीभ के चारों ओर लपटें फैल रही हैं । दुर्भाग्यवश मूर्ति इतनी क्षत-विक्षत है कि लगभग देवता की सम्पूर्ण रूप रेखा कट पिट गई है । इसकी मुख्य पहिचान अग्नि की लपटें शेष हैं । मूर्ति सीधी मुद्रा में है । सिर पूर्णरूपेण चूर्ण है और भुजायें भी नहीं हैं । मूर्ति के साथ दो अनुचर भी हैं जिनकी आकृतियाँ नष्ट-भ्रष्ट हैं । मुख्य आकृति के दाहिनी ओर के परिचर के पीछे मयूर दृष्टिगोचर होता है । बायीं ओर का परिचर, यद्यपि बुरी तरह से क्षत-विक्षत है किन्तु पीछे कुक्कुट लिये हुए अन्दर की तरफ देख रहा है । प्रथम परिचर की आकृति निःसन्देह कार्त्तिकेय की है जिनका वाहन मयूर है और अग्नि के साथ उसकी घनिष्ठता संदेह से परे है । कुक्कुट, स्कन्द से सम्बन्धित है जो देवता का प्रतीक है । महाभारत में यह उल्लेख मिलता है कि देवसेना से विवाह के उपलक्ष में अग्नि ने स्कन्द को लाल कलँगी का एक विशाल कुक्कुट उपहार में दिया ।[118] यह

सत्य है कि कुक्कुट को कहीं भी कार्त्तिकेय के वाहन के रूप में नहीं प्रदर्शित किया गया है लेकिन इस पक्षी से उनका घनिष्ठ संबन्ध होने से दूसरे परिचर का तादात्म्य स्कन्द से स्थापित किया गया है । वर्तमान कलाकृति में, इसलिए कार्त्तिकेय अग्नि के साथ दो विभिन्न आकारों में मुख्य आकृति के साथ दिखलाये गए हैं । इस प्रकार यह मूर्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

उड़ीसा से कार्त्तिकेय की संभवतः प्राचीनतम मूर्ति धूधना से प्राप्त हुई है ।[119] मौसमी चपेट से मूर्ति क्षतिग्रस्त हो गई है और देखने में आदि कालीन प्रतीत होती है । एन० एन० वसु का कहना है कि मूर्ति मयूर पर सीधी बैठी है, कुक्कुट पर नहीं । देवता दाएँ हाथ में भाला {शक्ति} लिये हुए हैं किन्तु बायें हाथ का आयुध पहचान में नहीं आता है । मूर्ति का रख रखाव ठीक नहीं है और उसमें लालित्य नहीं है । उड़ीसा में कार्त्तिकेय मुख्यतः पार्श्वदेवता के रूप में मन्दिरों में स्थापित हैं । यद्यपि कभी-कभी सजावटी मूर्तियों में भी देखे जाते हैं । देबला मित्रा के अनुसार उड़ीसा में उनकी प्रतिमा, दो भुजाओं वाली मूर्ति से प्रारम्भ होकर आयुधों में सिर्फ भाला या मातुलुंग से चार बाहु रूप में दोनों बायें हाथों से कुक्कुट को स्पर्श किये हुए और एक दाहिने हाथ में भाला लिये हुए हैं ।[120] इस प्रकार कार्त्तिकेय की मूर्तियों को दो भागों में आसानी से वर्गीकृत कर सकते हैं - एक कुक्कुट के बिना और दूसरी कुक्कुट के साथ । पहली स्थिति में आकृति को बैठी या खड़ी मुद्रा में अंकित किया गया है । उसके हाथों में भाला, विजय पताका, शिखण्डक प्रकार की केश-सज्जा से युक्त है ।[121] बैठे हुए प्रकार में मूर्ति को या तो अपनी सवारी पर बैठा हुआ या छोटे पायदान वाली मंचिका {स्टूल} में मयूर चित्रित आकृति है, जबकि खड़ी मुद्रा में वाहन पीठिका पर दर्शाया गया है ।[122] भुवनेश्वर {उड़ीसा} के परशुरामेश्वर मन्दिर से प्राप्त दो भुजा वाली कार्त्तिकेय

की मूर्ति के बायें हाथ में लम्बा भाला है और दायें हाथ में विजय पताका है। छोटे पाये के स्टूल पर बैठा दिखलाया गया है। पीठिका पर उनके वाहन को साँप पकड़ते हुए दिखलाया गया है। पताका के साथ उनका सिर छत्र से सजाया गया है।[123] बाद के छोटे मन्दिर विविधता दर्शाते हैं जिसमें भाला को हाथ में धारण करने के बजाय पीठिका को सहारा दिये हुए दिखलाया गया है।[124] इस प्रकार की शैली का विस्तार से अंकन लिंगराज के मन्दिर में बाद की मूर्तियों में है जिसमें देवता को अपने वाहन पर सीधे बैठे चित्रित किया गया है और मयूर के पंख भी पीछे की ओर को फैले हुए हैं।[125] विशेष महत्वपूर्ण चित्रण यह है कि मूर्ति के साथ दो देवी शक्तियाँ हैं, दाहिनी तरफ ब्रह्मा[126] जबकि बायीं तरफ आंशिक प्रदर्शित परिवेश में अपने उलझे हुए बालों में देवता शिव दृष्टिगोचर हो रहे हैं। मध्य चित्र स्पष्टत: भूमरा चित्र के सदृश्य है। यामेश्वर मन्दिर के घेरे में एक छोटे मन्दिर में खड़ी मुद्रा में मूर्ति अपनी शिखण्डक केश सज्जा से युक्त है और पीठिका में मयूर है। दायें हाथ में विजयपताका किन्तु बायें हाथ में आयुध शक्ति नहीं है। कमर [कट्यावलम्बित][127] पर हाथ रखे चित्रित किया गया है। उत्तरेश्वर उदाहरण[128] में मूर्ति सीधी दाहिना हाथ कमर पर रखे हुये तथा बायें हाथ में लम्बा भाला लिये हुए है, एक युवती उनकी ओर भावुकतापूर्ण नजरों से देख रही है। मूर्ति मन्दिर के पश्चिमी आले में आसीन है। देवता के साथ बिना मयूर की मूर्ति बहुत सुन्दर दृष्टिगोचर होती है।[129]

कार्त्तिकेय की वर्ग - 2 की मूर्तियों का सफलता पूर्वक अंकन किया गया है। मूर्ति को एक ही तरह कुक्कुट के साथ प्रदर्शित किया गया है। सामान्यत: मूर्ति खड़ी मुद्रा तथा चार भुजा से युक्त है। कार्त्तिकेय अपने कुक्कुट के साथ प्रथम बार भुवनेश्वर [उड़ीसा] के मुक्तेश्वर मन्दिर में दिखलाई देते हैं जिसमें उन्हें

द्विबाहु, दाहिने पैर पर आसीन, बायें जंघे पर रखे हुए हैं ।[130] चिड़िया को नीचे लटकाये हुए चित्रित किया गया है । दाहिनी हथेली ऊपर को मुड़ी हैं और दाहिनी ओर मयूर प्रदर्शित है ।

पुरी (उड़ीसा) से प्राप्त कार्त्तिकेय की द्विबाहु मूर्ति वर्तमान समय में लन्दन के एक गैर सरकारी संग्रहालय में सुरक्षित है ।[131] मूर्ति को थोड़ी झुकी हुई मुद्रा में चित्रित किया गया है । कुक्कुट पर स्थित उनका बायाँ हाथ (आंशिक अंग) जिसे बाई ओर खड़ी एक महिला परिचर ऊपर उठाये हुए है और बायाँ हाथ, जो कुछ टूटा है, संभवत: अपना प्रिय आयुध भाला धारण किये हुए हैं । मयूर अपना सिर पीछे को घुमाये हुए बायीं ओर को उड़ रहा है । कार्त्तिकेय की बहुत सी मूर्तियाँ कुक्कुट के साथ सीधी खड़ी प्रस्तुत की गई हैं । इन सभी मूर्तियों में उन्हें चार भुजाओं से युक्त अंकित किया गया है । मुख्यत: हाथों में धारण किये गए आयुध पूर्व की कला-कृतियों से भिन्न हैं । सिद्धेश्वर मन्दिर में शिखण्डक केश-विन्यास में कार्त्तिकेय खड़ी मुद्रा में प्रदर्शित किये गए हैं ।[132] चारों भुजाएँ, दोनों बायें हाथ बाई ओर सुन्दर मुद्रा में खड़ी महिला हाथ में कुक्कुट थामे है जिस पर रखें है । अपना दाहिना हाथ थोड़ा ऊपर को उठाये हुए, वह हाथ भाला लिये (ऊपरी हिस्सा टूटा हुआ) है जबकि पिछला लटकता हुआ दाहिना हाथ हथेली के ठीक दाहिनी ओर मयूर पर वरद मुद्रा में है । पाणिग्रही के अनुसार देवता के चारों हाथों में उनके पहचान के अस्त्रों 'बीज पूरक' और शक्ति दोनों स्पष्ट नहीं है ।[133] पूर्व वर्गीकरण में जिन हाथों में 'बीजपूरक' का वर्णन किया गया है, उन्हें 'वरद' मुद्रा में दिखलाया गया है, दूसरा हाथ कुक्कुट का स्पर्श कर रहा है । दो अतिरिक्त हाथों में गदा या त्रिशूल और डमरू धारण किये हुए हैं ।[134] इससे यह आभास मिलता है कि पाणिग्रही द्वारा विवरण में दिये गए आयुध पूर्णरूपेण

सुरक्षित नहीं हैं ।[135] इसका ऊपरी भाग बुरी तरह क्षत-विक्षत है । इस प्रकार देवता का आयुध गदा की अपेक्षा भाला होना चाहिए, पाणिग्रही के सुझाव के अनुसार गदा नहीं । आर0 पी0 चन्द ने भुवनेश्वर [136] से एक तथा चौदोर[137] से दूसरा देवता के निरूपण के सम्बन्ध में मिलता-जुलता विवरण दिया है[138] लेकिन दुर्भाग्यवश पहले के दोनों दाहिने हाथ नहीं हैं, बाद के दोनों सामने के दाहिने हाथ क्षत-विक्षत हैं । आयुध भाला अवशेष है किन्तु गदा नहीं है । इस पर विचार करते हुए पाणिग्रही का सुझाव है कि वर्गीकरण - 2 में देवता भाला नहीं धारण किये हैं, स्वीकार्य नहीं है । दूसरे में कपिलेश्वर मन्दिर में चतुर्भुजी मूर्ति पूर्व उदाहरण से भिन्न है ।[139] स्पष्ट है कि महिला द्वारा लिये हुए कुक्कुट को सामने से बायें हाथ से स्पर्श कर रही है और सामने का हाथ (पिछला नहीं) वरद मुद्रा में नीचे लटक रहा है जिसे मयूर दायें से चोंच मार रहा है । पिछले दाहिने और पिछले बायें हाथ में क्रमशः त्रिशूल और ताशा (नक्कारा) लिये हुए है ।

पूर्व मध्यकाल में बंगाल में कार्तिकेय अत्यन्त लोकप्रिय देवता थे । बंगाल से कार्त्तिकेय की मूर्तियाँ बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं जो राज्य के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं । कलकत्ता विश्वविद्यालय को आशुतोष संग्रहालय में सुरक्षित मूर्तियों में से एक में द्विबाहु देवता को अपने वाहन मयूर पर आसीन दिखलाया गया है ।[140] वह बायें हाथ में भाला लिये हुए है जबकि दायाँ हाथ घुटनों पर स्थित है । यद्यपि मूर्ति बहुत छोटी है (मात्र 25 सेमी) फिर भी अत्यन्त सुन्दर है । यह मूर्ति वर्तमान बंगलादेश के दीनाजपुर जिले से प्राप्त हुई है [141] जिसका समय दसवीं शताब्दी के आस-पास का है ।

आशुतोष संग्रहालय में कालीग्राम राजशाही से कार्त्तिकेय की चतुर्भुजी सुन्दर लम्बे आकार (75 सेमी ऊँची) की मूर्ति है ।[142] मूर्ति टूटी हुई है ।

सवारी मयूर का सिर नहीं है । पिछले दायें हाथ में प्रिय आयुध भाला है जबकि बायाँ हाथ अभय दान देने की मुद्रा (अभय मुद्रा) में है और सामने का बायाँ हाथ कोहनी पर स्थिर है । यह मूर्ति ग्यारहवीं शताब्दी की है ।

एक अन्य मूर्ति आशुतोष संग्रहालय में सुरक्षित है, यह मूर्ति कहाँ से प्राप्त हुई है, ज्ञात नहीं है ।[143] मूर्ति के सभी हाथ भग्न हैं और उन हाथों में क्या है, कुछ नहीं कहा जा सकता है । बनावट की दृष्टिकोण से मूर्ति दसवीं शताब्दी ईसवी की प्रतीत होती है ।

दीनाजपुर से प्राप्त दो भुजाओं और एक मुखी स्वामी कार्त्तिकेय की मूर्ति मयूर पर आसीन आकर्षक हथेलियों सहित पुरातत्व विभाग, पश्चिमी बंगाल, कलकत्ता में सुरक्षित है ।[144] दुर्भाग्यवश मूर्ति के दोनों हाथ नहीं हैं । उत्तरी बंगाल में बहुत रूचि से देवता को चार भुजीय चित्रित किया है ।[145] विस्तृत चित्रण में मूर्ति को 'महाराजलीला' मुद्रा में वाहन मयूर के पीछे पंखों और पार्श्व में द्विगुणित कमल दल पर सप्तरथ पर आसीन है । पिछले दाहिने हाथ में भाला और सामने वाले दाहिने हाथ में 'बीजपूरक' लिये हुए हैं दो महिला परिचारिकायें दोनों ओर चौरी लिये हुए हैं जो संभवत: उनकी दो पत्नियाँ हैं । एन० जी० मजूमदार के कथनानुसार लावण्यमयी मुद्रा में और शान्ति का अनुभव करते हुए स्वप्निल आँखें बंगाल कला स्कूल की एक सुन्दर कृति है ।[146] रंग-ढंग से यह कला कृति बारहवीं शताब्दी ईसवी की प्रतीत होती है ।[147]

कार्त्तिकेय की एक बुरी तरह से क्षतिग्रस्त मूर्ति बिहार प्रान्त के सिंहभूम जिला से प्राप्त सम्प्रति राजशाही संग्रहालय में है ।[148] बलुआ पत्थर पर बनी यह मूर्ति एक सिर वाली और द्विबाहु दाहिने हाथ में आयुध जो कि भग्न मयूर के ऊपर स्पर्श किये हुए चित्रित है । यह कलाकृति संभवत: बंगाल से

प्राप्त किसी भी कार्त्तिकेय की मूर्ति से पुरानी है । राजशाही जिले के देवपारा से प्राप्त, राजशाही संग्रहालय में सुरक्षित, स्वामी कार्त्तिकेय की बलुआ पत्थर की काई लगी मूर्ति है ।[149] देवता इसमें सुन्दर मयूर जिसके पंख फैले हुए हैं, की पीठ पर बैठे हुये हैं । देवपारा से कार्त्तिकेय की दूसरी मूर्ति भी प्राप्त हुई है ।[150]

बंगलादेश के ढाका जिले के अब्दुलपुर के वैष्णव मठ में कार्त्तिकेय की एक प्रतिमा एन० के० भट्टशाली ने खोजा था ।[151] यह काले रंग के बेसाल्ट पत्थर पर बनी है । इस प्रतिमा में देवता अपने प्रिय वाहन मयूर की पीठ पर महाराज लीला मुद्रा में बैठा हुआ है । मयूर के पंख फैले हुए हैं, मूर्ति के पीछे फैला प्रभामण्डल है । द्विबाहु देवता के दायाँ हाथ अभयमुद्रा में और बायाँ हाथ भाला धारण किये हुए हैं । सिर पर एक छत्र है ।

मुर्शिदाबाद के रघुनाथ गंज के आधुनिक मन्दिर में कार्त्तिकेय की द्विबाहु मूर्ति है ।[152] मूर्ति के दाहिने हाथ में भाला है जबकि बायें हाथ में कुक्कुट है । यह मूर्ति मत्स्य पुराण में उल्लिखित द्विबाहु मूर्ति के समान है । यद्यपि मौसम की चपेट से मूर्ति प्रभावित है फिर भी यह कला का एक सुन्दर नमूना है । मूर्ति कहाँ से प्राप्त हुई है, यह अज्ञात है । संभवत: नजदीक से ही कहीं से प्राप्त हुई होगी और बाद में मन्दिर में स्थापित की गई । यह मूर्ति पूर्व मध्यकालीन है ।

पाल कालीन कार्त्तिकेय की एक प्रस्तर मूर्ति भागलपुर (बिहार) जिले के सुल्तानगंज से 13 किमी० दूर शाहकुण्ड पहाड़ी से प्राप्त हुई है । देवता को मयूर पर जिसके दोनों पंख फैले हुए हैं, सवार दिखलाया गया है । मूर्ति द्विबाहु है: बायें हाथ में भाला लिए है और दायें हाथ में रसभरा फल (मतुलुंग) है । देवता सुन्दर बघनख हार धारण किये हैं । इस कलाकृति की तिथि ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी ई० के निकट है ।[153]

हैहयों शासकों की राजधानी, प्राचीन त्रिपुरी के आधुनिक गाँव तेवट के खेरमई से कार्त्तिकेय की बारह भुजा वाली मूर्ति प्राप्त हुई है ।[154] आर० डी० बनर्जी के अनुसार संभवतः मन्दिर का निर्माण कर्णदेव के शासन काल या उसके किसी उत्तराधिकारी के समय में हुआ था । यद्यपि यह मूर्ति क्षत - विक्षत है किन्तु खेरमई से प्राप्त कलात्मक कृतियों में यह सुन्दरतम कृति है । मूर्ति को समतल पर सीधी खड़ी मुद्रा में बनाया गया है और उनका वाहन मयूर पीछे दिखलाया गया है । यह देवता की त्रिमुखी ﴾दो सिर नहीं दिखलाई देते हैं ﴿ मूर्ति है । सभी बारह हाथ भग्न हैं । एक महिला एक माला लिये हुए एक तरफ प्रदर्शित की गई है । मूर्ति को सुन्दर ढंग से गढ़ा गया है । अन्य चार महिला परिचारिकाएँ भी वहाँ हैं । वे सभी आकृतियाँ भी क्षत-विक्षत है । शैली की दृष्टि से यह मूर्ति इस देवता की अन्य मूर्तियों से पूर्णरूपेण भिन्न हैं ।

रीवा ﴾ मध्य प्रदेश﴿ के महाराजा के महल के सामने गद्दी के महान तोरण में कार्त्तिकेय की आकृति दर्शनीय है ।[155]आर० डी० बनर्जी के अनुसार यह तोरण किसी विशाल शिव मन्दिर का एक अंग या भाग है जिसे कलचुरि नरेश युवराज प्रथम ने बनवाया था । मूर्ति को छः सिरों वाली प्रतिमा के रूप में बनाया गया है । इस आकृति की खास बात यह है कि इसके दस हाथ हैं, यह आम्र वृक्ष से घिरे पेड़ के नीचे खड़ी है । इसके कई हाथ टूटे हुए हैं । एक हाथ में कमण्डल है और दूसरे हाथ में धनुष बाण । दो दाहिने हाथों में एक में पक्षी ﴾कुक्कुट ?﴿ और एक में कमल नाल है ।

मूर्तियों के माध्यम से कार्त्तिकेय को ब्रह्मशास्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है । गुर्जर प्रतिहारों के समय की एक सुन्दर मूर्ति ग्वालियर संग्रहालय में सुरक्षित है । इसमें स्वामी कार्त्तिकेय को देवी शिक्षक के रूप में ऊपरी दाहिने हाथ में पुस्तक लिये हुए दिखलाया गया है ।[156] वह अपने दायें हाथ में संभवतः

फल लिये हुए हैं, जिस पर उनका वाहन मयूर बड़े चाव से चोंच मार रहा है। जिस समय वह अपने ऊपरी दायें हाथ में फल लिये हुए हैं, उनका निचला बायाँ हाथ लटक रहा है। उनके बाल सुन्दर शिखण्डक के आकार में सजाएँ हुए हैं और वह अनेकानेक आभूषण पहने हुए हैं। उनके ठीक बाईं ओर महिला खड़ी है, उसकी दोनों हथेलियाँ अंजलि मुद्रा में जुड़ी हैं।

अल्मोड़ा (उत्तर प्रदेश) के बैजनाथ संग्रहालय में सुरक्षित कार्त्तिकेय की एक सुन्दर मूर्ति है जिसमें देवता को ब्रह्मा (शास्ता) के रूप में हाथ में ग्रन्थ लिये हुए अंकित किया गया है।[157] यद्यपि देवता के इस स्वरूप का समर्थन साहित्यिक साक्ष्य नहीं करते हैं, फिर भी उत्तरी भारत में ग्रन्थ लिये हुए उन्हें अंकित किया गया है। चार भुजाओं वाली मूर्ति, सामने के दायें हाथ में शक्ति, पिछले दायें हाथ में कमल, बायें में हस्तलिखित ग्रन्थ (पुस्तक) और सामने के बायें हाथ में मातुलुंग धारण किये हुए मयूर पर आसीन है और मयूर उस पर चोंच मार रहा है। पक्षी के पंख की चित्रकारी बड़ी सूक्ष्मता से की गई है। इसकी सजावटी उच्चकोटि की और अलंकारण से युक्त है। विद्याधर अंजलि बद्ध हाथ में माला लिये हुए प्रस्तर पट्ट पर ऊपर किनारे पर प्रदर्शित हैं। देवता के जटाजूट पुंजरूप में व्यवस्थित हैं। केश पुन्ज कन्धों के दोनों ओर लटक रहे हैं। दो अशोक पत्र कानों में जड़े हैं जिन में गोल-गोल कुण्डल हैं मोटी कंठी और दोहरी मणि का हार (मुक्ताहार) जिसके बीच में स्वास्तिक का निशान है, गले में पड़ा है। यह सुन्दरता इस सुन्दर मूर्ति में दृश्यमान है। देवता अपनी मजबूत बाँहों में दोहरा केयूर और कलाई में कंगन पहने हैं। कमर में करधनी दृष्टिगोचर हो रही है जबकि अन्दर के कपड़े की झालर योगपत्र जैसी पैर में दोनों ओर चित्रित है।

मध्य प्रदेश से प्राप्त मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है।[158] इस मूर्ति में भी स्वामी कार्त्तिकेय को 'ब्रह्माशास्ता' के रूप में दर्शाया

गया है कलाकृति में देवता को ग्रन्थ लिये हुए प्रदर्शित किया गया है । यह मूर्ति आठवीं - नवीं शताब्दी ईसवी की प्रतीत होती है ।

जयपुर [राजस्थान] के अम्बर संग्रहालय में दसवीं शताब्दी ईसवी की एक मूर्ति है ।[159] ब्रह्माशास्ता के समान इसके छः सिर [केवल तीन सिर दृश्यमान है] हैं । मूर्ति के ऊपरी दाहिने हाथ में भाला और बायें हाथ में हस्तलिपि ग्रन्थ है, ठीक पीछे खण्डितावस्था में मयूर है । देवता का काक पक्षीय केश और पक्षी का पिछला भाग ब्रह्माशास्ता कार्त्तिकेय होने की पहचान में सहायक है । दैवीय शिक्षक के रूप में स्वामी कार्त्तिकेय की यह मूर्ति पूर्व मध्यकाल की महत्वपूर्ण कृति है ।

कार्त्तिकेय को बहुत कम मूर्तियों में नृत्य करते हुए दिखलाया गया है । इस मुद्रा का चित्रण प्रारम्भिक मध्य काल [8 वीं - 9 वीं शताब्दी ईसवी] की एक मूर्ति में प्राप्त होता है जो वर्तमान समय में राजस्थान के नागौर जिले के कुआँ छोटी-खटाऊँ में है । इसमें छः सिर और छः बाहु वाले कार्त्तिकेय नृत्य करते हुए मयूर को दाना चुगा रहे हैं । मुख्य [केन्द्रीय] सिर के ऊपर पाँच अतिरिक्त सिरों की नक्काशी मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसी प्रकार की छः सिर वाली षण्मुख स्कन्द की आकृति का चित्रण आरम्भिक यादव सिक्कों में है ।[160]

बिहार के नालन्दा जिले के राजौना का खण्डित भाग भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में सुरक्षित है ।[161] इसमें अर्जुन के प्रायश्चित्त और गंगा के अवतरण का दृश्य है । इस फलक में कार्त्तिकेय के साथ गणेश का सुन्दर चित्रण है ।

उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले [प्राचीन कार्त्तिकेयपुर] के गरुड़ मन्दिर के उत्तरी किनारे के केन्द्रीय ताखे [आले] में कार्त्तिकेय की एक मूर्ति है ।[162]

स्वामी कार्त्तिकेय को मयूर पर आसीन दिखलाया गया है । उनके छः मुँह (षडानन) हैं किन्तु हाथ केवल चार हैं । एक हाथ जो टूटा हुआ है, में भाला है और इसी प्रकार धारित आयुध दाहिने हाथों में से एक हाथ वरद मुद्रा में है । शेष दो हाथों में, एक में चक्र और एक फल तथा दूसरे में स्वभरा फल (मातुलुंग) है । यह मूर्ति पूर्व मध्यकाल की प्रतीत होती है । मूर्ति पर क्षेत्रीय प्रभाव परिलक्षित होता है अर्थात् मुखाकृति गोल और नाक चिपटी है । चेहरे पर पहाड़ी शालीनता स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है । निःसन्देह यह कला का अद्‌भुत नमूना है ।

स्वामी कार्त्तिकेय, जो दक्षिण भारत में सुब्रह्मण्य या मुरुगन के नाम से जाने जाते हैं, की दक्षिण भारत से अनेक महत्वपूर्ण मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं । संभवत: दक्षिणी भारत से कार्त्तिकेय की आरम्भिक मूर्ति आन्ध्र प्रदेश के गुन्टूर जिले के नागार्जुनीकोंड के विजयपुरी घाटी के पश्चिम से खुदाई के दौरान प्राप्त हुई थी ।[163] मूर्ति में इक्ष्वाकुओं (तीसरी-चौथी शताब्दी ईसवी) का समय अंकित है । इस आकृति में देवता अचल मुद्रा में बायें हाथ को कमर पर रखे हुए और कुक्कुट लिए हैं । देवता का दाहिना हाथ जो खण्डित है, भाला लिये हुए दिखलाया गया है । मूर्ति का सिर भी पूर्णत: खण्डित है । खुदाई स्थल से कार्त्तिकेय का एक सिर प्राप्त हुआ है जो अपने में मूर्ति कला के चरमोत्कर्ष का द्योतक है ।[164]

बादामी गुफाओं में कार्त्तिकेय देवता की बहुत आकृतियाँ बनी हुई हैं ।[165] गुफा न0 - । की दीवाल में महिष मर्दिनी की मूर्ति चित्रित है । इस मूर्ति के दूसरी तरफ देवता की एक सिरवाली और द्विबाहु सुन्दर मूर्ति बनी हुई है । इसमें देवता को अपने वाहन मयूर पर बैठा हुआ दिखलाया गया है

गुफा न0 – 4 में दूसरी मूर्ति बरामदा में दीवाल पर मयूर के बगल में सीधा खड़ा दिखलाया गया है । उसी बरामदे के दूसरे खम्भे में देवता की दूसरी मूर्ति है । गुफा नं0 4 के 'ई' आकृति के गलियारे में भी कार्त्तिकेय को मयूर के साथ चित्रित किया गया है । दूसरी ओर उन्हें परिवरों के साथ प्रदर्शित किया गया है । श्री एम0 के नारायण स्वामी अय्यर की व्यक्तिगत कांस्य की एक आधुनिक प्रतिमा है जिसमें स्कन्द के दाएं हाथ में दण्ड, बायां हाथ सिर पर रखे हुए, कमल पर खड़े हुए आच्छादित मुद्रा में दिखलाया गया है । मूर्ति कौपीन पहने हुए है और बचपन में धारण करने वाले परिधान से युक्त है ।

आरम्भिक चोल काल की क्षतिग्रस्त बाल सुब्रह्मण्य की मूर्ति दक्षिण में स्वामी कार्त्तिकेय का प्रतिनिधित्व करने वाली सबसे पुरानी मूर्ति है ।[166] वर्तमान समय में यह मूर्ति बाल सुब्रह्मण्य मन्दिर में स्थापित है । यह मन्दिर राजकेशरी, जिन्हें आदित्य चोल (871-907 ईसवी) के नाम से जाना जाता है, द्वारा निर्माण कराया गया था ।[167]यह मूर्ति चार भुजाओं वाली है, दैवीय प्रतिभा को प्रकट करती है । इसके अन्य दो हाथों में, एक में पुष्प और एक में भाला (शक्ति) है जबकि अन्य हाथों में मौजूद आयुधों की पहचान नहीं हो पाती है ।

तिरूप्पलत्तुरई के शिव में कुमार की एक चार भुजा वाली मूर्ति है । यह मूर्ति खड़ी मुद्रा में है और पिछले दायें हाथ में शक्ति और बाएं में वज्र, सामने के दाए एवं बायें हाथ क्रमशः अभय एवं वरद मुद्रा में हैं ।[168] शक्ति आयुध सामने की दाहिनी भुजा में है ।

कुम्भकोणम् के नागेश्वर स्वामी मन्दिर में सुब्रह्मण्य की मूर्ति पूर्व वर्णित मूर्तियों के समान ही है । [169] मूर्ति में देवता के साथ उसकी दोनों

पत्नियाँ देवसेना और महावल्लि वाहन मयूर पर उनके पीछे खड़ी एवं बायी ओर को मुँह किये हुए प्रदर्शित हैं । कुमार तन्त्र के अनुसार महावल्लि देवता के दाहिनी ओर हाथ में कमल लिये हुए तथा देवसेना दाहिने हाथ में 'नीलोत्पल' लिये खड़ी होना चाहिए ।

तिरूवोरियर में भी सुब्रह्मण्य की अत्यन्त सुन्दर मूर्ति स्थापित है ।[170] इसमें भी देवता अपनी दोनों पत्नियों और वाहन के साथ हैं । कुम्भकोणम में देवता की दूसरी मूर्ति भी पहली दो मूर्तियों जैसी सुब्रह्मण्य की है ।[171] अन्तर सिर्फ यह है कि इस मूर्ति में वज्र के स्थान पर बायें हाथ में कुक्कुट है । इस मूर्ति के साथ भी दोनों पत्नियाँ हैं किन्तु वाहन मयूर की अनुपस्थिति संदिग्ध है । सुब्रह्मण्य अपनी पत्नियों के साथ त्रिवेन्द्रम के कला स्कूल में हाथी दाँत पर बड़ी कलाकारी से चित्रित है और बिल्कुल पत्थर की मूर्ति के समान है ।[172] चार भुजा वाली अति सुन्दर सुब्रह्मण्य की मूर्ति तिरुवोरियर में है ।[173] कुम्भकोणम की एक पत्थर की मूर्ति में सुब्रह्मण्य स्वामी को वाहन मयूर पर टाँगे फैलाकर बैठे हुए चित्रित किया गया है जिस में दाहिना पैर लटक रहा है और बायीं पैर मुड़ा हुआ है ।[174] शिखि वाहन मूर्ति में देवता को पिछले हाथों में शक्ति और वज्र धारण किये हुए दिखलाया गया है और सामने के हाथ वरद एवं अभय मुद्रा में हैं ।

तिरूचिरापल्ली के समयपुरम से प्राप्त एक प्रस्तर-मूर्ति में स्वामी सुब्रह्मण्य को मयूर की पीठ पर बैठे हुए दिखलाया गया है ।[175] एक मुखी और चार भुजा से युक्त देवता अपनी पत्नी वल्लि और देवसेना के साथ हैं । कार्त्तिकेय की दूसरी दक्षिण भारतीय मूर्ति म्यूज़ गाइमेट में है ।[176] एक सिर एवं चार भुजा से युक्त देवता मयूर जो कि मुँह में सर्प पकडे है पर सवार है । देवता के दो हाथों में वज्र एवं त्रिशूल है तथा दो हाथ अभय और वरद

स्वामी सुब्रह्मण्य की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मूर्ति मद्रास संग्रहालय में है जिसमें देवता मयूर पर आसीन हैं और अपने बगल में बैठी देवी का दाहिने हाथ से आलिंगन कर रहे हैं ।[177] उनके बायें हाथ में धनुष है । देवी स्वामी (देवता) का आलिंगन बायें हाथ से किये हैं तथा दाहिने हाथ में धनुष बाण लिये हैं । सुब्रह्मण्य की यह मूर्ति सेनापति की मुद्रा में है । चार भुजा वाली सुब्रह्मण्य की तिरूविदईकली की सुन्दर मूर्ति सुब्रह्मण्य के देव सेनापति के आकार की मूर्ति है ।[178] देवता के सिर के चारों ओर प्रभा मण्डल है, धनुष बाण और वज्र लिये हुए हैं ।

पत्तिश्वरम् के शिव मन्दिर में सुब्रह्मण्य की एक षण्मुखी और बारह बाहु की सुन्दर मूर्ति है ।[179] देवता के दाएं एवं बाएं हाथ अभय एवं वरद मुद्रा में सन्मुख चित्रित है जबकि एक में शक्ति, टंका, चक्र, खड्ग और मूसल (या पाश) लिये है तथा वज्र, धनुष बाण और शंख । स्वामी सुब्रह्मण्य के पीछे उनका वाहन मयूर कमल की ओर मुँह किये हुए बिल्कुल नेल्लोर कांस्य प्रतिमा जैसा है ।[180] बारह हाथों में आयुधों के अतिरिक्त अलग से बने शक्ति आयुध भी भुजाओं के पीछे लिये हुए हैं । कमल के ऊपर तिरछी झुकी हुई देवता की मूर्ति इस प्रकार बनी हुई है कि देखने में छः मुँह पीठिका से लगते हैं ।

षण्मुख सुब्रह्मण्य की एक प्रस्तर प्रतिमा वोरीस्टर कला संग्रहालय में है ।[181] सुब्रह्मण्य के षण्मुख आकार में इस मूर्ति में भी बारह भुजाएं हैं । इसकी सुदृढ स्थिरता की तुलना सुन्दर उत्तर भारतीय मूर्तियों से की जा सकती है । यह सिर्फ पुजारियों की पूजा की प्रतिमा है, युद्ध देवता का प्रतिनिधित्व करने वाली देवता की ही नहीं । मूर्ति की सबसे उल्लेखनीय विशेषता इसके विपरीत दिशा में तीन सिरों का प्रस्तुतीकरण है । मूर्ति को सुन्दर आकार देते हुए मयूर के पंखों को बड़ी सावधानी से क्रमानुसार सजाया संवारा गया है ।

राजमुन्दरी जो पूर्वी चालुक्यों की राजधानी प्राचीन पुष्पगिरि थी, से ग्रेनाइट पत्थर की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है ।[182] यह सुब्रह्मण्य के षण्मुख स्वरूप का दिग्दर्शन कराती है । संयोग से सभी आयुध त्रिशूल, गदा, लांगुली, वज्र, धनुष , फरसा, पाश, और घंटा सहित बारह भुजाएँ सुरक्षित है । एक हाथ वरद मुद्रा में है तथा एक में कुक्कुट लिए हुए हैं । मूर्ति किरीट युक्त है और इसके ललाट से देवी प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है । इस पर शक सम्वत् 994 §1072 ई0§ अंकित है । इस प्रकार यह मूर्ति ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी के उत्तरार्द्ध की रही होगी । नेरूर मन्दिर के अन्दर सुब्रह्मण्य की एक सुन्दर षण्मुखी बारह भुजा वाली आकर्षक मूर्ति है । षण्मुख सुब्रह्मण्य को अर्द्धपर्यंक मुद्रा में वाहन मयूर की पीठ पर बैठे हुए दिखलाया गया है जो दाहिनी ओर देख रहा है ।[183] प्रसन्न मुद्रा में षण्मुख सुब्रह्मण्य को बायीं ओर देखते हुए मयूर पर आसीन अर्द्धपर्यंक मुद्रा में दिखलाया गया है ।[184]

एलोरा की गुफा नं0 21 में एक अत्यन्त सुन्दर कलाकृति है ।[185] सुब्रह्मण्य को एक मुख तथा चार भुजा से युक्त प्रदर्शित किया गया है । उनका सामने का दायाँ हाथ टूटा हुआ है किन्तु देखने में लगता है कि वह अपना प्रिय आयुध भाला §शक्ति§ लिये हुए हैं जिसकी पटटी के किनारे उड़ते हुए विद्याधर युगल बाईं तरफ दृष्टिगोचर होते हैं । उनका दाहिना हाथ पुट्ठे पर है । वह सामने के बायें हाथ में कुक्कुट लिये हुए हैं और बायी ओर खड़े मयूर को प्यार से सहला रहेहैं । राव के कथनानुसार सुब्रह्मण्य के एक तरफ अजमुखी परिचर है [186] किन्तु बनर्जी के कथनानुसार वह आकृति गर्दभ मुखी परिचर की है ।[187] राव के अनुसार अज मुखी रूप में दक्ष-प्रजापति हैं ।[188] या महाकाव्यों में वर्णित अज-मुखी नैगमेय हो सकता है §देवता स्वयं का प्रतिरूप छागवक्त्र [189]§ । दायीं तरफ गर्दभ-मुखी आकृति की पहचान बनर्जी महोदय ने

स्कन्द पार्षद से की है ।[190] सुब्रह्मण्य यज्ञोपवीत एवं बहुत से आभूषण धारण किये हुए हैं । पट्टी के सिरे पर विद्याधर जोड़े उड़ते हुये दिखलाए गये हैं ।

मद्रास के समीप तिरूप्परंकुरम के शिव मन्दिर के सामने मण्डप में स्वामी कार्त्तिकेय की अत्यन्त सुन्दर आकृति है ।[191] इसमें देवता को इन्द्र से जल-पात्र द्वारा जल ग्रहण करने के लिए हाथ आगे बढ़ाये हुए, दाहिनी तरफ खड़ा प्रदर्शित किया गया है । देवसेना देवता के बायी तरफ खड़ी हैं और इन्द्र देवी के पीछे खड़े हैं । देवता सामने के बायें हाथ में कमल और अपना विशेष आयुध भाला पीछे वाले बायें हाथ में लिये हैं । पीछे वाले दाहिने हाथ का आयुध स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता है । इन्द्र अपने पिछले हाथों में टंक और वज्र लिए हैं । ब्रह्मा, जिनकी आकृति पीठिका पर उत्कीर्ण है, देवसेना के साथ में पुरोहित के रूप में प्रदर्शित किये गए हैं । बनर्जी के कथनानुसार देवसेना - कल्याण सुन्दर मूर्ति सुब्रह्मण्य का विवाह देवसेना कल्याण सुन्दर मूर्ति के रूप में शिव की अनुकृति है ।[192] देवसेना, पार्वती का स्थान ग्रहण करती है, इन्द्र विष्णु के रूप में वधू-पक्षीय नजर आते हैं , किन्तु ब्रह्मा महोत्सव के पुरोहित के रूप में और वर के रूप में सुब्रह्मण्य हैं । दक्षिण भारत में शिव के विषय में यह कहा जाता है कि राजकुमारी मीनाक्षी उनकी प्रिय पत्नियों में से है । इसी प्रकार कार्त्तिकेय की दक्षिण भारतीय पत्नी वल्लि या महावल्लि जिन्हें देवताओं की टोली में और उनकी अत्यन्त प्रिय पत्नी देवसेना को कुछ स्फटिक भू-आकृतियों में तथा कांसे की मूर्तियों में दिखलाया गया है । इस प्रकार की आकृतियों को वल्लि कल्याण सुन्दरमूर्ति भी कहा जा सकता है ।

राक्षस तारक को वश में करने की मुद्रा में सुब्रह्मण्य का आरम्भिक चित्रण ऐहोल के हुचिमल्लिगुड़ी मन्दिर में है ।[193] मयूर पर आसीन सुब्रह्मण्य धराशायी तारकासुर पर भाले से प्रहार कर रहे हैं । भाला दायें हाथ में लिये

हुए हैं । देवता के बायें हाथ में वज्र है । सुब्रह्मण्य के दोनो ओर आलीढ़ मुद्रा में दो देवगण ऊपर उड़ रहे हैं और देवता की युद्ध कला की प्रशंसा कर रहे हैं । पट्टी के ऊपर कोनों में दोनों तरफ उपहार एवं पुष्पाहार लिये गन्धर्व उड़ रहे हैं । राक्षस का देवता के ऊपर आक्रमण का चित्रण बहुत ही सजीव है । यह भी ध्यातव्य है कि सुब्रह्मण्य का तारकारि स्वरूप कुमारतन्त्र या श्रीतत्वनिधि में वर्णित दृष्टिकोण से मेल नहीं खाता है ।

दक्षिण भारतीय पल्लव एवं चोल काल की कला में स्कन्द (कार्त्तिकेय) शिव - पार्वती के बीच में बैठे हुये एक छोटे शिशु के रूप में दिखलाये गए हैं, उनका यह स्वरूप सोमस्कन्द-मूर्ति के रूप में जाना जाता है । पत्थर की नक्काशी में छोटा शिशु-पार्वती के एक घुटने पर बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है । महाबलिपुरम में इस प्रकार की अनेक कलाकृतियां हैं ।[194] धातु की मूर्तियों में शिशु स्कन्द को या तो खड़ी मुद्रा में या प्रायः माता-पिता के बीच नृत्य करते हुए दिखलाया गया है । गोपीनाथ राव ने कांस्य की दो मूर्तियों का वर्णन किया है, (एक शिव मन्दिर मदौर[195] एवं दूसरी नेल्लोर [196]) । इन दोनों उदाहरणों में शिशु स्कन्द को नाचते हुए चित्रित किया गया है । इस प्रकार की सुन्दर कलाकृतियां मात्र दक्षिण भारत से ही प्राप्त हुई हैं, उत्तर भारत में इस प्रकार की कांस्य या प्रस्तर प्रतिमाएं अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं ।

उत्तर भारतीय मूर्ति कला की भांति दक्षिण भारत मे भी स्वामी कार्त्तिकेय को ब्रह्मशास्ता (दैवीय शिक्षक) के रूप में प्रस्तुत किया गया है । गोपीनाथ राव ने ब्रह्मशास्ता सुब्रह्मण्य का एक भी उदाहरण नहीं दिया है । जे० डुबिया के अनुसार महाबलिपुरम् की तीसरी आकृति जो पल्लव राजा महेन्द्र वर्मन प्रथम के काल की है, में सुब्रह्मण्य को ब्रह्मशास्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।[197] उनके द्वारा निर्देशित ब्रह्मशास्ता महाबलिपुरम् के धर्मराज

रथ के प्रथम तल पर भी प्रस्तुत किया गया है ।[198] डुब्रिया की मान्यता को गोपीनाथ ने भी स्वीकार किया है ।[199] चट्टान के पीछे त्रिमूर्ति के साथ मयूर की आकृति उत्खचित है । सुब्रह्मण्य के वाहन मयूर के विषय में डुब्रिया का सुझाव आधारहीन नहीं है । एच0 के0 शास्त्री के अनुसार आकृति सूर्य देवता की है ।[200] किन्तु आकृतियाँ ब्रह्मशास्ता के विवरण से पूर्णरूपेण मेल खाती हैं । यदि पहचान स्थापित हो जाती है तो यह मूर्ति तमिल भाषी क्षेत्र में सुब्रह्मण्य की प्राचीनतम मूर्ति होगी ।

ब्रह्मशास्ता के रूप में प्रदर्शित सुब्रह्मण्य की बहुत सी मूर्तियों का उल्लेख वी0 राघवन ने भी किया है ।[201] उनके मतानुसार मद्रास से 65 किमी दूर तिरुप्पोरूर के सुब्रह्मण्य मन्दिर में स्थापित मूर्ति सुब्रह्मण्यम के ब्रह्मशास्ता रूप को व्यक्त करती है ।[202] देवता के दो उठे हुये हाथों में अक्षमाला और कमण्डल, है जो ब्रह्मा का विशिष्ट लक्षण है । उनके दोनों ओर उनकी दोनों पत्नियाँ वल्लि और देवसेना हैं । ब्रह्मशास्ता की दूसरी मूर्ति कैलाशनवक्कम क्षेत्र से टी0 जी0 अर्वमूथन और सी0 शिवराममूर्ति ने प्राप्त किया था । यह स्थान मद्रास से 13 किमी0 दूर है । जिला तन्जौर के कुन्दरक्वायल में स्कन्द की पूजा ब्रह्मशास्ता के रूप में की जाती है ।

संदर्भ-संकेत

1- बृहत्संहिता, अध्याय 57, 41 वाराणसी, 1954

2- भविष्यपुराण, ब्रह्मपर्व, 132, 31• बम्बई, 1910

3- भट्टाचार्य, बी0 सी0, इण्डियन इमजेज, 1, पृ0 27• कलकत्ता और शिमला, 1910

4- रघुवंश, VI. 4.

5- विष्णुधर्मोत्तर, III अध्याय 27• VV.35 बम्बई, 1910

6- वही, III अध्याय, 7 V 6,

स्कन्दो विशाखश्च गुह: कर्त्तव्यश्च कुमारवत् ।
षण्मुखास्ते न कर्त्तव्यान मयूरगतास्तथा ।। 6
तुलनीय चतुर्भुजो हि भगवान्वासुदेव: सनातन:
प्रादुर्भूत कुमारस्त देवसेना निनिवया - " 7 "

7- शुक्ला, डी0 एन0, हिन्दू कैनन्स आँव आइकॉनोग्राफी पृ0 296 - 97• गोरखपुर, 1958

8- वही, पृ0 297

9- भट्टाचार्य, बी0 सी0, पूर्वोद्धृत, पृ0 26• कलकत्ता और शिमला, 1910

10- मत्स्य पुराण, अध्याय, 260•47, प्रयाग , सं0 2003•

11- मत्स्य पुराण, अध्याय, 260•46• उपर्युक्त

12- वही, अध्याय 260•50 उपर्युक्त

13- वही, अध्याय, 260•51• उपर्युक्त

14- शिव पुराण, कैलाश संहिता• 11•19-21, बम्बई, तिथिरहित

15- अग्नि पुराण, 50•27• कलकत्ता, 1903-04

16- राव, टी0 ए0 जी0 , ई0 एच0 आई0 II, पृ0 432 मद्रास, 1914, 1916

17- वही, पृ0 432 - 43

18- अग्रवाल, वी0 एस0, ए कैटलाग ऑव द ब्रह्मानिकल इमजेज इन मथुरा आर्ट, पृ0 IX ﴾ नां0 2949 ﴿

19- जर्नल यू0 पी0 एच0 एस0 जिल्द, XVI , प्लेट I पृ065 - 66

20- तुलनीय बाजपेयी, के0 डी0, मथुरा, प्लेट XXI

21 - अग्रवाल, बी0 एस0, उपर्युक्त, पृ0 नं0 ﴾1022﴿

22- अग्रवाल, पी0 के0 , स्कन्द - कार्त्तिकेय, पृ0 82, वाराणसी, 1967

23- तुलनीय जर्नल यू0 पी0 एच0 एस0, प्लेट, I , प्लेट, II ; बाजपेयी, के0 डी उपर्युक्त, पृ0 32, प्लेट 24

24- अग्रवाल, वी0 एस0 उपर्युक्त, पृ0 39 (नं0 2332); जे0 आई0 एस0 ओ0 ए

25- आई0 एच0 क्यू0 XXX, प्लेट, ii , 1954, पृ0 81

26- मत्स्य पुराण, अध्याय, 259. V 60. उपर्युक्त

27- जे0 आई0 एस0 ओ0 ए0 ,V पृ0 129

28- जर्नल यू0 पी0 एच0 एस0, XXII , पृ0 140

29- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1929-30, पृ0 132-33; प्लेट XXXI
जे0 आई0 एस0 ओ0 ए0, V, पृ0 13

30- बनर्जी, जे0 एन0, डी0 एच0 आई0, पृ0 116-18, कलकत्ता, 1956

31- कुमार स्वामी, ए0 के0, के0 आई0 आई0 ए0, पृ0 25, प्लेट VI 24

32- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1934-35, पृ0 31, प्लेट VIII

33- वही.

34- जे0 आई0 एस0 ओ0 ए0, V पृ0 129

35- आई0 एच0 क्यू0, XXX प्लेट, ii 1954, पृ0 81 और 82, प्लेट i

36- जे0 आई0 एस0 ओ0 ए0, XII पृ0 129

37- तुलनीय, ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1935-36, पृ0 35, प्लेट XI ए0

और जे0 आइ0 एस0 ओ0 ए0, Xiii पृ0 77

38- आई0 एच0 क्यू0. XXX पृ0 81-85

39- अश्तन, एल0 (सम्पा0), द आर्ट आँव इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ0 41,

लन्दन, 1947

40- अग्रवाल, पी0 के0 उपर्युक्त, पृ0 84, प्लेट X. उपर्युक्त

41- गोएत्ज, बुलेटिन आँव द बड़ौदा स्टेट म्यूजियम, जिल्द iii. ii, 1948,

प्लेट, लेख इरानियन आर बुद्धिस्ट डिटी

42- मार्शल, जे0, द बुद्धिस्ट आर्ट आँव गान्धार, पृ0 105, आकृति 143,

कैम्ब्रिज, 1960

43- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1906-07, प्लेट XXXii ; मार्शल, जे0 द बुद्धिस्ट आर्ट आँव गान्धार, पृ0 105, आकृति, 144, उपर्युक्त

44- तुलनीय, इन्गोल्ट, एच0, गान्धार आर्ट इन पाकिस्तान, आकृति, 340 और 344 न्यूयार्क, 1957

45- अग्रवाल, बी0 एस0, ए कैटलाग आँव द ब्रह्मानिकल इमजेज इन मथुरा आर्ट, पृ0 59 ‖ नं0 आकृति 38‖

46- वही, पृ0 60 ‖ नं0 126 ‖

47- वही, पृ0 59-60 ‖नं0 ৫· 57 ‖

48- वही, पृ0 60 ‖नं0 ৫· 58 ‖

49- अग्रवाल, वी0 के0, उपर्युक्त, पृ0 45 उपर्युक्त

50- वही

51- रूपम, नं0 21, 1925 ; कुमार स्वामी, ए0 के0, एच0 आई0 आई0 ए0, प्लेट XLVI , आकृति 175, लन्दन 1927 सरस्वती, एस0 के0 ए सर्वे आँव इण्डियन स्कल्पचर, प्लेट XXi· 93, कलकत्ता, 1953, बनर्जी, जे0 एन0 डी0 एच0 आई0, पृ0 366, प्लेट XVI 2·, कलकत्ता, 1956·

52- तुलनीय, रघुवंश Vi 4·

53- मजूमदार, आर० सी० ‹सम्पा०› द क्लासिकल एज, पृ० 520-21 प्लेट XX · 44, बम्बई, 1954·

54- सरस्वती, एस० के०, पूर्वोद्धरित, पृ० 137 आकृति 93, कलकत्ता, 1957

55- रूपम्, नं० 21, 1925· पृ० 41

56- वही,

57- शर, एस० ए०, गाइड टू द आर्क्यालाजी, सेक्शन, पटना म्यूजियम, पृ० 8, प्लेट V, पटना 1946

58- दिवाकर, आर० आर० ‹सम्पा०› बिहार थ्रू द एजेज, पृ० 305-06· प्लेट viii.l. नई दिल्ली 1959

59- सिन्हा, बी० पी०, भारतीय कला को बिहार की देन, पृ० 120 आकृति 76·, पटना, 1958

60- एम० ए० एस० आई० नं० 16 प्लेट 12 प्लेट xii.बी

61- वही·

62- मुन्शी, के० एम० सागा ऑव इण्डियन स्कल्पचर, प्लेट, 40 बम्बई, 1957

63- एन्युअल एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑव आर्क्यालाजिकल डिपार्टमेन्ट, ग्वालियर स्टेट, 1924 - 25 पृ0 10·

64- अग्रवाल, पी0 के0, स्कन्द - कार्त्तिकेय, पृ0 83· वाराणसी· 1967

65- वही·

66- सहाय, बी0 आइकोनोग्राफी ऑव माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डिटीज, पृ0 109 - 10· नई दिल्ली, 1975

67- तुलनीय, एम0 ए0 एस0 आई0, 16 प्लेट·xii बी·

68- पटना म्यूजियम आर्क्यालॉजी, नं0 6006, तुलनीय, परिषद पत्रिका पृ0 21, अक्टू0 1970·

69- ए कैटलॉग ऑव द आर्क्यालॉजिकल रैलिक्स इन द म्यूजियम ऑव द बेनीसागर, राजशाही , नं0 जी0 1/181·

70- सहाय, बी0 उपर्युक्त, पृ0 110· उपर्युक्त

71- जर्नल यू0 पी0 एच0 एस0, जिल्द· xxiii पृ0 206

72- सहाय, बी0 उपर्युक्त, पृ0 110· आकृति 20, उपर्युक्त

73- मिश्र, वाई0 ए गाइड टू वैशाली म्यूजियम, पृ0 40, वैशाली 1964

74- शर्मा, बी० एन०, विश्वेश्वरानन्द इन्डोलाजिकल जर्नल, viii.i-ii पृ० 211-13 और प्लेट, सहाय, उपर्युक्त, आकृति· 21

75- द्विवेदी, एच० एन०· ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला, पृ० 37· आकृति 53, ग्वालियर·

76- ई० आई०, xxvi पृ००।'5

77- तुलनीय, बनर्जी, डी० एच० आर्ई०, प्लेट xvii.1, उपर्युक्त, क्राम्रिश, एस०, इण्डियन स्कल्पचर इन द फिलाडेल्फिया म्यूजियम ऑव आर्क्यालाजी, प्लेट, और कलकत्ता, 1933

78- अग्रवाल, वी० एस०, उपर्युक्त, नं० 2019 उपर्युक्त

79- वाजनेयी, के० डी०, आर्क्योलाजी इन यू० पी००, प्लेट xvi लखनऊ, 1957; अग्रवाल, वी० एस०, हैण्ड बुक ऑव द स्कल्पचर्स इन द कर्जन म्यूजियम ऑव आर्क्योलाजी, मथुरा, पृ० 51 (नं० 2794), इलाहाबाद, 1940

80- जे० आई० एस० ओ० ए, v पृ० 129 (मथुरा म्यूजियम नं० 466)

81- अग्रवाल, वी० एस० उपर्युक्त, पृ० 51 - 52, उपर्युक्त, अग्रवाल, वी० एस० कैटलाग ऑव द ब्राह्मानिकल इमजेज इन द मथुरा आर्ट, पृ० 39-40

82- वही, पृ0 40

83- तुलनीय, राव, टी, ए0 जी0, ई0 एच0 आई0.ii. ii. पृ0 446, प्लेट CXXIV मद्रास, 1914-16 और अग्रवाल, वी0 एस0 उपर्युक्त, पृ0 40, उत्तर प्रदेश

84- काला, एस0 सी0 जर्नल यू0 पी0 एच0 एस0, एन0 एस0, II. ii, 1954, प्लेट VI.

85- अग्रवाल, वी0 एस0, उपर्युक्त, पृ0 46 (नं0 डी - 24)·

86- इण्डियन एन्टीक्वेरी, LXII, 1933, पृ0 231; आर्टस एशियाटिक्स, पेरिस, ii. i, 1955· आकृति पृ0 11 में

87- बनर्जी, जे0 एन0, डी0 एच0 आई0, पृ0 562· उपर्युक्त

88- अग्रवाल, वी0 एस0 उपर्युक्त, पृ0 40; तुलनीय, राव, उपर्युक्त, पृ0 446, प्लेट CXXIV·उपर्युक्त·

89- रामायण, I· 37

90- महाभारत, iii 229·

91- ललितकला, नं0 8, प्लेट, 24· आकृति 15; भारतीय विद्या, XX-XXI, पृ0 306 - 07, आकृति 8·

92- अग्रवाल, वी0 एस0, ललित कला में, नं0 8, पृ0 67

93- ललित कला, नं0 3-4, 1956-57· पृ0 109· पृ0L11 आकृति 1·

94- वही, पृ0 110, प्लेट L11 आकृति 2·

95- वही

96- राव, टी0 ए0 जी0, उपर्युक्त,][.ii, पृ0 436· उपर्युक्त

97- ललित कला, नं0 3-4· 1956-57· पृ0 110, आकृति 112 पृष्ठ पर

98- अग्निपुराण

99- ए0 एस0 आई0 (वेस्टर्न सर्किल), प्रोग्रेस रिपोर्ट, 1912, पृ0 56

00- शाह, यू0 पी0, स्कल्पचर फार्म समलजी एण्ड रोद सेधन, पृ0 66, बडौदा, 1960; मजूमदार, एम0 आर0 (सम्पा0) क्रोनोलाजी ऑव गुजरात, पृ0 204

01- ललित कला, नं0 3-4, 1955-57, पृ0 109-11·

02- शाह, यू0 पी0, उपर्युक्त, पृ0 66, उपर्युक्त जे0 आई0 एच0, IX प्लेट XV आकृति, 30 और 30 ए

103- वही

104- बुलेटिन आँव द बड़ौदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गैलरी, जिल्द Viii (1960-52) प्लेट, Viii शाह, यू0 पी0, उपर्युक्त, पृ0 85

105- बुलेटन आँव द बड़ौदा म्यूजियम एण्ड पि क्चर गैलरी, भाग Viii, i (1960-52) प्लेट Vii)

106- क्रोनोलाजी आँव गुजरात, पृ0 204

107- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1915-16. पृ0 46

108- वही, प्लेट XXXiii.

109- वही, प्लेट XXXII. सी.

110- वही, पृ0 46.

111- तुलनीय डिस्क्रिप्टिव लिस्ट ऑव इक्जीहिबिट्स एट द नागपुर म्यूजियम, पृ0 16, प्लेट V आकृति 6

112- मुन्शी, के0 एम0, वही, पृ0 14, प्लेट 42, बम्बई, 1957

113- अग्रवाल, पी0 के0, उपर्युक्त, पृ0 89 प्लेट XViii आकृति, ए

114- शर्मा, बी0 एन0 अभिषेक इन इण्डियन आर्ट, जर्नल आँव ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, XXi, 132, पृ0 109-110

115- वही,

116- शिव पुराण, रूद्र संहिता, 5•63• बम्बई, तिथिरहित

117- इण्डियन आर्क्योलॉजी, ए रिब्यू, 1955 - 56, प्लेट LXIX.

118- महाभारत, iii, 229

119- वसु, एन० एन०, द आर्क्योलॉजी सर्वे ऑव मयूरभंजन, जिल्द, 1•
आकृति• 6• कलकत्ता, 1911

120- मित्रा, देबला भुवनेश्वर, पृ० 22, नई दिल्ली, 1958

121- पाणिग्रही, के० सी० आर्क्योलॉजिकल रिमेन्स एट भुवनेश्वर, पृ० 127•
बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, 1892•

122- वही, पृ० 128

123- मित्रा, देबला, उपर्युक्त, पृ० 25, प्लेट III ए, उपर्युक्त, पाणिग्रही,
के० सी० उपयुक्त, आकृति 97• उपर्युक्त•

124- वही, पृ० 128• आकृति, 95, उपर्युक्त

125- वही, पृ० 128, आकृति 96•

126- वही, पृ० 128

127- वही, पृ0· 128, आकृति 98

128- वही, पृ0· 128

129- वही, पृ· 128

130- वही, पृ0 93 और 157· आकृति 99

131- बनर्जी, जे0 एन0, डी0 एच0 आई0, पृ0 366 प्लेट XVII. 1 उपर्युक्त

132- पाणिग्राही, उपर्युक्त, पृ0 129· आकृति 100· उपर्युक्त

133- वही, पृ0 129

134- वही, पृ0 129

135- वही, आकृति· 100

136- एम0 ए0 एस0 आई0, 44· प्लेट VIII. 4.

137- वही, प्लेट, VIII.4.

138- वही, प्लेट VIII , नं0 6 और 4

139- पाणिग्राही, उपर्युक्त, पृ0 129· आकृति 101, उपर्युक्त·

140- आशुतोष म्यूजियम, नं0 224

141- चटर्जी, ए0 के0, द कल्ट आँव स्कन्द-कार्तिकेय इन एन्शयन्ट इण्डिया, पृ0, 124· कलकत्ता, 1970

142- वही, पृ0 124

143- वही, पृ0 124

144- इण्डियन आर्क्योलाजी, ए रिव्यू, 1961-62, प्लेट CLIV. C.

145- एच0 बी0 आर0, I, पृ0 442, प्लेट XII · 32·

146- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1934-35, पृ0 79, प्लेट XXIV. d

147- तुलनीय, गुप्त, शक्ति एम00, फ्राम दैत्याज टू देवताज इन हिन्दू मैथालाँजी, प्लेट 17· बम्बई, 1973·

148- बसाक, आर0 जी0 और भट्टाचार्य, डी0 सी0, ए कैटलाँग आँव द आर्क्योलाँजी रेलिक्स इन द म्यूजियम आँव द वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, पृ0 12, राजशाही, 1919·

149- वही,

150- वही,

151- भट्टशाली, एन0 के0, आइकोनोग्राफी आँव द बुद्धिस्ट एण्ड ब्रहमानिकल स्कल्पचर्स इन ढाका म्यूजियम, पृ0 147, प्लेट LVII.a ढाका, 1929

152- बअर्जी, ए0 के0 उपर्युक्त, पृ0 125• उपर्युक्त

153- बिहार डिस्ट्रिक गजेटियर ﴾भागलपुर डिस्ट्रिक﴿ प्लेट IX.

154- एम0 ए0 एस0 आई0, 23• पृ0 29 प्लेट XXXV·6·

155- वही, पृ0• 72

156- द रिसर्चर, XII-XIII. पृ0 18• प्लेट XV

157- अग्रवाल, पी0 के0, उपर्युक्त, पृ0 89-90• प्लेट XXII• उपर्युक्त

158- नेशनल म्यूजियम, नं0 67•114•

159- द रिसर्चर, XII-XIII. पृ0 17, प्लेट XIII.

160- सहाय, बी0, उपर्युक्त, पृ0 115•, उपरोक्त

161- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, , 1911-12, पृ0 161•

162- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1905-06, पृ0 21, आकृति 4

163- इण्डियन आर्कयोलाॅजी, ए रिव्यू 1956-57, प्लेट LVIIC।

164- वही, प्लेट LVII, B.

165- एम० ए० एस० आई, 25, (बनर्जी, आर० डी०, बास रीलिफ्स आॅव बादामी)

166- जे० आई० एच०, XXXI, पृ० 247, कल्चरल हेरिटेज आॅव इण्डिया, IV पृ० 309.

167- मजूमदार, आर० सी०, द एज आॅव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० 152, बम्बई, 1955.

168- राव, टी० ए० जी०, ई० एच० आइ० II, ii पृ० 144, प्लेट CXXI 2. मद्रास, 1914 - 16

169- वही, पृ० 444-45, प्लेट CXXII.

170- वही, पृ० 445, प्लेट CXXiii.

171- वही, पृ० 445-46, प्लेट CXXV

172- वही, 447. प्लेट CXXVI.2.

173- शास्त्री, एच० के०, साउथ इण्डियन इमजेज आॅव हिन्दू गाॅड्स एण्ड गाॅडेजेज, पृ० 177. आकृति 113, मद्रास, 1916

174- राव, टी0 ए0 जी0 उपर्युक्त, 447, प्लेट CXXVI.2. उपर्युक्त

175- शास्त्री, एच0 के0, उपर्युक्त, आकृति. 115. उपर्युक्त.

176- अटकिंशन, एफ0 एम0, [अनुवादित] एशियाटिक मैथालाजी, [अनु0 फ्रांसीसी से] पृ0 129.

177- राव, टी0 ए0 जी0, उपर्युक्त, प्लेट CXXVI.3.

178- शास्त्री, के0 ए0, नीलकण्ठ, द चोलाज, पृ0 763, आकृति 76. मद्रास. 1955

179- राव, टी0 ए0 जी0, उपर्युक्त, पृ0 447. प्लेट CXXVII उपर्युक्त

180- वही, उपर्युक्त, पृ0 447. प्लेट. CXXVIII.

181- रूपम , नं0 1926, पृ0 36

182- प्रोसिडिंग्स एण्ड ट्रान्सेक्शन्स आॅव द सेवन्थ आॅल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फ्रेंस, बड़ौदा, 1938, पृ0 773 - 774

183- जर्नल्स, क्रोनिका, इण्डियन मैथालाजी, आकृति पृ0 85 पर

184- गुप्त, आर0 एस0, आइकोनोग्राफी आॅव द हिन्दूज, बुद्धिस्ट्स एण्ड जैन्स, आकृति 81, बम्बई 1972.

185- राव, टी0 ए0 जी0, उपर्युक्त, पृ0 438, उपर्युक्त

186- वही, 445 - 46, प्लेट CXXIV

187- वही, पृ0 446

188- बनर्जी, उपर्युक्त, पृ0 367

189- राव, टी0 ए0 जी0, उपर्युक्त, पृ0 446

190- बनर्जी, उपर्युक्त, पृ0 367.

191- राव, टी0 ए0 जी0, उपर्युक्त 448-49, प्लेट CXXIX.

192- बनर्जी, जे0 एन0, उपर्युक्त, पृ0 367.

193- राव, टी0 ए0 जी0, उपर्युक्त, पृ0 448, प्लेट CXXXVIII.A
तुलनीय, गुप्त, आर0 एस0, उपर्युक्त, आकृति 85, उपर्युक्त

194- लन्घुर्स्ट, ए0 एच0, पल्लव आर्किटेक्चर, एम0 ए0 एस0 आई, 33, प्लेट, XVI.C. और एम0 ए0 एस0 आई0 40 पृ0 1. कलकत्ता 1928 और 1930

195- राव, टी0 ए0 जी0, ई0 एच0 आई0 ii जिल्द II, पृ0 134, प्लेट XX आकृति 1.

196- वही, प्लेट XXII आकृति 2

197- ई0 आई0 XVII पृ0 16

198- ई0 आई0, XVII. पृ0 16.

199- वही, पृ0 16. आकृति 3.

200- वही, XVjI. पृ0 16.

201- जे0 आई0 एस0 ओ0 ए0, VII. पृ0 111 - 12.

202- वही.

अध्याय - छ:

(अ) मुद्राओं एवं मुहरों में कार्त्तिकेय

प्राचीन भारतीय इतिहास की संरचना में अभिलेखों के साथ-साथ मुद्राओं एवं मुहरों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । देवताओं की सेना के सेनापति कार्त्तिकेय की आकृति प्राचीन भारतीय मुद्राओं पर भी प्राप्त होती है । कार्त्तिकेय से सम्बन्धित मुद्राएँ पंजाब (रोहतक), उज्जैन तथा अयोध्या से प्राप्त हुई हैं ।

देवमित्र (प्रथम शताब्दी ईसवी) अयोध्या का क्षेत्रीय शासक था । उसकी मुद्राएँ अयोध्या से प्राप्त हुई हैं । इन पर एक ओर 'खम्भे पर बैठा हुआ मुर्गा' की आकृति अंकित है ।[1] इसी प्रकार की आकृति विजयमित्र के सिक्कों पर भी प्राप्त होती है ।[2] वी० ए०, स्मिथ का सुझाव है कि खम्भे पर बैठा हुआ मुर्गा का चित्र कार्त्तिकेय का प्रतीक है ।[3] जे० एन० बनर्जी का मत है कि ये चित्र कार्त्तिकेय के वाहन शिखायुक्त मुर्गे को ध्यान में रखकर बनाये गए हैं ।[4]

कार्त्तिकेय की संभावित सब से प्राचीन आकृति आहत सिक्कों पर प्राप्त होती हैं । एलन के अनुसार पंचमार्क (आहत) सिक्कों पर प्राप्त मानवाकृतियाँ कार्त्तिकेय की हो सकती हैं ।[5] इन आकृतियों में सबसे अधिक ध्यातव्य वे मानवाकृतियाँ या प्रतीकात्मक रूप से देव आकृतियाँ हैं जिनके दोनों हाथों में दण्ड और कलश तथा सिर के ऊपर कलँगी है ।[6]

प्राचीन भारतीय जनजातियों के सिक्कों पर भी कार्त्तिकेय की आकृतियाँ प्राप्त होती हैं । इनमें औदुम्बरों के सिक्के अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । इन सिक्कों पर कार्त्तिकेय के दाएँ हाथ में भाला है तथा उन्हें योद्धा के रूप में दिखाया गया है ।[7] इन सिक्कों से प्रतीत होता है कि औदुम्बर कुशल युद्धक जाति थी । औदुम्बर आधुनिक हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा जनपद और पंजाब के गुरुदासपुर और होशियारपुर जिले के पूर्वी भाग में निवास करते थे ।[8]

उज्जयिनी के सिक्कों पर, (वर्ग-2) पर प्राप्त देवाकृति को कार्त्तिकेय से समीकृत किया जा सकता है जो भाला लिये हुए है ।[9] प्रकार । में, तीन सिर

दिखलाई पड़ता है ।[10] तीन सिर पीछे की ओर है [11] जो कि स्वाभाविक रूप से दिखलाई नहीं पड़ता है । इस प्रकार छः सिर वाली इस आकृति को कार्त्तिकेय से समीकृत किया जाता है क्योंकि कार्त्तिकेय को षण्मुख भी कहा जाता है । वर्ग - 3 के सिक्कों पर भी किसी देव की अपरिष्कृत आकृति प्राप्त होती है ।[12] जे0 एलन का विचार है कि यह आकृति शिव या कार्त्तिकेय, दोनों में से किसी की भी हो सकती है ।[13] कनिंघम ने इस आकृति को 'शिव महाकाल' से समीकृत किया है ।[14] जे0 एन0 बनर्जी का कहना है कि यह आकृति शिव की हो सकती है किन्तु कार्त्तिकेय की नहीं । उनका कहना है कि छड़ी और पात्र युक्त आकृति कार्त्तिकेय की नहीं हो सकती है वरन् इसे शिव की आकृति कहा जाना चाहिए, क्योंकि तीन सिर से युक्त आकृति को कार्त्तिकेय के छः सिरों के प्रतिनिधित्व के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता है ।[15] उनके अनुसार कुषाण कालीन सिक्कों पर छः सिरों से युक्त आकृतियाँ कार्त्तिकेय की तथा तीन सिरों वाली शिव की आकृतियाँ प्राप्त होती हैं ।[16] जहाँ तक उज्जयिनी से प्राप्त एक दूसरे प्रकार के सिक्कों के साम्य का प्रश्न है, जिस पर त्रिशूल के साथ और बगल में वृष की आकृति है, पी0 के0 अग्रवाल यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि चिन्ह जानकारी के लिए उपयुक्त हैं किन्तु मूर्तियों के प्रकारों और विशेषताओं की सभी असमानताओं के होते हुए, इस साम्यता के आधार अन्य आकृतियों को शिव का कहना न्यायोचित नहीं होगा ।[17] कड़ा से प्राप्त सिक्कों के प्रकारों में से एक पर बायें हाथ में राजदण्ड या भाला तथा दायें हाथ में एक थैला धारण किये हुए बड़ी अवस्था में एक इसी प्रकार की मिलती-जुलती आकृति प्राप्त हुई है । यह आकृति संभवतः कार्त्तिकेय का प्रतिनिधित्व करती है,

इसी तरह की आकृति उज्जयिनी से प्राप्त सिक्कों पर भी प्राप्त होती है ।[18] इन सिक्कों से यह ध्वनित होता है कि उस समय तक कार्त्तिकेय परमशक्ति के प्रतीक बन गए थे ।

यौधेयगणों के सिक्कों पर कार्त्तिकेय की आकृति स्पष्टतः प्राप्त होती है । द्वितीय शताब्दी ईसवी में जारी किये गए इन सिक्कों पर न केवल आकृति ही प्राप्त होती है वरन् पौराणिक आख्यानों से युक्त हैं जिनमें उनका नाम भी है । एक अद्वितीय चाँदी[19] और कुछ ताँबे के सिक्कों[20] पर छः या एक सिर से युक्त बड़ी अवस्था में पुरूष आकृति में कार्त्तिकेय दिखलाई पड़ते हैं । देवता ‹कार्त्तिकेय› के सिर प्रायः दो पंक्तियों में ‹प्रत्येक में तीन› व्यवस्थित किये गए हैं, उनमें से सभी प्रायः उलझी हुई लटों के द्वारा पहचाने जाते हैं । जबकि, कुछ स्थानों पर एक सिर केन्द्र में प्रदर्शित है और शेष पाँच सिर केन्द्रीय सिर के चारों ओर व्यवस्थित दिखलायी देते हैं ।[21] इस सम्बन्ध में के0 के0 दासगुप्त ने हमारा ध्यान प्रारम्भिक मध्यकालीन दो मूर्तियों की तरफ आकर्षित किया है जिनमें कार्त्तिकेय के सिर ‹मस्तक› को उन दोनों विधियों से बनाया गया है जो कि यौधेयों के सिक्कों पर मिलते हैं ।[22] इन दो मूर्तियों में से एक काँसे की छोटी मूर्ति है[23] जो सम्भवतः हिमाचल प्रदेश के चम्बा क्षेत्र ‹वर्तमान में राष्ट्रीय संग्रहालय में › से प्राप्त हुई हैं जिसमें प्रभा मण्डल पर वृत्त में पाँचों सहायक सिर, एक केन्द्रीय सिर के चारों ओर बने हैं । दूसरी अवन्तिपुर ‹कश्मीर› से कार्त्तिकेय की छोटी मूर्ति के साथ अर्द्धनारीश्वर की मूर्ति प्राप्त हुई है[24] कार्त्तिकेय के छः सिर दो पंक्तियों में ‹प्रत्येक में तीन › व्यवस्थित हैं, जैसा कि यौधेय गणों के सिक्कों पर मिलता है । इन सिक्कों के एक वर्ग में अग्र भाग पर छः सिरों से तथा दो भुजाओं से युक्त, दायें हाथ में लम्बा भाला पकड़े हुए और बाएं हाथ को आराम की मुद्रा में कूल्हे पर रखे हुए, कार्त्तिकेय को दिखाया गया है ।[25] स्वामी कार्त्तिकेय के छः सिर

षडानन या षण्मुख के प्रतीक हैं तथा लम्बा भाला शक्ति का प्रतीक है, जो उसे [कार्त्तिकेय को] अति प्रिय है।

सिक्कों के दूसरी तरफ एक देवी की आकृति है जिसकी पहचान करना एक समस्या है। जबकि अद्वितीय चाँदी के टुकड़े[26] [वर्ग-3, प्रकार - ए] और ताँबे के सिक्कों [27] [वर्ग-3, प्रकार, एफ0 जी आदि] पर स्त्री आकृति निश्चित रूप से बहुत से सिरों वाली [छः सिर युक्त] है, जो कि वर्ग-6 के ताँबे के सिक्कों पर एक सिर वाली है। कनिंघम ने वर्ग - 3 के सिक्कों के दूसरी तरफ प्रतीत होने वाली देवी को छः सिरों से युक्त वर्णित किया है।[28] प्रयाग दयाल ने भी देहरादून से प्राप्त सिक्कों पर छः सिरों वाली देवी की आकृति का संकेत किया है।[29] जे॰एलन [30] से सहमत हुए बनर्जी महोदय [31] ने इस आकृति को लक्ष्मी की आकृति के रूप में पहचाना है। विशेष रूप से आगे यह बताते हैं कि देवी के सिर के चारों ओर एक प्रभा मण्डल है [किन्तु वह छः सिर वाली देवी नहीं है, जैसा कि कनिंघम ने वर्णित किया है [32]]। जब कि षष्ठी देवी, जो कि कार्त्तिकेय की पत्नी देवसेना की तरह है, के साथ काश्यप संहिता[33] के साक्ष्य के आधार पर, बी0 एस0 अग्रवाल[34] ने उसे मानने से इन्कार कर दिया है। डा0 दीनबन्धु पाण्डेय का सुझाव है कि छः सिरों वाली आकृति स्कन्द कार्त्तिकेय की माता कृत्तिका [छः कृत्तिकाओं का सम्मिलित रूप] से साम्य रखती है[35]। उनका कहना है कि यौधेयों के सिक्कों पर दिखायी गई कृत्तिका साहित्य और जनमानस के विश्वास की देवी षष्ठी है।[36] यौधेय सिक्कों के दूसरी तरफ चित्रित देवी की पहचान के सम्बन्ध में पाण्डेय जी स्पष्टतया भ्रमित प्रतीत होते हैं। वे यह स्वीकारते हैं कि षष्ठी [देवसेना] कार्त्तिकेय की पत्नी है। पुनः वे उसी लेख में कहते हैं कि कृत्तिका और षष्ठी दोनों एक ही हैं और यह कि कृत्तिका कार्त्तिकेय की जननी है। आगे वे यह

कहकर समापन करते हैं कि कृत्तिका साहित्य और लोक संस्कृति की षष्ठी की तरह देवी है[37] और कार्त्तिकेय की माता और पत्नी दोनों की ही पहचान बनाती है । दासगुप्ता की यह टिप्पणी समीचीन प्रतीत होती है कि पाण्डेय जी द्वारा सिक्के पर बनी आकृति की पहचान अधिक दृढ़ विश्वास के साथ नहीं हुई है क्योंकि लेखक अपने मत के समर्थन में भौतिक या दैवीय स्तरों में से किसी भी स्तर पर माता के साथ पुत्र के चित्रण का एक भी उदाहरण प्रमाण के रूप में देने में असमर्थ रहा है[38] । वास्तव में कृत्तिका का अकेले न तो कोई मौखिक वर्णन अथवा न तो मूर्ति के रूप में कोई प्रस्तुतीकरण है अथवा न तो छः कृत्तिकाओं का लेखबद्ध वर्णन ही उपलब्ध है ।[39] आर० सी० अग्रवाल ने पाण्डेय जी के द्वारा प्रस्तावित पहचान का आलोचनात्मक परीक्षण किया है । उनका सुझाव इस आधार पर मानने से इन्कार कर दिया है कि कृत्तिकाओं का अकेले या कहीं भी पायी गई छः सिरों के साथ सन्दर्भ नहीं दिया गया है ।[40] दूसरे स्थानों से वे कृत्तिकाओं के चित्रों का उल्लेख करते हुए आत्म विश्वास के साथ कहते हैं कि सभी कृत्तिकाएं जिनका छः की संख्या में होने का विश्वास है, कहीं भी अभी तक संयुक्त रूप से चित्रित नहीं की गई हैं, वे बिल्कुल अलग-अलग दिखलाई गई हैं ।[41] यौधेय सिक्कों पर कृत्तिकाओं के साथ छः सिरों वाली देवी की आकृति की पहचान समुचित नहीं है । ऐसा उनका विचार है कि देवी भागवत पुराण के अन्तः साक्ष्य के आधार पर इस बात की पुष्टि होती है[42] कि देवी षष्ठी या देवसेना के अतिरिक्त और कोई नहीं है ।[43] इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि छः सिर वाली देवी के चित्रित करते हुए कुछ मूर्ति षण्मुखी, षष्ठी या देवसेना के विचार को व्यक्त करती है जिसका महाभारत में लक्ष्मी, आशा, सिनीवाली आदि विभिन्न नामों से वर्णन किया गया है ।[44] महाभारत के अनुसार देवसेना, स्कन्द को विवाह में प्रदान की गई थी [45] और इसी लिए इस देवता को कभी-कभी देवसेना प्रिया:[46]

§अर्थात् देवसेना को प्रिय§ और कभी षष्ठी प्रिया:[47] §अर्थात षष्ठी के प्रिय § कहा गया है । इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि एक सिर या छ: सिरों से युक्त स्त्री आकृति या तो षष्ठी की है या देवसेना की है, जो कार्त्तिकेय की पत्नी है । संयोग से इसका चित्रण कुषाण नरेशों के सिक्कों पर चित्रित माओ, मिश्र और हेलिओस का स्मरण कराता है ।[48]

यौधेय गणों के सिक्कों के दूसरी तरफ और कार्त्तिकेय से सम्बद्ध षष्ठी तथा देवसेना § जो कि लक्ष्मी के रूप में भी पहचानी गई है§ की आकृतियों का लक्ष्मी की ओर संकेत हो सकता है । यौधेय गणों के चाँदी के सिक्कों के अग्रभाग पर §एलन का वर्ग-3§ छ: सिरों से युक्त कार्त्तिकेय हाथ में भाला पकड़े हुए तथा पृष्ठ भाग पर कमल पर खड़ी हुई देवी लक्ष्मी को प्रदर्शित करता है ।[49] इस वर्ग के सिक्के द्वितीय शताब्दी ईसवी से सम्बन्धित हैं ।[50] यौधेय गणों के कुछ सिक्कों पर §एलन के वर्ग-3 के सिक्कों से सम्बद्ध रखने वाले§ छ: सिर वाले कार्त्तिकेय अग्रभाग पर हैं और पृष्ठ भाग पर उसी से मिलती-जुलती छ: सिर वाली देवी की आकृति है ।[51] वी0 एस0 अग्रवाल ने इस पृष्ठ भाग की आकृति की पहचान देवी षष्ठी से की है ।[52] महाभारत में स्कन्द की पत्नी देवसेना को भी षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सिनिवाली और कुहु की तरह पद-स्थान प्राप्त है ।[53] इस प्रकार षष्ठी के साथ लक्ष्मी की पहचान और उनका कार्त्तिकेय के साथ सम्बन्ध आकस्मिक नहीं है । उसी अध्याय में कमल §पद्म रूप§ के रूप में 'श्री' से युक्त देवता का उल्लेख किया गया है ।[54] पुनश्च, यह कहा गया है कि जब स्कन्द ने देवसेना के साथ विवाह किया लक्ष्मी स्वयं मूर्त्त रूप में उनके साथ निवास किया ।[55] पंचम चन्द्र दिवस पर जब स्कन्द 'श्री' के साथ सम्बद्ध हुए तो उन्हें "श्री " पंचमी" के नाम से जाना गया और जब उन्होंने षष्ठ दिवस को अपना उद्देश्य प्राप्त किया तो वह षष्ठी या षष्ठ: चन्द्र दिवस महातिथि के नाम से जाना जाता है जिसका पुराणों में शाब्दिक अर्थ महान तिथि है ।[56] 'श्री पंचमी' 'श्री लक्ष्मी' की उपासना हेतु समर्पित एक त्योहार है [57] और गृह्य

सूत्रों में 'श्री कल्प' और 'षष्ठी कल्प' को मनाने के लिए निर्देश दिये गए हैं जो कि शुक्ल पक्ष में क्रमशः पंचम और षष्ठ चन्द्र दिवस पर 'श्री' और षष्ठी की प्रतिष्ठा में मनाये जाने वाले धार्मिक त्योहार हैं।[58] मानव गृह्यसूत्र षष्ठी कल्प में 'श्री सूक्त' स्तोत्रों के प्रयोग का निर्धारण करता है। देवी 'श्री' ह्री, लक्ष्मी, उपलक्ष्मी, नन्दा, हरिद्रा, षष्ठी, जया और कामा के रूप में वर्णित है। षष्ठी को धन और सम्पन्नता प्रदान करने वाला कहा गया है।[59] तथा बौधायन गृह्यसूत्र उसकी पहचान 'श्री' के साथ करता है।[60]

इस प्रकार मौद्रिक साक्ष्य महाभारत और परवर्ती गृह्य सूत्रों का पूर्ण समर्थन करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि छः सिरों से युक्त देवी षष्ठी, जो कि विशेषतः नवजात शिशुओं के साथ सम्बद्ध है, छः सिर वाले शिशु देवता, कुमार - कार्त्तिकेय से सम्बन्धित है और श्री लक्ष्मी के साथ उसकी पहचान कार्त्तिकेय की स्कन्द के साथ एकता की तरफ ले जाती है।

यौधेय गणों के चाँदी के सिक्कों पर लेख मिलता है जिसे जान एलन ने 'यौधेय भगवत-स्वामिनो ब्राह्मण्य' (स या स्य) और ताँबे के सिक्कों पर 'भगवत स्वामिनो ब्राह्मण्य देवस्य (या स) कुमारस्य' (ब्राह्मण्य का अर्थ है - स्वर्ग का देव ब्राह्मण्य देव[61]) पढ़ा है। इन लेखों से यह संकेत मिलता है कि ये सिक्के युद्ध देवता कार्त्तिकेय के नाम पर जारी किये गए थे जो कि ब्राह्मण्य देव और कुमार के रूप में जाने जाते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि यौधेय गणों ने अपना राज्य अपने प्रिय देवता को समर्पित कर दिया था। वे उसे केवल अपना आध्यात्मिक देवता ही नहीं मानते थे बल्कि शासक के रूप में भी सम्मान देते थे।

औदुम्बरों और कुणिन्दों ने भी मिलते-जुलते शासन के अपने सिक्कों पर देवताओं महादेव (शिव) तथा छत्रेश्वर (शिव) के नाम पर क्रमशः जारी

किये थे । एक शासनाध्यक्ष की एक मृण्मूर्ति मुहर, जो कि मार्शल द्वारा भीटा (इलाहाबाद के निकट) की खुदाई में मिली थी,[62] पर एक उदाहरण द्वारा यह बताया गया है कि प्रारम्भिक युग में देवताओं के नाम पर शासन की व्याव - हारिकता असामान्य बात नहीं थी । वह मुहर अपने सीमान्त के चारों तरफ एक महत्वपूर्ण व्यक्ति से सम्बन्धित लेख से युक्त है, जो इस प्रकार है -

"श्री विन्ध्यवेधमहाराजस्य महेश्वर - महासेना-तिश्रीस्राज्यस्य वृषध्वजस्य गौतमीपुत्रस्य ।" इसका हिन्द अनुवाद इस प्रकार है - 'विन्ध्य का विजेता महाराजा गौतमीपुत्र वृषध्वज ने अपना राज्य महान् देवता महासेन (अर्थात्) कार्त्तिकेय के नाम पर निर्मित किया ।[63] महाराजा गौतमीपुत्र वृषध्वज जैसा कि एस० चट्टोपाध्याय के द्वारा निरीक्षण किया गया है, कौशाम्बी के मघ शासकों से सम्बन्धित था, जिसे गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त प्रथम ने उखाड़ फेंका था ।[64] 'महेश्वर-महासेनाति श्रीस्तराज्यस्य'- पर टिप्पणी करते हुए मार्शल कहते हैं कि 'ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में एक पवित्र रिवाज था । सिंहासनारूढ़ होने के अवसर पर शासक अपना राज्य अपने इष्ट देवता के विश्वास पर छोड़ देता था और अपने को उसका मात्र प्रतिनिधि समझता था'। यह कथन यौधेयों एवं कुणिन्दों के अर्द्ध-धर्म तन्त्रात्मक राज्यों को एक विचारणीय बल प्रदान करता है ।[65] जे० एन० बनर्जी के अनुसार कुणिन्दों के सिक्कों पर 'भगवतो छत्रेश्वर महात्मन:[66]', तथा यौधेय गणों के सिक्कों पर 'यौधेय भगवतस्वामिनो ब्रह्मण्यस्य'[67] लिखा है, इन दोनों जनजातियों में इस व्यावहारिकता (परम्परा) के प्रचलन का संकेत करती हैं । इस तरह की परम्परा के प्रचलन के कुछ उदाहरण वी० एस० पाठक ने दिये हैं ।[68] वर्तमान् केरल राज्य में स्वतंत्रता के पूर्व ट्रावनकोर के इतिहास से एक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मार्शल आगे यह बताते हैं कि 10 वीं शताब्दी ईसवी के मध्य में महाराजा मार्तण्ड वर्मन् ने उसी से मिलता-जुलता

एक उत्सव किया था ।[69] यह व्यावहारिकता (परम्परा) अभी हाल तक जारी रहती प्रतीत होती है । जैसा कि भारतीय गणराज्य में ट्रावनकोर और कोचीन राज्य के मिलाये जाने के पूर्व तक अपने महाराजाओं के द्वारा पद्मनाभ देवता के नाम पर शासन किया जाता था ।[70]

महाभारत में यौधेय गणों के प्रमुख कस्बे, जिसे मत्तमयूरक, के नाम से भी जाना जाता है, का उल्लेख मिलता है ।[71] यह कार्त्तिकेय का अति प्रिय निवास स्थान था ।[72] इसमें रोहितक (आधुनिक हरियाणा राज्य में रोहतक) को अधिक सम्पन्न, सुन्दर, गेहूं और पशुओं के रूप में सम्पन्नता वाला तथा कार्त्तिकेय के प्रिय के रूप में बतलाया गया है । बीरबल साहनी को रोहतक (प्राचीन रोहितक) से यौधेय गणों की साँचे में ढली मुद्राएं बड़ी संख्या में प्राप्त हुई थी जिनमें 'बहुधन्याक' तथा यौधेय आदि अंकित हैं ।[73] महामयूरी से भी इस बात की सूचना मिलती है कि कुमार कार्त्तिकेय रोहितक के संरक्षक देवता थे ।[74]

यौधेय गणों ने स्वतन्त्र रूप से तृतीय एवं चतुर्थ शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध तक शासन किया जब तक वे गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के द्वारा अपने अधीन नहीं कर लिये गए। यौधेय गणों के निरन्तर युद्ध में उलझे रहने के कारण उनके आर्थिक स्रोतों पर अधिक दबाव पड़ा जिससे दूसरी शताब्दी ईसवी की उनकी मुद्रा की खराब स्थिति के कारणों के विषय में व्याख्या की जा सकती है ।

लुधियाना के निकट सुनेत खोजे गये उनके सिक्कों (एलन का वर्ग-6[75]) पर 'यौधेयगणस्य जयः' लेख और मिट्टी की पट्टिका पर 'यौधेयानां जयमन्त्र धराणाम्' से यह इंगित होता है कि यौधेयगण ने कोई निर्णायक विजय की थी जिसकी स्मृति में यादगार सिक्कों एवं पदकों का निर्माण करवाया ।[76] अल्तेकर के अनुसार यह साक्ष्य कुषाणों पर यौधेय गणों की विजय का संकेत करता है ।[77]

यह यौधेय ही थे जिन्होंने कुषाणों पर महान् विजय प्राप्त किया और उन्हें पंजाब से बाहर कर दिया ।

'यौधेय गणस्य जय:' लेख युक्त यौधेयों के द्वारा जारी किये गए सिक्कों पर शैली और प्रकार में निस्संदेह कुषाण प्रभाव परिलक्षित होता है । इस वर्ग से संबन्धित सिक्के वृत्तीय आकार में ताँबे के हैं । इस वर्ग के सिक्के (एलन के वर्ग-6)[78] कुछ भिन्न रूप में मालूम पड़ते हैं । अग्र भाग की तरफ एक मुखीय युद्ध देवता दायें हाथ में भाला पकड़े हुए और बायें हाथ को आराम की मुद्रा में कमर पर रखे हुए, खड़े हैं तथा उनका वाहन मोर बायीं तरफ है । महाभारत में एक जगह यह उल्लेख किया गया है कि गरूड़ ने कार्त्तिकेय को मोर प्रदान किया ।[79] एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि अग्नि ने उन्हें एक लाल मुर्गा दिया ।[80] मोर का कार्त्तिकेय देवता के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध महाकाव्य में उद्धृत उसकी उपाधि 'मयूरकेतु' से स्पष्ट है[81] जबकि लाल मुर्गा, उसके प्रतीक चिन्ह के रूप में जाना गया, जो उसके रथ की चोटी पर स्थापित किया गया ।[82]

कतिपय विदेशी शक्तियों ने भी कार्त्तिकेय की उपासना के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया तथा उनके सम्मान में सिक्के जारी किए । कुषाण वंशीय शासकों में कनिष्क का उत्तराधिकारी हुविष्क ही एकमात्र शासक था जिसने इस देवता के विभिन्न नामों से युक्त आकृति वाले सिक्के जारी किए । इस नरेश ने एक प्रकार का सोने का सिक्का जारी किया[83] जिस पर महासेन (कार्त्तिकेय का एक रूप) को दिखलाया गया है जो एक अधोवस्त्र पहने हैं जिस पर कढ़ाई की गई है, दाहिने हाथ में एक झंडा है जिसके ऊपर एक चिड़िया (भद्दा मोर) बैठी हुई है और बायाँ हाथ कमर की पेटी से बँधी हुई तलवार की मूठ पर स्थित है[84] जिस पर उसका नाम 'मासेनो' अंकित है । सिक्के के इस विशिष्ट प्रकार के अतिरिक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण सोने के दो अन्य प्रकार के सिक्के हुविष्क

द्वारा जारी किये गए जिन में से एक पर (क) दो पुरूष आकृतियाँ एक दूसरे के आमने सामने खड़ी हैं । उनमें से एक पर 'स्कन्दो-कुमारो-बिजागो' (स्कन्द, कुमार और विशाख) लिखा है ।[85] (ख) तीन पुरूष आकृतियाँ एक मन्दिर के अन्दर एक दूसरे के अगल-बगल खड़ी हैं जिनमें क्रमश: 'स्कन्दो - कुमार -बिजागो - मासेनो' (स्कन्द - कुमार - विशाख - महासेन) लिखा है ।[86] बाद के दोनों प्रकारों में से प्रथम प्रकार के सिक्कों पर स्कन्द - कुमार और विशाख को आमने - सामने खड़े हुए महासेन की ही तरह वस्त्र धारण किये अंकित किया गया है[87] तथा दोनों एक लम्बा भाला लिये हुए हैं या पहले की तरह अपने दाहिने हाथ में चोटी पर चिड़िया युक्त झंडा धारण किये हो सकते हैं । यह देखा जा सकता है कि आकृति के दायीं तरफ सिर के चारों तरफ कोई प्रभा मण्डल निर्मित नहीं है जबकि अन्य दो (आकृतियों) में इसके स्पष्ट चिन्ह हैं । जैसा कि बनर्जी महोदय के द्वारा संकेत किया गया है कभी-कभी कुषाण कालीन सिक्कों पर बने देवताओं के सिर से कलँगी गायब दिखलाई पड़ती है ।[88] हुविष्क के सिक्कों पर ये आकृतियाँ उत्कृष्ट कोटि की संरचना की एक रेखीय प्रस्तुति के अन्दर महल के निचले तल को सुशोभित करने वाले क्षेत्र के भीतर स्थापित हैं ।[89] कुमार स्वामी के अनुसार ये मूर्तियाँ एक विशेष प्रकार की ब्राह्मण मूर्तियों की निकटतम ज्ञात चित्रकारी है ।[90] मन्दिर में स्थापित तीन देवताओं के प्रकार हुविष्क के अन्य सिक्कों की प्रस्तुति से भिन्नता रखते हैं जिनमें प्राय: महासेन एवं स्कन्द का झंडे के ऊपर एक मोर या मुर्गा युक्त ध्वजा हाथ में लिये हुए चित्रण मिलता है ।[91]

डी0 आर0 भण्डारकर के अनुसार हुविष्क के सिक्के देवता के तीन या चार विभिन्न नामों स्कन्द, कुमार, विशाख और महासेन (स्कन्दो - कुमारो - बिजागो - मासेनो[92]) के अनुरूप तीन या चार आकृतियों से युक्त हैं । उनका यह भी विश्वास है कि ये चारों (स्कन्द, कोमारो, विशाख और महासेन)

एक देवता कार्त्तिकेय, जिसके अमरकोश में सत्तरह नाम दिये गए हैं[93], न होकर भिन्न-भिन्न देवता थे। यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त दोनों प्रकार के सिक्कों में 'स्कन्दो' और 'कोमारो' शब्द साथ -साथ लिखे गए हैं तथा एक ही पंक्ति में अगल-बगल स्थिति (स्कन्दो और कोमारो) से संकेत मिलता है कि वे एक एवं केवल एक नाम के रूप हैं। जबकि स्पष्ट रूप से अलग-अलग लिखे गए 'बिजागो' और 'मासेनो' दो अन्य देवताओं के लिए प्रयुक्त हैं। इससे इस कारण की व्याख्या हो सकती है कि एक प्रकार के सिक्कों पर क्यों दो तथा दूसरे प्रकार के सिक्कों पर क्यों तीन आकृतियाँ हैं। यद्यपि उन सिक्कों पर अंकित उपाख्यान में तीन और चार शब्द हैं।[94] बनर्जी महोदय ने ठीक ही सुझाव दिया है ये केवल तीन देवता थे (एक ही देवता की तीन आकृतियाँ) अर्थात स्कन्द, कुमार, विशाख और महासेन, जो आगे एक सम्बद्ध चरित्र को स्कन्द - कार्त्तिकेय की रचना में मिलाते हुए विभिन्न देवताओं के विचारों को दर्शाते हुए स्कन्द की उत्पत्ति के विषय में महाभारत की कथा से समर्थित है।[95] इस सम्बन्ध में भण्डारकर का यह मत कि सिक्कों पर तीन या चार विभिन्न नामों के अनुरूप तीन और चार आकृतियाँ हैं, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्कन्द और विशाख दो भिन्न देवताओं के रूप में जाने गए, कुषाण नरेश हुविष्क के काल तक निरन्तर समझे जाते रहे, जिसने दूसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शासन किया।[96] हुविष्क के सिक्कों पर अलग-अलग चित्रित किये गए देवता, जो कि कुछ समय बाद एकाकार हो गए, वे सभी एक और उसी कार्त्तिकेय नाम के देवता के विषय में बताते हैं।

कुषाण वंशीय शासक विम कैडफिसस महेश्वर (शिव का भक्त) का अनुयायी था। कनिष्क बौद्ध था किन्तु हुविष्क कार्त्तिकेय का भक्त था। यह न केवल उसके कुछ निश्चित सोने के सिक्कों पर देवता के विभिन्न रूपों

(जैसे स्कन्द-कुमार, विशाख और महासेन) की उपस्थिति से सिद्ध होता है, बल्कि महासेन (कार्त्तिकेय के प्रकारों में एक) के रूप में उसके कुछ सोने के सिक्कों के पृष्ठ भाग से भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है।[97] महासेन की भाँति वह चोटी पर स्थित चिड़िया एक झंडा लिये हुए दिखायी गयी है जो कि देवता (कार्त्तिकेय) का विशेष ध्वज है। मथुरा से प्राप्त मिश्रित भाषा (अर्थात् ब्राह्मी और संस्कृत) के एक कुषाण कालीन अभिलेख में हुविष्क 'सरस्तव (सत्त्व-अस्तित्व में होते हुए) महाराज'[98] के रूप में निर्देशित किया गया है। 'शरजन्मन' और 'शरवनभव' इत्यादि शब्दों से याद दिलाया गया है जो कि कार्त्तिकेय के विशेषण (उपाधि) के रूप में प्रयुक्त है, जो पौराणिक कथाओं के अनुसार शिव के वीर्य से झाड़ी में उत्पन्न हुआ था।[99]

हुविष्क के शासन के दो सौ वर्ष तक किसी भी शासक के सिक्कों पर कार्त्तिकेय का अंकन नहीं मिलता है। इसके बाद कार्त्तिकेय पुनः गुप्त वंश के कुमारगुप्त प्रथम के सोने के सिक्कों पर दिखलाई पड़ते हैं। गुप्त शासक मुख्य रूप से वैष्णव धर्म (परमभागवत उपाधि) के अनुयायी थे किन्तु कुछ साक्ष्य ऐसे हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि कम से कम कुमारगुप्त प्रथम युद्ध देवता कार्त्तिकेय की उपासना को अधिक महत्त्व देता था। इस गुप्त सम्राट का नाम न केवल देवताओं की संयुक्त सेना के प्रधान सेनापति कुमार के नाम के आधार पर रखा गया था बल्कि उसने अपने पुत्र स्कन्दगुप्त का नामकरण भी उसके एक अन्य नाम पर किया। कुमारगुप्त प्रथम के चौदह प्रकार के सोने के सिक्के मिलते हैं। कुमारगुप्त प्रथम ने कार्त्तिकेय की आकृति वाले सोने के बहुसंख्यक सिक्के जारी किये जो कि एक नमूने पर छः सिरों वाले ब्राह्मण देव के प्रतीक को धारण किये हुए चिड़िया की चोटी से स्पष्ट रूप से पहचान की जा सकती है। कार्त्तिकेय प्रकार (या मोर की तरह) के सोने के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर एक दूसरे तरह

की घटना मिलती है जिसमें कि इस देवता को उसकी अपनी चोटी पर चढ़ते हुए दिखाया गया है और उसके बायें हाथ में कन्धे के ऊपर मोर §शिखी-परवानी§ और उसका विशेष हथियार बरछा है, दाहिना हाथ वरदान देने की मुद्रा में है ।[100] एलन के द्वारा किये गए वर्णन के अनुसार कार्त्तिकेय दायें हाथ से वेदी पर धूप [101] § या स्पष्ट रूप से जैसा कि विचार अल्तेकर महोदय का है [102] § किन्तु यह विचार जे0 एन0 बनर्जी के द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है जो यह सुझाव देते हैं कि जो वेदी मालूम पड़ती है, वह कुछ नहीं बल्कि मूर्ति का आधार है जिस पर देवता अपनी सवारी के साथ दिखाया गया है तथा दाहिने हाथ वरद मुद्रा में है । वह देवता §कार्त्तिकेय§ गजि सिर वाला है, उसके प्रचुर मात्रा में बाल है और नग्न शरीर वाला है ।[103] वह कानों में कुण्डल एवं गले में हार पहने हुए है ।

गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त कठिनाइयों से जूझने के लिए अपने पिता कुमारगुप्त प्रथम के द्वारा नियुक्त किया गया था । भितरी स्तम्भ लेख के अनुसार उसने कठिन संघर्ष के बाद एक सम्पूर्ण रात्रि जमीन पर शयन कर के व्यतीत किया, उसने अपने परिवार के बिगड़े हुए भाग्य को पुनः प्राप्त कर लिया ।[104] यह महत्वपूर्ण है स्तम्भ लेख का कवि गुप्त परिवार के भाग्य के विनाश का तीन बार संकेत करता है । स्कन्दगुप्त ने शत्रु को पराजित करके उस पर पूर्ण विजय प्राप्त किया । उसकी उपलब्धियों का गान सभी क्षेत्रों में मनुष्यों एवं बच्चों द्वारा गवाया गया ।[105]

कुमारगुप्त प्रथम के शासन के कार्त्तिकेय प्रकार के सोने के सिक्के स्पष्टतया उस देवता के प्रति मुद्राशास्त्रीय आदर के रूप में अभिप्रेरित थे जिसके नाम पर उसका नाम रखा गया ।[106] यह ऐसी परिस्थिति थी कि गुप्त नरेशों ने, युद्ध देवता कार्त्तिकेय की उपासना युद्ध में अपनी सहायता के लिए

की । पुष्यमित्रों के विरुद्ध सफलता के लिए, जिसने गुप्तों को उनके परिवार की सम्पूर्ण नाश का भय उत्पन्न किया था, कार्त्तिकेय की आकृति सोने के सिक्कों पर अंकित करवाया ।[107]

गुप्त काल में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने प्रथम बार चाँदी के सिक्के जारी किए । उसका यह कदम गुजरात की विजय का स्वाभाविक परिणाम था । इन राज्यों के निवासी पश्चिमी शक क्षत्रपों चाँदी के सिक्कों से काफी पहले से परिचित थे । इस लिए उसके सिक्के पर बनावट और भार के सन्दर्भ में पश्चिमी शक क्षत्रपों के सिक्कों का प्रभाव अधिक है ।[108] कुमार गुप्त I ने गुजरात के क्षेत्र में न केवल बहुत बड़ी संख्या में मिलते-जुलते सिक्के जारी किये बल्कि आकार और भार के अतिरिक्त मुश्किल से किसी क्षत्रप के प्रभाव से युक्त एक नए प्रकार के चाँदी के सिक्के का परिचय कराया ।[109] सिक्के के पृष्ठ भाग पर गरूड़ के चित्र के स्थान पर मयूर का चित्र अंकित था ।[110] यह पक्षी कुमार या कार्त्तिकेय का वाहन है जिसके नाम पर शासक ने स्वयं अपना नाम रखा । इस प्रकार के सिक्के उसके साम्राज्य के पूर्वी भाग से सम्बन्ध रखते थे, परन्तु ये सिक्के कम संख्या में प्राप्त हुए हैं । स्कन्दगुप्त ने अपने पिता द्वारा जारी किये गए दोनों प्रकारों के चाँदी के सिक्के निरन्तर जारी किया परन्तु उसने उनके सिक्कों के पृष्ठ भाग पर बैल या अग्नि की वेदी से युक्त दो नए प्रकार भी जोड़े ।[111]

बुद्धगुप्त अन्तिम गुप्त शासक था जिसने चाँदी के सिक्के जारी किए । उसके सिक्के मात्र मध्यदेशीय प्रकार के हैं और अत्यन्त दुर्लभ हैं ।[112] देश के पूर्वी भाग से प्राप्त स्कन्दगुप्त एवं बुध गुप्त दोनों के द्वारा जारी किये गए सिक्के भी स्वामी कार्त्तिकेय की सवारी मयूर के चित्र से युक्त हैं ।[113]

गुप्त कालीन मिट्टी की मुहरें भी अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं जिनमें से कतिपय कार्त्तिकेय की गुप्त काल में लोकप्रियता पर प्रकाश डालती हैं ।

एक अण्डाकार मुहर इलाहाबाद जिले में स्थित भीटा से मार्शल को प्राप्त हुई है जिसके बायीं ओर पंख फैलाये हुए मयूर खड़ा है तथा जिस पर 'श्री स्कन्द - सूरस्य'[114] लेख अंकित है । स्कन्द का वाहन 'स्कन्द-सूर' के मुहर पर प्रयोग करने के रूप में उचित प्रकार से चुना गया था । परन्तु यह असंभव भी नहीं है कि लेख स्कन्द को 'एक वीर' (बहादुर) के रूप में उद्धृत करता है और मुहर स्कन्द-कार्त्तिकेय के मन्दिर से सम्बन्धित थी ।[115] 'व्याघ्रबाल' की बसाढ़ (वैशाली) से स्पूनर को प्राप्त एक अन्य मुहर पर 'व्याघ्रबालस्य' लेख अंकित है और पंख फैलाये हुए मयूर का अंकन है ।[116] उल्लेखनीय है कि कुमारगुप्त प्रथम और उसके कुछ उत्तराधिकारियों के चाँदी के सिक्कों पर उसी प्रकार का लेख तथा आकृति पायी गई है ।[117]

राजघाट से मिट्टीकीएक मुहर प्राप्त हुई है जिस पर एक सुन्दर पिच्छ वाला मयूर चित्रित है और लेख 'शूरगुप्त' अंकित है (प्लेट III.I [118]) उसी स्थान से प्राप्त हाथी दाँत की एक मुहर पर वही लेख और चिन्ह प्राप्त होता है । यह वाराणसी के भारत कला भवन में है ।[119] शब्द कार्त्तिकेय की तरफ संकेत करता है और मुहर के मालिक के नाम का अर्थ 'कार्त्तिकेय' के द्वारा संरक्षित है । दण्डनायक 'क्ष' की अत्यधिक कलात्मक मुहर का भी सन्दर्भ दिया जा सकता है ।[120]

राजघाट से प्राप्त गुप्तकाल की अण्डाकार एक मुहर पर दो योद्धाओं को दर्शाया गया है जिसके दायें हाथ में भाला है और बाँया हाथ कमर पर है ।[12] मुहर पर 'महसी (शू ?) रस्य' लिखा है । बनर्जी महोदय ने मुहर के चिन्ह के सम्बन्ध में ठीक ही संकेतित किया है कि हुविष्क के सिक्कों पर स्कन्द-कुमार और विशाख के चित्रों एवं इण्डोग्रीक नरेशों की याद दिलाता है ।[122] मोतीचन्द्र ऐसी एक मुहर की तरफ इशारा करते हैं जिस पर नाचते हुए मोर का अंकन है और

'महेन्द्र' नाम अंकित है ।[123] इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन मुहरों पर मोर का चिन्ह उनको कार्त्तिकेय की उपासना से जोड़ता है ।

हूणों का प्रमुख शासक तोरमाण ने, जिसके योग्य नेतृत्व में हूणों ने भारत में गुप्तकाल के उत्तरार्द्ध में आक्रमण किया था, चाँदी के सिक्के जारी किये थे । उसके द्वारा जारी किये गए चाँदी के सिक्कों के एक प्रकार पर गुप्त सिक्कों का प्रभाव परिलक्षित होता है । इस पर पंख फैलाये हुए मोर को दिखाया गया है तथा पृष्ठ भाग पर कार्त्तिकेय है । ब्रिटिश संग्रहालय में इस प्रकार दो नमूने हैं[124] और एक तीसरा तिथि रहित नमूना होय (Hoey) द्वारा वर्णित किया गया है ।[125] इससे यह कहा जा सकता है कि हूण नरेश तोरमाण ने भी युद्ध में सफलता के लिये स्वामी कार्त्तिकेय के प्रति आभार प्रदर्शित किया था ।

मौखरि और पुष्यभूति शासकों ने भी गुप्तकालीन चाँदी के सिक्कों के मध्य-देशीय प्रकार का अनुकरण किया था । उनके सिक्कों के पृष्ठ भाग पर पंख फैलाये मोर की आकृति मिलती है ।[126] इससे यह संकेत मिलता है कि मौखरि और पुष्यभूति शासक भी किसी न किसी तरह कार्त्तिकेय के प्रति अनुरक्त थे ।

इस प्रकार विभिन्न गणों एवं शासकों के सिक्कों एवं मुहरों के विवेचन से स्पष्ट है कि कार्त्तिकेय की (युद्ध देवता के रूप में) लोकप्रियता एक लम्बे समय तक निरंतर बनी रही । न केवल स्वदेशी शासकों ने उसके सम्मान में मुद्रायें जारी की बल्कि विदेशी शासक भी इस दिशा में पीछे नहीं रहे । इन साक्ष्यों के माध्यम से देश की तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के साथ ही साथ धार्मिक दशा पर भी महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है ।

संदर्भ-संकेत

1- एलन, जे0, सी0 सी0 ए0 आई0, पृ0 151, प्लेट XIX.18 (ब्रिटिश म्यूजियम), लन्दन, 1936.

2- वही, पृ0 138-39, प्लेट, XVII 2 और XVIII, 1-3; स्मिथ, वी0 ए0, सी0 सी0 आई0 एम0 सी0, पृ0 151, कलकत्ता, 1906.

3- वही, पृ0 151.

4- बनर्जी, जे0 एन0, डी0 एच0 आई0, पृ0 141, कलकत्ता, 1956.

5- एलन, जे0, उपर्युक्त पृ0 xxxvi, (तुलनीय, उज्जयिनी, पृ0 203, प्लेट, XXXVII. 7)

6- अग्रवाल, पी0 के0, स्कन्द-कार्त्तिकेय, पृ0 38 आकृति 1, वाराणसी, 1967.

7- एलन, जे0 उपर्युक्त, पृ0 lxxxvi, नं0 29, प्लेट XV 13-20 और XLIII. 1-2

8- वही, पृ0 lxxxviii

9- वही, पृ0 cxliii-cxliii, प्लेट, XXXVIII और XXXVII. 19-21.

10- वही, पृ0 cxliii और 25 प्लेट XXXVIII. 22.

11- वही, पृ0, cxliii.

12- वही, पृ0, cxliii और 253, प्लेट XXXVII 5-7 और XIX. 4-6, 8,9

13- वही, पृ0 Cxliii और 245-252.

14- कनिंघम, सी0 ए0 आई0, पृ0 97-98, प्लेट, X.1-6 वाराणसी 1963.

15- बनर्जी, जे0 एन0, डी0 एच0 आई, पृ0 117, 141, कलकत्ता, 1956.

16- वही

17- अग्रवाल, पी0 के0, उपर्युक्त, पृ0 40.

18- चट्टोपाध्याय, एस0, द इवोलूशन आँव थीस्टिक सेक्टस इन एन्शयन्ट इण्डिया, पृ0 61, कलकत्ता, 1962.

19- एलन, जे0, सी0 सी0 ए0 आई0, पृ0 cxlix और 270, प्लेट, xxxiv. 21.

20- वही, पृ0 271 और 273, प्लेट, xxxix , 20 और 22 और XL. 10-11.

21- वर्ग-3, प्रकार 'ए', झाज्जर म्यूजियम, रोहतक में कुछ सिक्के, जे0 एन0 एस0 आई0, प्लेट 2 पृ0 20.

22- दासगुप्त, के0 के0, 'ए ट्राइबल हिस्ट्री आँव एन्शयन्ट इण्डिया, पृ0 219-20 कलकत्ता, 1974.

23- जे0 एन0 एस0 आई0, XXIX.i पृ0 41 और ईस्ट एण्ड वेस्ट {नई सीरीज} XVIII , नं0 3-4, 1968, पृ0 319, आकृति, 1

24- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1913-14, पृ0 53 प्लेट 28.

25- एलन, जे0 सी0 सी0 ए0 आई, पृ0 271-73, प्लेट, XXXIX 20 और XL. 10-11

26- वही

27- वही

28 - कनिंघम, सी0 ए0 आई0

29- जे0 एन0 एस0 आई0, II पृ0 10.

30- एलन, जे0 उपर्युक्त, पृ0 cli

31- बनर्जी, डी0 एच0 आई0, पृ0 14

32- वही,

33- काश्यप संहिता, अध्याय बालगढ़ चिकित्सा में, पृ0 69, उद्धृत वी0 एस0 अग्रवाल कृत प्राचीन भारतीय लोकधर्म

34- जे0 एन0 एस0 आई0, v.i पृ0 30-32.

35- जे0 एन0 एस0 आई0, XXIX 1967, प्लेट I पृ0 5.

36- वही

37- वही, पृ0 5.

38- दासगुप्त, के0 के0 उपर्युक्त, पृ0 221

39- वही

40- अग्रवाल, आर0 सी0, जे0 एन0 एस0 आई0 में, XXX (1968), पृ0 182

41- वही

42- देवी भागवत पुराण, IX, 46.

43- जे0 एन0 एस0 आई0, XXX, (1968), पृ0 182.

44- महाभारत, III 218.47

45- वही, III, 46

46- वही, III 195.8

47- वही, III, 196.6

48- तुलनीय, पी0 एम0 जी0, प्लेट XVII. 147

49- एलन, जे0 सी0 सी0 ए0आई0 पृ0 270, प्लेट XXXIX, 21

50- वही, पृ0 CIiii.

51- वही, पृ0 271 और 273 प्लेट XXXIX 20 और 22 और XL 10-11
जे0 एन0 एस0 आई0 XVIII, II. पृ0 46-48.

52- जे0 एन0 एस0 आई0, V पृ0 29.

53- महाभारत. III 218. 47.

54- वही, III, 218·3

55- वही, III, 218·48

56- वही, III, 218·49

57- विल्सन, एस्सेज एण्ड लेक्चर्स आॅन द रीलिजन आॅव द हिन्दूज II, पृष्ठ 187, लन्दन, 1862.

58- बौधायन गृह्यसूत्र, III.5 ; मानव गृह्यसूत्र II,13 ; रामगोपाल, इण्डिया इन द वैदिक कल्पसूत्र, 466-67.

59- मानव गृह्यसूत्र II.13.

60- बौधायन गृह्यसूत्र III.7·17.

61- एलन, जे0, सी0 सी0 ए0 आई0 पृ0 cxlix-cl

62- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1911-12, पृ0 50-51, प्लेट XVIII, आकृति 25.

63- वही, पृ0 51

64- चट्टोपाध्याय, एस0, अर्ली हिस्ट्री आॅव नार्दर्न इण्डिया, पृ0 116-17. कलकत्ता, 1958.

65- बनर्जी, जे0 एन0, डी0 एच0 आई0, पृ0 118 आकृति - 1

66- जे0 एन0 एस0 आई, XIII, पृ0 160-63.

67- पाठक, वी0 एस0, शैव कल्टस इन नार्दर्न इण्डिया, पृ0 1-2, वाराणसी, 19

68- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1911-12, पृ0 51· तुलनीय, मेनन, पी0 के0 पी हिस्ट्री आॅव ट्रावनकोर, पृ0 170 - 70, {सन् 1924-31}

69- दासगुप्त, के0 के0, उपर्युक्त, पृ0 99 आकृति 45

70- वही, पृ0 99 आकृति, 45

71- बनर्जी, जे0 एन0, डी0एच0आई0, पृ0 143; महाभारत, II 32;4-5

72- वही

73- वही, शाहनी, बी0, द टेकनिक आॅव कास्टिंग क्वाइन्स इन एन्शयन्ट इण्डिया, पृ0 7, एन0 एस0 आई0

74- महामयूरी, V, 21.

75- एलन, जे0 सी0 सी0 ए0 आई0, पृ0 260, प्लेट XL 1-8

76- जे0 ए0 एस0 बी0, 1884, पृ0 134.

77- प्रोसिडिंग्स आॅव द आॅल-इण्डिया ओरिएण्टल कान्फ्रेंस, XIIth, सेक्शन, पृ0 513

78- एलन, जे0, उपर्युक्त, प्लेट XL. 1,2, 4-6,9.

79- महाभारत, शल्यपर्व, IX 46-51.

80- वही, आरण्यक पर्व, III 218-32.

81- वही, III 195•3.

82- वही, III, 229•31, जे0 एन0 एस0 आई0, जिल्द II प्लेट X 25

83- गार्डनर, बी0 एम0 सी0, प्लेट XXVII. 16.

84- बनर्जी, जे0 एन0, डी0 एच0 आई0 पृ0 144, प्लेट X.9

85- गार्डनर, उपर्युक्त, प्लेट XXVIII, 22 और 23

86- वही, प्लेट XXVIII . 24

87- वही, प्लेट, XXVIII . 22 और 23

88- बनर्जी, जे0 एन0, डी0 एच0 आई0, प्लेट. 145

89- गार्डनर, ब0 एम0 सी0, प्लेट XXVIII . 24

90- कुमारस्वामी, एच0 आई0 आई0 ए0, पृ0 22

91- गार्डनर, बी0 एम0 सी0, पृ 138 और 140, प्लेट, XXVII 16 और XXVIII. 22

92- भण्डारकर, डी0 आर0, कार्मिकल लेक्चर्स, 1921, पृ0 22 - 23

93- अमरकोश, 1, i, 39-40

94- सहाय, बी0 आइकोनोग्राफी आॅव माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डायटीज, पृ0 100, नई दिल्ली, 1975.

95- ठाकुर, यू, उपर्युक्त, पृ0 252

96- भण्डारकर, उपर्युक्त, पृ0 22-23

97- चट्टोपाध्याय, बी0, द एज आॅव द कुषाणाज, पृ0 9, कलकत्ता, 1967

98- ई0 आई0, I , 9, X 7

99- चट्टोपाध्याय, एस, उपर्युक्त, पृ0 9

100 - अल्तेकर, ए0 एस0, जी0जी0सी0, बी0 एम0, पृ0 Ci-Cii, प्लेट XXVI, 1-13.

101 - एलन, जे0, सी0 सी0 जी0 डी0 बी0 एम0, पृ0 84

102 - अल्तेकर, ए0 एस0, उपर्युक्त, पृ0 Ii

103 - बनर्जी, जे0 एन0, डी0 एच0 आई0, पृ0 144

104- फ्लीट, सी0 सी0 आई0III नं0 13, पृ0 53 - 55

105- वही

106- अल्तेकर, ए0 एस0, उपर्युक्त, पृ0 ci.

107- मजूमदार, आर0 सी0 [सम्पादित], द क्लासिकल एज, पृ0 24, बम्बई, 1954

108- एलन, जे, बी0 एम0 सी0 जी0 डी0, प्लेटX 14-20; अल्तेकर, ए0 एस0, सी0 जी0 डी0, प्लेट XVI 1.7

109 - वही, प्लेट XVIII 1-15 ; वही, प्लेट XVII 22-26

110- वही,

111- वही, प्लेट, XVI , 13-22; वही, प्लेट XVIII . 19-23

112- वही, प्लेट, XXIV , 13-15; वही, प्लेट, XVIII 26-29

113- वही, प्लेट, XXI और XXIV ; वही, प्लेट XVIII ; कनिंघम, ए0 एस0 आर0, IX , प्लेट V. 13.

114- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0, 1911-12, पृ0 58, नं0 83, प्लेट XX 83

115- थपल्याल, के0 के0, स्टडीज इन एन्शयन्ट इण्डियन सील्स, पृ0 195

116- ए0 एस0 आई0 ए0 आर0 1913-14, पृ0 125, प्लेट XLVII, 271

117- वही

118- इलाहाबाद म्यूजियम, नं0 144; तुलनीय थपल्याल, के0 के0 उपर्युक्त, पृ0 195

उपर्युक्त, पृ0 195, प्लेट XXX. 2.भारत कला भवन, नं0 6396.

120- थपल्याल, के0 के0 उपर्युक्त, पृ0 195, प्लेट IX.4.

121- बनर्जी, जे0 एन0, उपर्युक्त, पृ0 200

122- वही

123- मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, पृ0 98, बम्बई, 1962

124- ठाकुर, यू0, द हूणाज इन इण्डिया, पृ0 82-83, वाराणसी, 1968

125- जे0 ए0 एस0 बी0, 1894, पृ0 193-95 ; तुलनीय ठाकुर, यू0, उपर्युक्त, पृ0 283.

126- तुलनीय भीमराजराज के चाँदी के सिक्के, (अल्तेकर, ए0 एस0, सी0जी0डी0, पृ0 318, प्लेट, XIX. A. (और कनिंघम, ए0 एस0 आर0, जिल्द V, प्लेट, V. 16)

अध्याय - सात

निष्कर्ष

साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि कार्त्तिकेय अत्यन्त प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रहे हैं । जो भी हो, तीन हजार ई0 पू0 में पुष्पित पल्लवित होने वाली सैंधव सभ्यता में इसकी जानकारी नहीं थी । ऋग्वेद में कार्त्तिकेय अज्ञात हैं । किन्तु वैदिक साहित्य में कुछ ऐसे विचार (संकल्पनाएं) पाए जाते हैं जिनसे बाद में कार्त्तिकेय की अवधारणा मूर्त्त रूप धारण कर सकी । 'स्कन्द' और 'कुमार' शब्दों के विविध उपयोग तथा अग्नि और रूद्र के स्वरूप जिससे परवर्ती कार्त्तिकेय के स्वरूप की संरचना हुई, जिसे वैदिक वाङ्गमय में प्राप्त होता है । कार्त्तिकेय के चरित्र की विशेषताएं 'रूद्र' एवं 'अग्नि' के अतिरिक्त अन्य वैदिक देवताओं में जैसे मरूद 'अपाम-नपात' और सोम में भी पाई जाती है । अतएव हाप्किंस का यह कहना उचित प्रतीत होता है कि स्कन्द (कार्त्तिकेय) एकसंयुक्त देव हैं ।[1] शतपथ ब्राह्मण में इसे अग्नि और रूद्र का नवाँ रूप माना गया है ।[2] इसी ग्रन्थ में अग्नि, कुमार और रूद्र की कुछ मामलों में पहचान की गई है । इससे ग्रन्थ की रचना के समय तक स्कन्द के स्तर में क्रमश: वृद्धि होने का संकेत मिलता है । परवर्ती कार्त्तिकेय में दया एवं क्षमा का गुण विशेषकर बच्चों के प्रति पाया जाता है और इस देवता के इस प्रकार के गुण वैदिक साहित्य में भी प्राप्य हैं ।

उत्तर वैदिक काल में कार्त्तिकेय 'स्कन्द' के नाम से अत्यन्त लोकप्रिय देवता थे ।[3] छान्दोग्य उपनिषद में इसे सनत्कुमार से, जिन्होंने नारद को अज्ञान पर विजय प्राप्त करने की शिक्षा दी, समीकृत किया गया है । मैत्रायणी संहिता[4] और तैत्तिरीय आरण्यक[5] में इस देवता के विविध नामों - कुमार, कार्त्तिकेय, स्कन्द, षण्मुख, महासेन आदि - वाले गायत्री मन्त्र आए हैं । स्कन्द यज्ञ, जिसे धूर्त्तकल्प के नाम से भी जाना जाता है, में इस देवता की उपासना - विधियों (विधानों) का वर्णन है । यह कार्त्तिकेय की उपासना पर प्रकाश डालने वाले

महत्वपूर्ण ग्रन्थों में से एक है । यज्ञ-विधान में वर्णित पूजा-पद्धति, परम्परागत पूजा-पद्धति से, जैसा कि श्रीमदभगवद्गीता में उल्लिखित है, अधिक भिन्न नहीं है । यह कार्त्तिकेय के अनन्य भक्त के द्वारा लिखित ग्रन्थ है ।

सूत्र साहित्य में कार्त्तिकेय की उपासना की व्यापकता के सकारात्मक साक्ष्य उपस्थित हैं । बौधायन धर्मसूत्र में कार्त्तिकेय के विविध नामों जैसे षण्मुख, जयन्त, विशाख, सुब्रह्मण्य और महासेन का सन्दर्भ प्राप्त होता है ।[6] हिरण्यकेसिन गृह्यसूत्र में इसका उल्लेख विष्णु, रूद्र तथा अन्य देवताओं के साथ किया गया है ।[7] ये सन्दर्भ निश्चय ही इस देवता द्वारा प्राप्त की गई विशिष्ट लोकप्रियता के द्योतक हैं । इससे भी अधिक स्कन्द सहित ये देवता गृहस्थों की दैनिक पूजा एवं तर्पण में सम्मिलित थे । ये सभी सन्दर्भ उत्तर वैदिक तथा पूर्व महाकाव्य में कार्त्तिकेय की आराधना के एक बिन्दु पर पहुँचने का स्पष्ट संकेत करते हैं । चूंकि उत्तर वैदिक काल में राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए । जनों के स्थान पर जनपदों का अस्तित्व सामने आया । आर्य एवं आर्येत्तर तत्वों का सामाजिक दृष्टि से आपस में सम्पर्क हुआ । धर्म के क्षेत्र में जीवन्त अवधारणाओं का विकास हुआ । इसी प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप कुमार स्कन्द, विशाख देवताओं की लोकप्रियता भी बढ़ी ।

महाकाव्यों एवं पुराणों में कार्त्तिकेय अपने पूर्ण रूप में प्रकट होते हैं । सामान्यत: शिव तथा पार्वती के पुत्र के रूप में वर्णित, ये पहले अग्नि से, उत्पन्न प्रतीत होते हैं । कार्त्तिकेय के जन्म से सम्बन्धित अनेक कहानियां महाकाव्यों में ही नहीं बल्कि पुराणों में भी है (कालिदास के कुमारसंभव का विस्तृत वर्णन जिस पर आधारित है) शिव से अग्नि तक की स्वामी कार्त्तिकेय की पैतृकता को, रूद्र के रूप में, जो अग्नि की उपाधि है और शिव की भी, समझा जा सकता है । महाकाव्यों एवं पुराणों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी कार्त्तिकेय

जंगली जनजातियों और सामान्य विश्वास के देवता के रूप में प्रारम्भ होकर, देवताओं की सेना के सेनापति के स्तर तक पहुँचे और उनका विवाह देवसेना (जिसका लाक्षणिक अर्थ देवताओं की सेना है) से हुआ। उसके सम्मान में मन्दिरों का निर्माण किया गया। अनेक स्थान उसके लिए पवित्र माने गए हैं। यहाँ तक जलागार और पहाड़ियाँ इस देवता के लिए विशेष रूप से पवित्र हैं। महाकाव्यों एवं पुराणों से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इस समय तक कार्त्तिकेय सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से जन मानस में अत्यन्त लोकप्रिय हो चुके थे।

पाणिनि, अपने समय के देवताओं की मूर्तियों के निर्माण का कोई संकेत नहीं करते हैं। किन्तु पतंजलि के महाभाष्य में शिव, स्कन्द, विशाख की पूजा के लिए निर्मित मूर्तियों का उल्लेख है।[3] महाभाष्य से यह भी स्पष्ट है कि मौर्य काल में स्कन्द और विशाख की पूजा इतनी लोकप्रिय थी कि मौर्य शासक ने इस देवता की मूर्तियों की बिक्री से रिक्त कोष को भरने का विचार किया था। इससे यह संकेत मिलता है कि इस समय राज्य की आर्थिक स्थिति दयनीय हो चुकी थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह पता चलता है कि मौर्यकाल में इस देवता (सेनापति) की पूजा होती थी। इस बात में शायद ही कोई सन्देह हो कि पतंजलि (द्वितीय शताब्दी ई० पू०) के समय में, जब शुंग नरेश पुष्यमित्र शुंग का शासन था, कार्त्तिकेय की पूजा निरन्तर होती रही। पतंजलि के द्वारा स्कन्द और विशाख का अलग-अलग उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्कन्द और विशाख के रूप में उल्लिखित दो भिन्न-भिन्न देवताओं का असंगत समीकरण कुषाण नरेश हुविष्क के सिक्कों पर स्कन्द-कुमार, विशाख और महासेन की आकृतियों का उनके नामों के साथ, पाए जाने से किया गया है। वाराहमिहिर के समय में भी उनकी स्थिति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं लगता क्योंकि वे भी इन्हें दो अलग-अलग देवताओं के रूप में मानते हुए प्रतीत होते हैं। जे० एन०

बनर्जी की अवधारणा है कि 'महामयूरी' में कार्त्तिकेय एवं कुमार एक ही देवता हैं जिनका प्रसिद्ध मन्दिर रोहतक में है । अमरकोश, जिसमें कार्त्तिकेय के विविध नामों को गिनाया गया है, संकेत करता है कि ये एक ही देवता के नाम हैं ।[10]

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में, कार्त्तिकेय की उपासना प्रमुखता प्राप्त कर रही थी जो पूर्वी पंजाब, रोहतक, उज्जैन, भीटा और अयोध्या से प्राप्त जनजातियों सिक्कों, कुषाण राजा हुविष्क के सिक्कों तथा कतिपय प्रस्तर अभिलेखों से अभिप्रमाणित होता है । यौधेय, विस्तृत रूप से इस देवता की पूजा करते थे । यौधेय गणों के प्रमुख नगर कार्त्तिकेय का विशेष प्रिय निवास था । रोहितक को कार्त्तिकेय के प्रिय नगर के रूप में वर्णित किया गया है । यहाँ तक कि यौधेय गणों ने अपना राज्य इस देवता को समर्पित किया था और 'गण' उसके नाम पर राज्य करते थे । तृतीय एवं चतुर्थ शताब्दी की एक मुहर से जो भीटा से मार्शल को प्राप्त हुई है, इनके शासन के स्वरूप की जानकारी मिलती है । शक श्रीधरवर्मन कार्त्तिकेय का अनुयायी था । कुषाण शासक हुविष्क ने भी कार्त्तिकेय की आकृति या उसके विविध रूपों, स्कन्द, कुमार, विशाख और महासेन का अंकन अपनी मुद्राओं पर कराया ।[11] इससे यह स्पष्ट है कि द्वितीय शताब्दी ईसवी में भारतीयों के एक वर्ग के द्वारा इस देवता को अत्यन्त सम्मान प्राप्त था । उत्तर प्रदेश में कानपुर के निकट लालाभगत से प्राप्त इसी काल के बालुका प्रस्तर स्तम्भ पर मयूराकृति के साथ तथा प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी ई0 के अयोध्या से प्राप्त सिक्कों पर शिखायुक्त मयूराकृति से उत्तर भारत में इस काल में इसकी पूजा के पूर्ण रूप में विकसित होने का प्रमाण मिलता है । पाकिस्तान हजारा जिले के अब्बोताबाद से प्राप्त अभिलेख से गाशूर शफारा, जो स्पष्टतः विदेशी लगता है, द्वारा निर्मित कार्त्तिकेय मन्दिर का सन्दर्भ मिलता है । ऐसा प्रतीत होता है कि आक्रान्ता के रूप में देश पर अपनी विजय के उद्देश्य से प्रेरित

होकर वे युद्ध देवता की ओर आकर्षित हुए । कुषाण काल की एक मूर्ति के पाद लेख से विदित होता है कि उसकी स्थापना चार भाइयों ने की थी । अभिलेख से यह स्पष्टतः संकेत मिलता है कि वह देवता न केवल शासक वर्ग और उच्चाधि - कारियों में लोकप्रिय था वरन् जनसामान्य में भी लोकप्रिय था, जो इसकी उपासना करते थे । विदेशी शासकों द्वारा कार्त्तिकेय की उपासना इस देवता की लोकप्रियता का चरमोत्कर्ष है ।

गुप्तकाल में भी कार्त्तिकेय की पूजा में सातत्य बना रहा और अपेक्षाकृत उसकी लोकप्रियता में वृद्धि हुई । गुप्त शासक वैष्णव मतानुयायी (परमभागवत) थे, फिर भी ऐसा मानने का पर्याप्त कारण है कि कम से कम कुमारगुप्त प्रथम ने कार्तिकेय को अत्यधिक महत्व दिया था । यद्यपि चन्द्रगुप्त II वैष्णव मतानुयायी था, फिर भी कुमार (कार्त्तिकेय) में उसकी आस्था थी । इसका समर्थन उसने पुत्र 'कुमारगुप्त' के नामकरण से होता है । कुमारगुप्त प्रथम ने अपने पुत्र का नाम 'स्कन्द' (गुप्त) रखा । यह भी महत्वपूर्ण है कि गुप्त-मुद्रा के रूप में उसने गरूड़ के स्थान पर मयूर को स्वीकृत किया । उसके कार्त्तिकेय-प्रकार के स्वर्ण-सिक्के, जो उसके शासन में ही प्रारम्भ किये गए थे उस देवता के प्रति सच्ची मुद्राशास्त्रीय श्रद्धांजलि थी । प्राक् गुप्त की अपेक्षा गुप्तकाल में कार्त्तिकेय की लोकप्रियता कम नहीं हुई थी, यह इस बात से अभिप्रमाणित हो जाता है कि संस्कृत के महान कवि एवं नाटककार कालिदास ने अपने उत्कृष्ट ग्रन्थ 'कुमारसंभव' द्वारा इस देवता को अमर कर दिया । इसमें न केवल देवता के जन्म वरन् तारक राक्षस के अन्त का भी वर्णन किया गया है । कालिदास के वर्णन से यह पता चलता है कि कार्त्तिकेय का मन्दिर देवगिरि [12] (मध्यप्रदेश) में था । इसी तरह बिलसद अभिलेख से एक दूसरे मन्दिर की सूचना मिलती है जिसमें एक प्रतोली जोड़ी गई थी ।[13] गुप्तकाल से सम्बन्धित कार्त्तिकेय की अनेक मूर्तियों का देश के विभिन्न भागों से पाया जाना, इस देवता की विस्तृत सामाजिक एवं धार्मिक

लोकप्रियता को अभिप्रमाणित करता है । कालिदास ने भी मयूर की पीठ पर आसीन इस देवता का प्रतिमा-शास्त्रीय उल्लेख किया है ।

यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि शूद्रक रचित मृच्छकटिक में कार्त्तिकेय का चोरों, लुटेरों और हत्यारों के देवता के रूप में विवेचन किया गया है । इससे पहले स्कन्द गुप्त ने इसे चालाकी एवं धूर्तता के देवता के रूप में स्वीकार किया गया है ।

निश्चय ही गुप्तकाल के बाद भी कार्त्तिकेय की पूजा में निरन्तरता बनी रही । उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले के कार्त्तिकेयपुर तथा उत्तरी बंगाल के पुण्ड्रवर्द्धन जैसे स्थान इसकी पूजा के मुख्य केन्द्र थे । किन्तु उत्तरी भारत में यह देवता अपना आधार संकुचित करता हुआ प्रतीत होता है । उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग में गुप्तकाल जैसी महत्ता इस देवता की नहीं रह जाती है । इसके स्थान पर उसे शिव के परिवार के एक सदस्य के रूप में स्वीकार किया जाने लगा । उत्तर-गुप्तकाल के अभिलेख आदित्यसेन के अफसद लेख[14] और महासेनगुप्त के मल्लार प्लेट में उसे शिव के पुत्र रूप में उल्लिखित करते हैं । उसे पृष्ठभूमि में ढ़केल दिया गया । उड़ीसा और खजुराहो के मन्दिर की दीवारों पर उसके मूर्त्त प्रतिरूप परशु-देवता के रूप में दृष्टिगत होते हैं । मध्य प्रदेश के रीवा से प्राप्त एक अभिलेख से भी यही निष्कर्ष निकलता है ।

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में स्वामी कार्त्तिकेय की स्थिति भिन्न थी । संगम काल की तरह कार्त्तिकेय, मुरुगन एवं सुब्रह्मण्य के नाम से, मध्यकाल तक लोकप्रिय बना रहा । उसका उल्लेख प्राचीनतम संगम साहित्य 'तोलकाप्पियम' में मिलता है । तिरूमुरुगारूप्पदाई, सन्त नक्कीरार की महत्वपूर्ण कृति है । उन्होंने केवल मुरुगन की प्रशंसा के गीत गाए बल्कि कुशलता पूर्वक इस देवता से सम्बद्ध अनेक स्थानों का वर्णन किया । परिपादल,

अहनानुर, कुरूनची तथा अन्य ग्रन्थों में मुरूगन के जन्म और उसके चरित्र एवं गुरूता तथा प्रेम के कार्यों का इतना सुन्दर और महत्त्वपूर्ण वर्णन किया गया है कि इस बात के लिए कोई संदेह नहीं रह जाता कि तमिलों के धार्मिक जीवन में उनकी सभ्यता के कठिन समय में भी मुरूगन (कार्त्तिकेय) के प्रति अगाध श्रद्धा थी । पुरालिपिगत साक्ष्य इक्ष्वाकु, कदम्ब, पूर्वी चालुक्य तथा पल्लव शासकों के मुरूगन के पूजक एवं अनुयायी होने के स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । सुदूर दक्षिण केरल में, जहाँ इस देवता के अनेक मन्दिर बने हैं, आज भी कार्त्तिकेय की पूजा होती है । महान चोल शासक, जो शैव मतानुयायी थे, जिन्होंने तन्जौर एवं गंगैकोंडचोलपुरम् में उत्तुंग और वास्तु-कला की की दृष्टि से उत्कृष्ट शिव मन्दिर बनवाए, भी मुरूगन के महान प्रशंसक थे । महाद्वीप के विभिन्न भागों से बड़ी संख्या में और विविध रूपों में प्राप्त इस देवता की मूर्त्तियाँ, दक्षिण भारत में इसकी लोकप्रियता एवं प्रमुखता को प्रमाणित करती हैं । कार्त्तिकेय की पूजा दक्षिण भारत में अभी भी इतनी प्रचलित है कि शायद ही कोई गाँव, नगर बगीचा, पहाड़ी, दुर्गम स्थान हो, जहाँ उसके मन्दिर न पाए जाते हों । इस प्रकार उत्तरी भारत में सातवीं शताब्दी ईसवी के बाद कार्त्तिकेय की पूजा में ह्रास हुआ और यह शैव धर्म का एक अंग हो गया जबकि दक्षिण भारत में निरन्तरता थी और आज भी है ।

बंगाल में कार्त्तिकेय को गणिकाओं के देवता स्वीकार किया जाता है और असम्मानित महिलाएँ अपने हित में उसकी अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए विशेष अवसरों पर मन्दिर जाती थी ।[16] महाराष्ट्र में कोई भी सधवा स्त्री (सुहागिनी स्त्री) कभी भी कार्त्तिकेय के मन्दिर में नहीं जाती थी ।[17]

इस प्रकार साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों के सर्वेक्षण, समीक्षण एवं अन्वीक्षण से यह स्पष्ट है कि देवताओं के सेना-अधिपति स्वरूप कार्त्तिकेय काफी पहले से लोकप्रिय थे । गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल के पश्चात् इसकी सामाजिक

और धार्मिक प्रतिष्ठा में क्रमश: वृद्धि होती गई । न केवल दक्षिण भारत में बल्कि उत्तर भारत में आस्तिक हिन्दुओं के मानस में कार्त्तिकेय अद्यावधि एक स्थान रखते हैं । सामान्यत: यह माना जाता है कि कार्त्तिक महीने की पूर्णमासी को कृत्तिका नक्षत्र में जो व्यक्ति कार्त्तिकेय की पूजा अर्चना करता है, वह स्थायी आनन्द और भौतिक समृद्धि प्राप्त करता है ।

सन्दर्भ - ग्रन्थ

1- हाप्किंस, ई0 डब्ल्यू0, इपिक मैथालॉजी, पृ0 229 स्ट्रेसवर्ग, 1895.

2- शतपथ ब्राह्मण, जे0 एग्गलिंग का अनुवाद , भाग III पृ0 157-61, आक्सफोर्ड, 1882-1900.

3- काणे, पी0 वी0, हिस्ट्री आँव धर्मशास्त्र, 5, पृ0 58, पूना, 1930-53.

4- मैत्रायणी संहिता, 2•9•1•11•12,

5- तैत्तिरीय आरण्यक, 10•15 पूना, 1927.

6- बौधायन धर्मसूत्र, 2•5•8• वाराणसी, सं0 1991.

7- हिरण्यकेशिन गृह्यसूत्र, 2•8•19.

8- पाणिनि, V.3•99•

9- कौटिल्य का अर्थशास्त्र, II, 4•17•19• मैसूर 1956.

10- अमरकोश, 1•1• 39-40• पूना, 1941.

11- गार्डनर, पी0, बी0 एस0 सी0, प्लेट XXVIIII• 22-24, लन्दन, 1856.

12- मेघदूत - पूर्वमेघ, 43-45• सी0 किंग द्वारा अनुवादित, लन्दन, 1930.

13- फ्लीट0 सी0 आई0 आई0, III, न0 10, पृ0 43-44, कलकत्ता, 1888•

14- वही, न0 42.पृ0 23, कलकत्ता, 1888.

15- ई0 आई0 23, पृ0 122

16- हिन्दू आर्गन (जाफना, सिलोन) 1937, अप्रैल 13, पृ0 1

17- राव, टी0 ए0 जी0, ई0 एच0 आई0 II ii, पृ0 415• मद्रास, 1914-1916.

सन्दर्भ ग्रन्थ

मूल ग्रन्थ

अथर्ववेद - सम्पादित श्रीपाद शर्मा, औंध नगर, बम्बई, 1940

अश्लायन गृह्यसूत्र : सम्पा० टी० गणपति शास्त्री हरदत्त की टीका के साथ, त्रिवेन्द्रम, 1923

अष्टाध्यायी (पाणिनि) : सम्पादित एवं अनुवादित श्रीशचन्द्र वसु, इलाहाबाद 1891-97

अमरकोश (अमर सिंह) : भट्ट क्षीर स्वामी की टीका सहित, सम्पा० एच० डी० शर्मा और एन० जी० सरदेसाई, पूना 1941

अर्थशास्त्र (कौटिल्य) : आर० शामशास्त्री द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित, [पाँचवाँ संस्करण) मैसूर, 1956, आर० पी० कांग्ले द्वारा भी सम्पादित बम्बई 1960 ; आर० पी० कांग्ले द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित, बम्बई 1963

अग्निपुराण : एम० एन० दत्त द्वारा अनुवादित भाग 1 और 2, कलकत्ता 1903-04

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र : सम्पा० टी० गणपति शास्त्री सहित हरदत्त की टीका, त्रिवेन्द्रम 1923

ॠग्वेद : श्रीपाद शर्मा, औध नगर, बम्बई 1940

कथासरित्सागर ‹सोमदेव›: एच0 सी0 तने द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद ‹ द ओशन ऑव स्टोरी› और एन0 एम0 पेन्जर द्वारा प्रस्तावना दस भागों में लन्दन 924-28

काश्यप संहिता : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1938

काव्य मीमांसा‹राजशेखर›: सी0 डी0 दलाल और आर0 ए0 शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा के0 एस0 रामास्वामी शास्त्री शिरोमणि द्वारा संशोधित एवं परिवर्द्धित, जी0 ओ0 एस0 संख्या 1, बड़ौदा 1934

कादम्बरी‹बाणभट्ट› : भानुचन्द और सिद्धचन्द की टीका के साथ नवां संस्करण, बम्बई, 1948

कुमार संभव ‹कालिदास›: सातवां संस्करण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1916

कुट्टनीमतम(दामोदरगुप्त): सम्पा॰ तन्सुखराम त्रिपाठी बम्बई, १९२४।

कूर्म पुराण : नीलमणि मुखोपाध्याय, बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1890

गरूड़ पुराण : एम0 एन0 दत्त द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित

चरक संहिता ‹चरक› : सम्पा0 जे0 विद्यासागर, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1896

छान्दोग्य उपनिषद : शंकर की टीका सहित और हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण, गीता प्रेस, वि0 स0 2011

तैत्तिरीय आरण्यक : आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, संख्या 36, पूना, 1927

तैत्तिरीय ब्राह्मण : कृष्ण यजुर्वेद का सायण की टीका सहित, सम्पा० आर० एल० मित्रा, तीन भागों में कलकत्ता, 1959 - 70

तिलक मंजरी §धनपाल§ : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1924

तोल्कप्पियम : मूल सम्पा० सी० आर० नमशिवय मुदलियर, मद्रास 1922-24 ; नच्छिनरक्किनअय्यर और परेश्रीयर की टीकाएं भाग I §सम्पा०§ एस० वेयपुरी पिल्लई मद्रास, 1934 और भाग II, §सम्पा० दोरईस्वामी अय्यर, मद्रास, 1935

देवीभागवत पुराण : श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, सं० 1555

पत्तुप्पाट्टु : द्वितीय संस्करण, यू० वी० एस० अय्यर० मद्रास, 1920

पद्म पुराण : सम्पा० एम० सी० आप्टे द्वारा, आनन्द आश्रम प्रेस, पूना, 1893

ब्रह्म पुराण : आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1395

ब्रह्माण्ड पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1923

बृहत् संहिता : वाराणसी, 1895-97

बौधायन धर्मसूत्र : ए० चिन्ना स्वामी शास्त्री द्वारा सम्पा०, काशी संस्कृत सीरीज, वाराणसी, सं० 1991; और आर० शाम शास्त्री द्वारा सम्पा, मैसूर, 1920

भगवद्गीता : गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2014

भागवत पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० स० 2010

भविष्य पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1910

महाभाष्य (पतंजलि) : सम्पा० एफ० कीलहार्न, तीन भागों में, द्वितीय संस्करण, बम्बई 1892

मेघदूत (कालिदास) : सी० किंग द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित लन्दन 1930

मृच्छकटिक (शूद्रक) निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1936, आर० डी० करमाकर द्वारा सम्पादित एवं अनुवादित, पूना, 1937

मत्स्य पुराण राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री द्वारा अनुवादित, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० 2003; जमनदास अख्तर द्वारा सम्पा०, दिल्ली, 1972

महाभारत : के० एम० गांगुली द्वारा अनुवादित (नया संस्करण) कलकत्ता, 1926-32

मार्कण्डेय पुराण : सम्पा० के० एम० बनर्जी, बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1862

मैत्रायणी संहिता : वान स्क्रोडर द्वारा सम्पादित, लेपजिंग, 1881-86

रघुवंश (कालिदास) : सम्पा० अंग्रेजी अनुवाद सहित, सी० आर० नन्दरगिकर बम्बई, 1897

रामचरित(सन्ध्याकर नन्दी) : द्वितीय संस्करण, आर० सी० मजूमदार, आर० जी० बसाक और एन० जी० बनर्जी, राजशाही 1935

राजतरंगिणी(कल्हण) : सम्पा० एम० ए० स्टीन० दिल्ली, 1960, एम० ए० स्टीन द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित दिल्ली 1961 और आर० एस० पण्डित, इलाहाबाद, 1935

रामायण (वाल्मीकि) : जानकी दास शर्मा द्वारा सम्पादित - अनुवादित दो भागों में, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2017

लिंग पुराण : सम्पा० जे० विद्यासागर, बिब्लियोथिका कलकत्ता, 1885

ललित विस्तर : एस० लेफ्मेन द्वारा सम्पादित, दो भागों में, हाले 1902-08; सम्पा० आर० एल० मित्रा, बिब्लियोथिका कलकत्ता, 1889

वाजसनेयी संहिता : उव्वट और महिधर की टीकाओं सहित , बी० एल० शास्त्री पन्सिकर द्वारा सम्पादित बम्बई 1912

वाराह पुराण : आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1905

वायु पुराण : राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री द्वारा अनुवादित हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग , सं0 2007

विष्णु पुराण : मूल सहित हिन्दी अनुवाद गीता प्रेस, गोरखपुर, वि0 सं0 2009, एच0 एच0 विल्सन द्वारा अनुवादित द्वितीय संस्करण, कलकत्ता 1961, और एम0 एन0 दत्त द्वारा अनुवाद, कलकत्ता, 1894

विष्णुधर्मोत्तर पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1912

विनयपिटक : टी, डब्ल्यू0 रीज डेविड्स तथा एच0 ओल्डेनबर्ग द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद, एस0 बी0 ई0, आक्सफोर्ड, 1881-85

स्कन्द पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1910

शतपथ ब्राह्मण : जे0 एग्गलिंग द्वारा अनुवादित पाँच भागों में एस0 बी0 ई0, XII, XXVI, VLI, XLIII और XLVI आक्सफोर्ड, 1882-1900

शिव पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस , बम्बई, तिथि रहित

शिल्प्पादिकारम् : वी0 आर0 आर0 दीक्षित द्वारा ' द लेडी आॅव द अंक्लेट का अंग्रेजी अनुवाद

हिरण्यकेशिन् गृह्यसूत्र : एच0 ओल्डेन बर्ग द्वारा अनुवादित, एस0 बी0 ई0 XXX, 1892

हर्षचरित {बाणभट्ट} : सं0 निर्णय सागर प्रेस

सहायक ग्रन्थ

अग्रवाल, पी0 के0 : स्कन्द-कार्त्तिकेय, वाराणसी, 1967

अग्रवाल, बी0 एस0 : ए कैटलाग आफ द ब्राह्मणिकल इमजेज इन मथुरा आर्ट, यू0 पी0

" " " हिस्टारिकल सोसाइटी, लखनऊ, 1951

" " " ए हैण्डबुक आफ द स्कल्पचरस इन द कर्जन म्यूजियम आफ मथुरा, इलाहाबाद, 1940

" " " भारतीय कला, वाराणसी, 1966

" " " इण्डिया एज नोन टू पाणिनि, लखनऊ, 1953

" " " मत्स्य पुराण एक अध्ययन, वाराणसी, 1963

" " " प्राचीन भारत में लोकधर्म

अल्तेकर, ए0 एस0 : कैटलाग आँव द गुप्ता गोल्ड क्वायन्स इन द बयाना हार्ड, बम्बई, 1954

क्वायनेज आँव द गुप्ता डायनेस्टी, बम्बई, 1954

अर्वमूथन, टी0 जी0 : गणेश मद्रास , 1951

अश्तन, एल0 : द आर्ट आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, लन्दन, 194

आत्किन्शन, एफ0 एम :(अनु0 फ्रांसीसी से) एशियाटिक मैथालॉजी

आयंगर, एम0 श्रीनिवास : तमिल स्टडीज मद्रास, 1974

आयंगर, पी0 टी0 एस0 : हिस्ट्री आफ द तमिल्स, मद्रास, 1929

अय्यर, पी0 वी0 जे0 : साउथ इण्डियन फेस्टिवेल्स, मद्रास, 1921

साउथ इण्डियन शाइन्स, मद्रास, 1920

अय्यर, सी0 बी0 नारायण : ओरीजिन एण्ड अर्ली हिस्ट्री आव शैविज्म इन साउथ इण्डिया, मद्रास, 1936

अवस्थी रमानाथ : खजुराहो की देव प्रतिमाएं, आगरा 1967

अत्किन्सन, एफ0 एम0 :एशियाटिक मिथालॉजी, फ्रेन्च से अनुवादित

आनन्द मुल्कराज : द हिन्दू व्यू आफ आर्ट, नई दिल्ली, 1957

इन्घाल्ट, एच0 : गांधार आर्ट इन पाकिस्तान, न्यू यार्क, 1957

इओन्स वेरोनिका : इण्डियन मिथोलॉजी, लन्दन, 1968

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान (हिन्दी में) वाराणसी, 1970

उपाध्याय, भगवतशरण : इण्डिया इन कालिदास, इलाहाबाद, 1947

एलन, जे0 : केटलॉग ऑफ द क्वाइन्स ऑफ एन्श्यन्ट इण्डिया (ब्रिटिश म्यूजियम), लन्दन, 1936

केटलॉग ऑफ द क्वाइन्स ऑफ द गुप्ता डायनेस्टीज एण्ड ऑफ शशांक किंग ऑफ गौड (ब्रिटिश म्यूजियम) लन्दन 1914

कुमार स्वामी, ए0 के0 : हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट लन्दन, 1927

यक्ष दिल्ली, 1971

काणे, पी0 वी0 : हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र (पाँचों भाग) पूना, 1930-53

कर्मारकर, ए0 पी0 : द रिलिजन्स ऑफ इण्डिया, भाग - 1 लोनावाला, 1950

कीथ, ए0 बी0 : ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, आक्सफोर्ड, 1956

द रिलिजन आफ एण्ड फिलासफी आफ द वेदाज एण्ड उपनिषद्‌स हार्वर्ड ओरियन्ट सीरीज, XXXI 1925

कनिंघम, ए0 : क्वाइन्स आफ एन्शयन्ट इण्डिया, वाराण्सी, 1963

क्रामिस, स्टेला : इण्डियन स्कल्पचर, कलकत्ता, 1933

कुमार0 बी0 : द अर्ली कुषाणाज, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, 1973

कुमार, पी0 : शक्ति कल्ट इन एन्शयन्ट इण्डिया, वाराणसी, 1974

कुरूक्कल, के कैलाशनाथ : ए स्टडी आफ स्कन्द कल्ट इन एपिक्स एण्ड पुराणस, यूनिवर्सिटी आफ सीलान रिव्यू, भाग XIX सं0 2

कोसेन्स , एच0 चालुक्यान आर्किटेक्चर आफ द कनारेज डिस्ट्रिक्ट, कलकत्ता, 1926

गोपालचारी, के : अर्ली हिस्ट्री आँव आन्ध्र कन्ट्री

गार्डनर, पी0 : द क्वाइन्स आफ द ग्रिक एण्ड द सिथिक किंग्स आफ बैक्ट्रीया एण्ड इण्डया इन द ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन 1856

गुप्ता, आर0 एस0 : आयकोनाग्राफी आफ द हिन्दूज बुद्धिस्टस एण्ड जैन्स, बम्बई, 1972

गुप्ता, शक्ति एम0 : फार्म दैत्याज टू देवताज इन हिन्दू मैथालॉजी, बम्बई, 1973

गुप्ता, पी0 एल0 : पटना म्यूजियम कैटलॉग ऑफ एन्टिक्वीट्स, पटना, 1965; क्वाइन्स, नई दिल्ली, 1969

गौंडा, जे0 : एस्पेक्टस ऑफ अर्ली वैष्णविज्म, उत्रेत्चत, 1954

चन्द, आर0 पी0 : एक्सपलोरेशन इन उड़ीसा (एम0ए0एस0आई0, 44) कलकत्ता, 1930

चन्द्र, पी0 : स्टोन स्कल्पचर इन द इलाहाबाद म्यूजियम, पूना 1970

चटर्जी, ए0 के0 : द कल्ट आफ स्कन्द-कार्त्तिकेय इन एन्शयन्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1970

चट्टोपाध्याय, बी0 : द एज आफ कुषाणाज, कलकत्ता, 1967

चट्टोपाध्याय, एस0 : अर्ली हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता, 1958
द इवोल्यूशन ऑव थीस्टिक सेक्ट्स इन एन्शयन्ट इण्डिया कलकत्ता, 1962

चतुर्वेदी, सीताराम : कालिदास ग्रन्थावली (हिन्दी में) वाराणसी, सं0 2007

जोशी, एन0 पी0 : मथुरा स्कल्पचरस, मथुरा, 1966

जिमर, एच0 : द आर्ट आॅव इन्डियन एशिया, दो भागों में, न्यू यार्क, 1955

ठाकुर, यू : समएस्पेक्टस आॅफ एन्श्यन्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, नई दिल्ली, 1974

डेनियल, एलन : हिन्दू पाॅलीथिज्म, लन्दन, 1963

डे, नन्दू लाल : द ज्याग्राफिकल डिक्सनरी आॅफ एन्सेएन्ट एण्ड मीडिवल इण्डिया, नई दिल्ली, 1971

त्रिपाठी, आर0 एस0 : हिस्ट्री आॅफ एन्सिएन्ट इण्डिया, दिल्ली, बनारस और पटना, 1960

दास, ए0 सी0 : ऋग्वैदिक कल्चर, कलकत्ता और मद्रास, 1925

दासगुप्ता, के0 के0 : ए ट्राइबल हिस्ट्री आॅफ एन्श्यन्ट इण्डिया; कलकत्ता, 1974

दास गुप्ता, एस0 एन0
और डे, एस0 के0 : ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, भाग 1,
कलकत्ता, 1962

दीक्षित, एस0 के0 : द मदर गाडेज, पूना, 1941

दीक्षितर, वी, आर0 आर0: द पुराण इन्डेक्स, तीन भागों में, यूनिवर्सिटी
आफ मद्रास, 1951-55

दिवाकर, आर0आर : बिहार थ्रू द एजेज, नई दिल्ली, 1959

द्विवेदी, एच0 एन0 : ग्वालियर राज्य में प्राचीन मूर्तिकला, मुरर,
ग्वालियर

नागर, एम0 एम0 : पुरातत्व संग्रहालय मथुरा की प्राच्य पुस्तक, इलाहाबाद,
1947

नौटियाल, के0 पी0 : द आर्क्योलाजी आफ कुमायूं, वाराणसी, 1971

नवरत्नम् आर0 : कार्त्तिकेय-द डिवाइन चाइल्ड, बम्बई, 1973

पाडेय, एल0 पी0 : सन वर्शिप इन एन्श्यन्ट इण्डिया, वाराणसी, 1971

पाणिग्रही, के0 सी0 : आर्कलाजिकल रिमेन्स एट भुवनेश्वर, बम्बई, कलकत्ता,
मद्रास, 1892

पाठक, वी0 एस0 : शैव कल्टस इन नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, 1960

पिल्लई, जे0एम0एस0 : द कल्ट आॅफ मुर्गा आर सुब्रह्मण्यम समरी आफ पेपर XIII आॅल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स, नागपुर 1946

" " " . पलनी, द सेक्रेड हिल आॅफ मुर्गा, मद्रास, 1948, तिरूचेन्दूर मद्रास, 1951

पिल्लई के॰ स्न॰ शिवराज: : द क्रोनोलाजी आफ अर्ली तमिल्स मद्रास 1932

पिल्लई, सुन्दरम : सम माइल स्टोन इन तमिल लिटरेचर, मद्रास, 1895

पिल्लई, वेषापुरी एव0 : ए हिस्ट्री आॅफ तमिल लैन्गुएज एण्ड लिटरेचर, मद्रास, 1956

प्रसाद, एव0 के0 : द पालिटिकल एण्ड सोसियो रीलिजियस कन्डीशन आॅफ विहार, वाराणसी 1970

पुरी, वी0 एन0 : इण्डिया अण्डर द कुषाणाज, बम्बई, 1965

फ्लीट, जे0 एफ0 : इन्स्क्रप्शन्स आॅफ द अर्ली गुप्ता एण्ड देयर शक्सेसर, सी0 आई0 आई0, III, कलकत्ता, 1888

बाजपेयी, के0 डी0 : आर्कयोलाजी इन उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1957

बनर्जी, जे० एन० : डेवेलपमेन्ट आॅफ हिन्दू आयकोनोग्राफी, कलकत्ता, 1956

रिलिजन इन आर्ट एण्ड आर्कियोलाजी, लखनऊ, 1968

बनर्जी० के० डी० : बास रिलीफ्स आॅफ बादामी (एम० ए० एस० आई० 25), 1928

" " " ईस्टर्न इण्डियन स्कूल आॅफ मिडिवल स्कल्पचर, ए० एस० आई, न्यू इम्पीरियल सिरीज, भाग XLVII दिल्ली, 1933·

" " " द शिव टेम्पल इन भूमरा (एम० ए० एस० आई० 16) 1924

बर्थ, ए० : द रिलिजन्स आॅफ इण्डिया, लन्दन, 1882

बरूआ, बी० के० : ए कल्चरल हिस्ट्री आॅफ असम नौगाँव, असम, 1951

बसाक, आर० जी० और और भट्टाचार्य, डी० सी० : कैटलाग आॅव द आर्कियोलाजिकल रेलिक्स इन द म्यूजियम आॅव द वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही, 1919

बेदकर, वी० एम० : कार्त्तिकेय (स्कन्द) इन संस्कृत लिटरेचर, विथ स्पेशल रेफरेन्स टू द महाभारत : फार्म ए फाॅक स्प्रीट टू द चीफ वार गाड एनाल्स आॅफ द भण्डारकर ओरियन्टल

ब्लूम फील्ड, एम0 : द रिलिजन आँव द वेदाज, न्यूयार्क और लन्दन, 1908

बटरवर्थ ए0 और वेट्टी : नेल्लोर इन्स्क्रिप्शन्स, मद्रास 1905

भट्टाचार्य, बी0 सी0 : द जैन आयकोनोग्राफी, लाहौर, 1939

भट्टाचार्य, एस0 सी0 : इण्डियन इमेजेज, कलकत्ता और शिमला 1921

भाट्टाचार्य, बी : इण्डियन बुद्धिस्ट आयकोनोग्राफी, कलकत्ता, 1956

भट्टाचार्य, एच0 : द कल्चरल हेरिटज आँव इण्डिया, भाग - IV कलकत्ता, 1953

भट्टसाली, एन0 के0 : आयकोनोग्राफी आँव बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मनिकल स्कल्पचर इन द ढाका म्यूजियम, ढाका, 1929

भण्डारकर, डी0 आर0 : क्रामिकल लेक्चर्स इन एन्शयन्ट इण्डियन न्यूमिसमेटिक्स कलकत्ता, 1921 ; लिस्ट आँव इन्सक्रिप्शन्स आँव नार्दर्न इण्डिया, अपेन्डिक्स टू ई॰ आई॰, भाग XIX-XXII

भण्डारकर, आर0 जी0 : वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलिजिअस सिस्टम्स, पूना, 1928

मैकडानेल, ए0 ए0 : वैदिक मैथालाँजी, वाराणसी, 1963
वैदिक इन्डेक्स आँव नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स दो भागों में, वाराणसी, 1958॰ हिस्ट्री आँव संस्कृत लिटरेचर

मजूमदार, एम0 आर0 : क्रोनोलाजी आँव गुजरात, बड़ौदा, 1960

मजूमदार, आर0 सी0 : द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आँव द इण्डियन पीपुल, भाग

भाग एक : द वैदिक एज, लन्दन, 1950

भाग II : द एज आँव इम्पीलियल यूनिटी, बम्बई, 1960

भाग III : द क्लासिकल एज, बम्बई, 1954

भाग IV : द एज आँव उम्पीरियल कन्नौज, बम्बई, 1955

भाग V : द स्ट्रगल फार इम्पायर, बम्बई, 1957

द हिस्ट्री आँव बंगाल, भाग- I ढाका यूनिवर्सिटी, 1943

मजूमदार, आर0 सी0 और अल्तेकर, ए0 एस : द वाकाटक गुप्त एज, बनारस, 1954

मार्शल, जे0 एच0 : द बुद्धिस्ट आर्ट आँव गान्धार, कैम्ब्रिज, 1960

मार्शल, जे0 एच और फूशे, ए0 : द मान्यूमेन्टस आँव साँची, तीन भागों में, कलकत्ता, 1940

मेनन, पी० के० पी० : हिस्ट्री आँव त्रावनकोर, 1924-31

मिराशी, वी० वी० : इंस्क्रिप्शन्स आँव द कलचुरिचेदि एरा सी आई आई, VI उटकमण्ड 1955.

मिश्रा, आर० एन० : भारतीय मूर्तिकला, नई दिल्ली, 1978

मिश्रा, वाई० और राय, एस० आर० : ए गाइड टू वैशाली एण्ड वैशाली म्यूजियम, वैशाली, 1964

मित्र, देवला : भुवनेश्वर, नई दिल्ली, 1958

मोतीचन्द्र : काशी का इतिहास (हिन्दी में) बम्बई, 1962

मुखर्जी, आर० एन० और मैटी, एस० के० : कार्पस आँव बंगाल इंस्क्रिप्शन्स, कलकत्ता, 1967

मुंशी, के० एम० : सागा आव इण्डियन स्कल्पचर, बम्बई, 1957

यदुवंसी : शैव-मत, पटना, 1953

याजदानी, जी० : द अर्ली हिस्ट्री आँव दकन, लन्दन, 1960

राय चौधरी, एच0 सी0 : पालिटिकल हिस्ट्री आँव एन्शयन्ट इण्डिया

राव, टी0 ए0 गोपीनाथ : एलिमेन्ट्स आँव हिन्दू इकोनोग्राफी, मद्रास 1914, 1916

रैप्सन, ई0 जे : कैटलाग आँव क्वाइन्स आँव द आन्ध्र डायनेस्टी, द वेस्टर्न क्षत्रप्स, द त्रैकूट डायनेस्टी एण्ड द बोधी डायनेस्टी (इन द ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन, 1908

लन्घुर्स्ट, ए0 एच0 : पल्लव आर्किटेक्चर, एम0 ए0 एस0,आई0 33 और 40, कलकत्ता, 1928 और 1930

वसु, एन0 एन0 : द आर्क्योलाजिकल सर्वे आँव मयूरभंजन, जिल्द 1, कलकत्ता 1911

वत्स, एम0 एस0 : द गुप्ता टेम्पिल्स एट देवगढ़, एम0 ए0 एस0 आई, 70, दिल्ली, 1952

वेंकटरत्नम्, के0 आर0 : स्कन्द - कल्ट इन साउथ इण्डिया (द कल्चरल, हेरिटेज आँव इण्डिया, भाग IV कलकत्ता, 1953

वर्मा, बी0 एस0 : सोसियो रिलिजस, इकोनामिक एण्ड लिटरेरी कन्डीशन आँव बिहार, (319-1000 ए0डी0) दिल्ली, 1962

वेत्तम मणि : पुरानिक इनसाइक्लोपिडिया, दिल्ली, 1975

विकिंस, डब्ल्यू0 जे0 : हिन्दू मैथालॉजी, कलकत्ता, 1882

विल्सन, एच0 एच0 : एसेज एण्ड लेक्चर्स ऑन द रिलिजन ऑव द हिन्दूज, कलेक्टेड एण्ड एडिटेड बाई रेन होल्ड, लन्दन, 1862

विन्टरनित्ज, एम0 : हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर

सहाय, भगवन्त : आयकोनोग्राफी ऑव माइनर हिन्दू एवं बुद्धिस्ट डिटीन, नई दिल्ली, 1975

शास्त्री, ए0 एम0 : इण्डिया एज सीन इन द वृहत्संहिता ऑव वराहमिहिर, दिल्ली, 1969.
इण्डिया ऐज सीन इन द कुट्टनीमत ऑव दामोदरगुप्त, दिल्ली, 1975.

शास्त्री, एच0 के0 : साउथ इण्डियन इमेजेज ऑव गाडस एण्ड गाडेजज, मद्रास, 1916

शास्त्री, ए० एम० : इण्डिया एज सीन इन द वृहसंहिता ऑफ वराहमिहिर, दिल्ली, 1969.

" " " इण्डिया एज सीन इन द कुट्टनीं-मत ऑव दामोदरगुप्त, दिल्ली, 1975

शास्त्री, आई० एल० : एन्शियन्ट इण्डियन ट्रेडिशन एण्ड मैथालॉजी भाग, 9 (लिंग पुराण) दिल्ली, 1973

शेर, एस० ए० : गाइड टू द आर्क्योलाजिकल रेकशन ऑव द पटना म्यूजियम, पटना, 1946

शोरसेन, एस० : एन इन्डेक्स टू द नेम्स इन द महाभारत एण्ड ए कान्कोरडान्स क्वस्ट्रा, दिल्ली, 1963

शक्ल, डी० एन० : हिन्दू केनन्स ऑव आयकोनोग्राफी एण्ड पेंटिंग, गोरखपुर, 1958

श्रीनिवास, एम० एन० : इण्डियाज विलेजेज, बम्बई, 1966

श्रीनिवासन, टी० एन० : ए हैण्ड बुक ऑव साउथ इण्डियन इमेजेज, तिरुपति

शास्त्री, एच0 पी0 : नालन्दा एण्ड इट्स इपिग्राफिक मैट्रियल्स, एम·ए·एस·आई· 66 कलकत्ता, 1942

शास्त्री, के0 ऐ0 एन0 : ए काम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑव इण्डिया, भाग II , बम्बई, कलकत्ता, 1957

" " " द चोलाज, द्वितीय संस्करण, मद्रास, 1953

" " " डेवेलपमेन्ट ऑव रिलिजन इन साउथ इण्डिया, बम्बई, 1963

" " " : दक्षिण भारत का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) पटना, 1992

शास्त्री, एम. के. ट्राइबल्स क्वाइन्स-ए-स्टडी, नई दिल्ली, 1972

शाह, यू0 पी0 : स्कल्पचर्स फार्म समलजी एण्ड रोद, बड़ौदा, 1960

शर्मा, बी0 एन0 : सोसल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया (1000-1200 ए0 डी0) नई दिल्ली, 1972

सरस्वती, एस० के० : ए सर्वे आँव इण्डियन स्कल्पचर, कलकत्ता।

सरस्वती, स्वामी ओमनन्द : हरियाणा की प्राचीन मुद्रांक ﴾हिन्दी मे﴿ दिल्ली, सं० 2031

सहाय, भगवन्त : आयकोनोग्राफी आँव माइनर हिन्दू एवं बुद्धिस्टडिटीज, नई दिल्ली, 1975

सेन, पी० सी० : महास्थान एण्ड इट्स इनवायरोनमेन्टस, वी० आर० एस० राजशाही

सेन सुकुमार : ईरानियन ग्रोश एण्ड इण्डियन स्कन्द, ईरानिकस, भाग चार, सं० 1, जुलाई, 1

सिन्हा, वी० पी० : भारतीय - कला को बिहार की देन ﴾हि पटना, 1958

" " " रीडिंग इन कौटिल्याज अर्थशास्त्र, दिल्ली 1976.

स्मिथ, वी० ए० : ए हिस्ट्री आँव फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन, आक्सफोर्ड, 1930

सरकार, डी० सी० : सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स: बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलिजेशन, भाग, I, कलकत्ता, 1965.

" " " इण्डियन एपिग्राफी, दिल्ली, वाराणसी और पटना, 1965.

" " " स्टडीज इन द रिलिजिअस लाइफ ऑव एन्श्यन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, वाराणसी और पटना, 1971.

हार्ले, जे० सी० : गुप्ता स्कल्पचर, आक्सफोर्ड, 1974

हाजरा, आर० सी० : स्टडीज इन द पुरानिक रिकार्ड्स ऑव हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, ढाका, 1940

स्टडीज इन उप-पुराणाज, I और II, कलकत्ता, 1958 और 1963ई

हेरास, एच० : द प्राबल्म ऑव गणपति , वाराणसी, 1972

हाप्किंस, ई० डब्ल्यू : इपिक मैथोलॉजी, स्ट्रेसबर्ग, 1895

द रिलिजन्स ऑव इण्डिया, लन्दन, 1896

ह्वाइटहेड, आर० बी०　　: कैटलॉग ऑव क्वाइन्स इन द पंजाब म्यूजियम, लाहौर, भाग - 1. आक्सफोर्ड, 1914

शोध पत्रिकाएँ :

ईस्ट एण्ड वेस्ट, रोम

इपिग्राफिया इण्डिका

इण्डियन एण्टीक्वरी
इण्डियन आर्क्योलाजी-ए रिव्यू
इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली

इण्डियन न्यूमिसमेटिक क्रोनिकल, पटना

एन्शयन्ट इण्डिया, बुलेटिन ऑव द आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया

जर्नल ऑव द आन्ध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी, राजमुन्द्री

जर्नल ऑव द एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, कलकत्ता

जर्नल ऑव द बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना

जर्नल ऑव द बाम्बे ब्रान्च ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई

जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री, त्रिवेन्द्रम

जर्नल ऑव द सोसाइटी ऑव ओरिएण्टल आर्ट, कलकत्ता

जर्नल ऑव द न्यूमिसमेटिक सोसाइटी ऑव इण्डिया, बनारस

जर्नल आॅव द ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा

जर्नल आॅव द यू0 पी0 हिस्टारिकल सोसाइटी, लखनऊ

प्रोसिडिंग्स इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस

भारतीय विद्या, बम्बई

मद्रास इपिग्राफिकल रिपोर्ट

मार्ग, बम्बई

न्यूमिसमेटिक क्रानिकल्स, लन्दन

रूप-लेखा, नई दिल्ली

रूपम्, कलकत्ता

ललित कला, नई दिल्ली

द रिसर्चर, बुलेटिन आॅव द स्टेट आर्कयोलाजी एण्ड म्यूजियम्स,

राजस्थान, जयपुर

विश्वेश्वरानन्द इन्डोलाजिकल जर्नल, होशियार पुर

पुरातत्व, जर्नल आॅव इण्डियन आर्कियोलाजिकल सोसाइटी, नई दिल्ली

इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, जर्नल आॅव कौंसिल आॅव हिस्टारिकल रिसर्च